प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 तृप्ति गुप्ता ने मेरे मार्गदर्शन में रहकर "वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् का काव्यशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन" पी0एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया इस शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करने के लिए बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के अधिनियम में उल्लिखित 200 दिन उपस्थित रहने के नियम का पूर्ण परिपालन किया है। यह शोध-प्रबन्ध उसकी मौलिकता का परिचायक है। इससे सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र में एक नया आयाम उद्घाटित एवं स्थापित होगा। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। यह शोध-प्रबन्ध इनकी मौलिक कृति है।

शोधनिर्देशिका Namita
डॉ0श्रीमती नमिता अग्रवाल
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा
बाँदा (उ0प्र0)

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् का काव्य शास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन

विस्तृत रूप रेखा

अध्याय-1 (पेज नं.1-19)

संस्कृत में राम काव्य विकास यात्रा

(क) वैदिक साहित्य

(ख) रामायण, महाभारत

(ग) पौराणिक साहित्य

(घ) साम्प्रदायिक साहित्य

(ङ.) श्रेष्य साहित्य-महाकाव्य, श्लेष काव्य, विलोग काव्य संदेश काव्य नाटक इतिहास

अध्याय-2 (पेज नं.20-44)

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् की कथा वस्तु

(क) आधिकारिक कथा

(ख) प्रासंगिक कथा घटना प्रवाह

(ग) काव्य में संक्षेप विस्तार

(घ) साम्य वैषम्य

अध्याय-3 (पेज नं.45-128)

आलोच्य एवं ग्रन्थों में पात्र परिकल्पना

(क) पात्र चरित्र व्यक्तित्व परिकल्पना प्राक्तन रूप

मूलरूपः- (1) नायक उसके भेद (2) नायिका भेद

(3) उपनायक (4) आधुनिक दृष्टि

(ख) प्रमुख पात्रों का चरित्र, रूप, गुण, शील, व्यवहार।

(ग) राम, रावण, लक्ष्मण, भरत, सीता, शूर्पणखा इत्यादि।

(ख) रीति एवं गुण

(ग) ध्वनि विचार

(घ) वक्रोक्ति विधान

(ङ.) साम्य-वैषम्य

Namita

शोध निर्देशिका

शोधकर्त्री
कु० तृप्ति गुप्ता

भूमिका (प्राक्कथन)

"अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति" में सूक्तिकार ने कवि को प्रजापति, सृष्टा, स्वयंभू कहा है क्योंकि प्रातिभ कवि अपनी कल्पना से जिस मनोरम काव्य जगत की सृष्टि करता है उसकी कथाभूमि और उसमें रहने वाले पात्रों का जीवन व्यवहार हमारे व्यावहारिक धरातल से मिलता जुलता है फिर भी काव्य व्यावहारिक जगत से इस अर्थ में मिल और वैशिष्ट्य रखता है कि उसकी कथा हमारी सांस्कृतिक मनोभूमि का संस्पर्श करती है रामकथा तो ऐसी अनन्तकथा है जिसमें भिन्न-भिन्न युगों में बने सांस्कृतिक भावभूमियों की व्याख्या मिल जाती है। पित्राज्ञा का पालन करना राम जिस महानायक पद पर मूर्धाभिषिक्त हुए हैं उनके विरोधी गुण रखता हुआ रावण प्रतिनायक होते हुए भी हम कम शिक्षा नहीं देता इसीलिये वाल्मीकि ने सत् और असत्, जय और पराजय राग और द्वेष इत्यादि द्वन्द्वों की कथा अपने रामायण में उपनिबद्ध किया है। और वाल्मीकि हिमालय से निकलकर रामकथा गंगा आद्यावधि प्रवाहित होकर अपनी जीवान्तता और प्रासंगिकता वनाये हुए हैं। आधुनिक काल में अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने जानकी जीवनम् के प्रति शोधकर्त्री का अतीव आकर्षण रहा है अतः उसने अपने शोध का शीर्षक "वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् का काव्यशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन" बनाया है। इस अध्ययन हेतु शोधकर्त्री ने शोधप्रबन्ध को आठ अध्याय में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में रामकथा के विकास कर रूपरेखा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की गयी है क्योंकि कथा एवं काव्य विकास की रूपरेखा पूर्ववर्ती अनेक शोध ग्रन्थों स्वतन्त्र लेखों में मिलती है अतः पिष्ट पेषण से बचने के लिए अतिसंक्षेप में वैदिक वांगमय, रामायण, महाभारत, पुराण, संहिता साहित्य संस्कृत के महाकाव्य, नाटक, श्लेष एवं विलोम काव्य इत्यादि काव्य विधाओं में रामकथा का विहगावलोकन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में आलोच्य काव्यों की आधिकारिक, प्रासंगिक क्या लेकर कथा वर्णन शैली, प्रवन्ध कौशल, अन्विति तनाव इत्यादि दृष्टि से समीक्षा की गयी है एवं आलोच्य काव्यों में एतद् विषयक साम्य वैषम्य भी निरूपित किया गया है।

तृतीय अध्याय पात्र योजना से सम्बन्धित हैं। पात्र, व्यक्तित्व चरित्र में अन्तर निरूपित वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् के पात्रों की संख्या एवं उनका वर्गीकरण किया गया

है। राम, सीता, रावण, हनुमान, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, कुम्भकर्ण, मेघनाद, शूर्पणखा, कैकेयी, कौशल्या इत्यादि पुरूष एवं स्त्री पात्रों का वाह्य सौन्दर्य आन्तरिक गुणों का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय आलोच्य काव्यों में रस संगठन से सम्वन्धित है। दोनों काव्यों के अंगी रसों का निर्णयकर श्रृंगार, वीर, करूण, रौद्र, हास्य, भयानक, वीभत्स, शान्त, वात्सल्य रसों के उदाहरण एवं स्वतन्त्र रूप से चतुर्विध अनुभाव एवं तैतीस संचारी भावों के उदाहरण देकर दोनों कवियों की रसगत संयोजन पटुता का परिचय दिया गया है।

पंचम अध्याय में प्रकृति एवं अन्य वर्णन का उल्लेख है। प्रकृति का महत्ता उसके स्वरूप विभाजन के साथ आलम्बन, उद्दीपन, आलांकारिक रूपों के उदाहरण देकर पौरस्त्य एवं पाश्चात्य महाकाव्यों के लिये बतायी गयी वस्तु योजना में प्रातः मध्याह्न, प्रदोष, रजनी, चन्द्रमा, सागर, नदी, गिरि, झरने, ग्राम, नगर आश्रम इत्यादि के उदाहरण देकर आलोच्य कवियों का निरीक्षण दृष्टि के विस्तार का परिचय दिया गया है।

षष्ठ अध्याय में भाषा अभिव्यंजना शिल्प का परिचय दिया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में अमिधा, लक्षणा, व्यंजना, ओज, प्रसाद, माधुर्य, वैदर्भी, गौणी, पांचाली आदि रीतियों के साथ उपनागरिक, परूषा, कोमला वृत्तियों छोटे दीर्घ एवं नाटकीय संवादों के उदाहरण दिये गये हैं। आलोच्य दोनों काव्यों में अनुष्टुप, जगती, त्रिष्टुप, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित के साथ काव्य में प्रयुक्त विम्बात्मकता चाक्षुष प्रत्यक्षीःकरण की दृष्टि से दोनों कवियों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

सप्तम् अध्याय भारतीय काव्य सम्प्रदाय एवं काव्यों की समीक्षा से सम्बन्धित है। रस, गुण रीति इत्यादि का परिचय पूर्व अध्याय में किया जा चुका है यहाँ अंलकार में शब्दालंकार, अर्थालंकार, ध्वनि के भेद, उपभेद-अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि, भावाभास, रसाभास, भावध्वनि, भाव शबलता तथा वक्रोक्तिसिद्धान्त की दृष्टि से वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वाद्ध वक्रता पद परार्ध वक्रता, काल उपग्रह वक्रता, उपसर्ग वक्रता, प्रकरण वक्रता की दृष्टि से दोनों काव्यों में साम्य वैषम्य निरूपित किया गया है।

अष्टम एवं अन्तिम अध्याय आलोच्य काव्यों के काव्य रूप निर्धारण से सम्बन्धित है। शोधकर्त्री ने दण्डी, भामह, विश्वनाथ, अरस्तु, वाखरा सहित विदेशी समीक्षकों द्वारा प्रस्तुत

महाकाव्यों के लक्षण प्रथम-पृथक निरूपित कर जीवन्त कथानक उदात्त पात्र योजना कुशल रस प्रबन्धन एवं भाव योजना गरिमापूर्ण शैली के साथ महद् उद्देश्य की दृष्टि से आचोल्य कव्यों की विस्तृत समीक्षा की गयी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डा0 श्रीमती नमिता अग्रवाल रीडर संस्कृत विभाग अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा के कुशल निर्देशन में लिखा गया है। शोधकर्त्री यह अनुभव करती है कि उनमें जितना वैदुष्य और विश्लेषण की क्षमता है उसकी मिति ढूंढना सचमुच कठिन है। अपने कुशल निर्देशन से उन्होंने मुझे काव्याशास्त्रीय सिद्धान्तों का आंगुल्या निर्देश ही नहीं किया अपितु रस मर्मज्ञ और भाव विवेचन की क्षमता के महार्घ सूत्र मीहस्तामलककरा मुझे उपकृत किया है अतः शोधकर्त्री उनकी सदैव आभारी रहेगी। प्रो0 राजाराम दीक्षित अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डा0 ओंकार मिश्र, डा0 दिनेशचन्द्र गर्ग के प्रोत्साहन से मुझे काव्याशास्त्रीस विश्लेषण में मुझे पग-पग में सम्बल मिला है एतदर्थ में उनकी कृतज्ञ हूँ।

शोध प्रबन्ध के प्रेरक के रूप में श्री बाबूलाल गुप्ता प्रधानाचार्य डी.ए.वी. इण्टर कालेज-बाँदा का स्मरण में विशेष रूप से कर रही हूँ क्योंकि शोधकार्य करने की उनकी बारम्बार प्रेरणा और मेरे निरूत्साह में जो द्वन्द्व छिड़ा कहना नहीं होगा कि उनकी प्रेरणा विजयी रही उनका धैर्यपूर्वक कार्य करने का प्रोत्साहन इस शोधप्रबन्ध को पूर्ण करने में पाथेय जैसा रहा है मैं उन्हें हृदय से स्मरण कर उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ।

डा0 वेद प्रकाश द्विवेदी एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना बहुत औपचारिक प्रतीत होता है क्योंकि हिन्दी के माध्यम से सरल भाषा में काव्य सिद्धान्त की दुरूह गलियों से निकलने का जो मार्ग मुझे बी.ए. से लेकर एम.ए. तक सुझाया गया है उसी का परिणाम प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है।

मैं अपने पिता श्री किशोरीलाल गुप्ता माँ श्रीमती शकुन्तला गुप्ता एवं जेष्ठा भगिनी श्रीमती मीना गुप्ता, मोहिनी गुप्ता, अनुज हरिओम, शिवओम, नवीन के साथ अपने वयस्य मित्र श्री विनय शिवहरे का स्मरण कर अभिभूत हो रही हूँ कि इनका किस रूप में धन्यवाद करूँ।

अन्त में मैं अपने सभी सहायकों, शुभ चिन्तकों के प्रति एक वार पुनः अपनी कृतज्ञता एवं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

शोधकर्त्री
कु0 तृप्ति गुप्ता
कु0 तृप्ति गुप्ता

अध्याय-१

संस्कृत में रामकथा विकास यात्रा

(क) वैदिक साहित्य

आदिकाल से मानव प्रकृति के साहचर्य में रहा है। प्राकृतिक सुषमा उसकी विभीषिका और युगीन परिस्थितियों से परिचालित होकर अपने हृदयस्थ भावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कभी संकेतों अथवा प्रतीकों या उपलब्ध भाषिक प्रतिमानों से करता चला आया है। आगे चलकर उसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम मानव सौन्दर्य उसके क्रिया-कलाप निश्चित हुए। सामाजिक सुरक्षा, संरक्षा और अनुशासन के लिये किसी न किसी महानायक की खोज होती रही है।

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के ऐसे ही महापुरूष या महानायक हैं, जिन्होंने समाज को बहुविध रूप से प्रभावित किया है। चरित्र से सम्पन्न धर्म का विग्रहवान रूप राम के जीवन में आदर्शमयता और वरेण्य सांस्कृतिक तथ्यों की जो अभिव्यक्ति मिलती है उसी कारण राजकुमार से महापुरूष, महानायक, अंशावतारी और परब्रह्म की सीमा तक पहुँच गये हैं।

पित्राज्ञा के पालन हेतु राम का वनगमन, भाई के हितों की सुरक्षा हेतु भरत का वीतरागी बनना भारत ही नहीं विश्व के किसी भी संस्कृति के उच्चादर्श हो सकते हैं इसीलिये रामकथा लोकमानस की कथा है। धर्म की कथा है और राम धर्म के सेतु और केतु हैं।

रामकथा के विकास के सन्दर्भ में महाकवि वाल्मीकि का नाम सबसे पहले लिया जाता है परन्तु भारतीय मनीषा अपने सांस्कृतिक तत्व और उसके जीवन में उतारने वाले महानायकों के कथा के उत्स वैदिक साहित्य में खोजता है अतः यहाँ वैदिक साहित्य में उपलब्ध रामकथा के स्वरूप की यत्किंचित चर्चा की जायेगी।

वैदिक साहित्य में राम शब्द दुःशीम, पृथुवान, वैन के सन्दर्भ में आया हुआ है-

> "प्रतद्दुः शीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मधवत्सु।
> ये युक्त्वाय पंच शतास्मयु पथा विश्रात्येषाम्।।"[1]

ऐतरेय[2] एवं शतपथ ब्राह्मण[3] में राम को मार्गवेय और रयापर्णीय ब्राह्मण के रूप में

---

(1) ऋग्वेद 10/93/14 (2) ऐ.ब्रा.7/27-34 (3) शत.ब्रा.416/1/7

उल्लिखित किया गया है। इसी सन्दर्भ में औपतस्विनि और क्रातुजातेय राम की चर्चा हुई थी।

वैदिक साहित्य में राम कथा से सम्बन्धित अन्य पात्रों में इक्ष्वांकु[1], दशरथ[2], अश्वपति, जनक[3] का भी विवरण विविध सन्दर्भो में मिलता है।

वैदिक साहित्य में दो भिन्न सीताओं की चर्चा है। एक सीता कृषि अधिष्ठात्री और दूसरी सीता सावित्री युग्म के रूप में है। लांगल पद्धति प्रकरण में सीता शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। कृषि की अधिष्ठात्री सीता का उल्लेख कर उसमें देवत्व का आरोप किया गया है-

"इन्द्रः सीतां निग्रह्णातु तां पूषाभिः रक्षतुः।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरां मुतरां समाम्।।"

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना अरनो यया नः सुफला भुवः।।"

अथर्ववेद में दैनिन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सीरायुंजति प्रकरण में सीता से प्रार्थना की गई है। तैत्तरीय अरण्यक में पितृमेघ अवसर पर इसी सीता की प्रार्थना करते हुये अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु उल्लेख किया गया है।

तात्पर्य यह है कि वेद, ब्राह्मण, आरण्य आदि वैदिक साहित्य में रामकथा के पात्रों का उल्लेख है। प्रसिद्ध वैदिक विद्धान "रामकुमारदास" ने मन्त्र रामकथा के आधार पर वैदिक साहित्य में रामकथा से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं की सिद्ध किया है, किन्तु परवर्ती आलोचक वैदिक साहित्य में रामकथा का अभाव ही मानते हैं। इस सन्दर्भ में रामकथाविद् "डा0 कामिल बुल्के" का मत स्मरणीय है। उन्होंने लिखा है-

"वैदिक रचनाओं में रामायण के एकाध पात्रों के नाम अवश्य मिलते हैं लेकिन न तो इसके पारस्परिक सम्बन्ध की कोई सूचना दी गई है और न इनके विषय में रामायण की कथावस्तु का किंचित् भी निर्देश किया गया है। जनक और सीता का बार-बार उल्लेख होने पर भी दोनों का पिता-पुत्री सम्बन्ध कहीं भी निर्दिष्ट नहीं हुआ है।

अतः वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्वन्धी गाथायें

---

(1) ऋग्वेद 10/60/4 (2) ऋग्वेद1/126/4 (3) तैत्त.ब्रा.3/10/9; एवं शत्.ब्रा.11/371/2

प्रसिद्ध हो चुकी थीं इसका निर्देश समस्त वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नामों से मिलते हैं। इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।"[1]

वाल्मीकि रामायण –

पाश्चात्य एवं पौरस्त्य की यह धारणा है कि वाल्मीकि ने जो रामकथा लिखी है उससे सम्बन्धित अनेक आख्यान, गाथायें, लोक में प्रचलित हो चली थी जिसका साहित्यिक संकलन वाल्मीकि रामायण के रूप में हुआ है। क्योंकि निषाद् शाप के कारण अपराध बोध से ग्रस्त कवि को प्रजापति ब्रह्मा ने रामकथा लिखने का आदेश किया। इस कथा को नारद ने वाल्मीकि को सुनाया था।

यही रामायण रामकाव्य का बीजग्रन्थ है जिसमें दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ, पायस विभाजन, रामादिक भाईयों का जन्म, विश्वामित्र मख रक्षण से लेकर धनुर्भंग-विवाह, राम-लक्ष्मण-सीता का वनगमन, भरत की चित्रकूट यात्रा, शूर्पणखा का विरूपीकरण, सीताहरण, उसकी खोज में सुग्रीव से भेंट, हनुमान का समुद्रोल्लंघन, लंका-दहन, सेतुबन्ध विभिन्न राक्षसों के साथ सपरिवार रावण का विध्वंस, राम का राज्याभिषेक, सीता सम्बन्धी प्रवाद, सीता निर्वासन, लव-कुश जन्म सीता का पृथ्वी प्रवेश, शम्बूक वध, राम भाईयों सहित विष्णु स्वरूप में प्रवेश इत्यादि मूल घटना के साथ रामकथा सम्बन्धी प्रमुख एवं गौण पात्रों की वंशावली और कथा वर्णन अत्यन्त विस्तृत रूप में सप्त काण्ड बद्ध रूप में लिखी गयी है। यह ऐसा आकर ग्रन्थ सिद्ध हुआ है जिससे कथा जल लेकर सहस्रादिक कवियों ने अपने काव्य कूपों का निर्माण किया है।

वाल्मीकि की इस विस्तृत कथा का प्रभाव महाभारत पुराण, संस्कृत के श्रेण्य साहित्य के विविध रूपों, बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी स्वसम्प्रदाय अनुसार क्या का विस्तार है। अनन्तहरि की अनन्त कथा का गायन भक्ति, अवतारवाद के प्रवेश के कारण यह कथा अनेक आयामीय हो गई है। शोधकर्त्री का यह आलोच्य ग्रन्थ है अतः रामक्था के विकास के लिये ऊपर संक्षिप्त चर्चा मात्र की गई है जिससे कवि की महत्ता और राम के जीवन में आधुनिक युग की धारणा के विकसित रूप की व्याख्या की जा सके।

---

(1) राम कथा; उत्पत्ति और विकास पृष्ठ संख्या 25-26

महाभारत में रामकथा –

महाभारत में रामकथा का चार स्थलों पर वर्णन किया गया है। रामोपाख्यान इनमें सबसे विस्तृत और महत्वपूर्ण है।

(1) आरण्यक पर्व की रामकथा (3,146,28,38)

रामोपाख्यान के अतिरिक्त आरण्यक पर्व में एक रामकथा और उद्धत है। भीम–हनुमान के संवाद के अन्तर्गत हनुमान ग्यारह श्लोकों में वनवास और सीताहरण से लेकर अयोध्या के प्रत्यागमन तक सारी रामकथा संक्षेप में कहते हैं। इसमें रामावतार तथा राम का 11000 वर्ष तक राज्य करने का उल्लेख है। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की सामग्री लंका दहन तथा सीता की अग्नि परीक्षा का कोई उल्लेख नहीं है।

(2) द्रोण पर्व की रामकथा –

द्रोण पर्व तथा शान्ति पर्व की रामकथा षोडराजोपाख्यान के अन्तर्गत मिलती है। पुत्र के मरण के कारण शोकातुर सृंजय को सान्त्वना देने के उद्देश्य से नारद ने उनको सोलह राजाओं की कथा सुनायी थी। ये राजा महान होते हुये भी अपने–अपने समय पर सब मर गये थे। (स चे–ममार सृंजय)

द्रोण पर्व में अभिमन्यु वध के कारण शोकसंतप्त युधिष्ठिर को धैर्य देने के लिये व्यास उनको षोडशराजोपाख्यान सुनाते हैं। द्रोण पर्व का यह षोडशराजकीय वास्तव में शान्ति पर्व पर निर्भर है।

इन सोलह राजाओं में एक राम भी थे। नारद राम की महिमा का वर्णन करते हुये अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड के अन्त तक रामकथा की रूपरेखा खींचते हैं। प्रसंग के अनुसार रामकथा की अपेक्षा रामराज्य की समृद्धि तथा राम की महिमा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। वनवास से लेकर अयोध्या के प्रत्यागमन तक सारी कथा का वर्णन 10 श्लोकों में समाप्त किया जाता है। इसके अनन्तर राम का अभिषेक, राम के गुणों की उत्कृष्टता, रामराज्य में दुष्टों का अभाव, राम का 11000 वर्ष का शासनकाल तथा उनकी मृत्यु (स चेन्ममार सृंजय) इन सबका वर्णन 21 श्लोकों में दिया जाता है। इस राम कथा में भी न तो बाल काण्ड तथा उत्तरकाण्ड की सामग्री सम्मिलित है और न सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख किया गया है। राम सब प्राणियों, ऋषियों, देवताओं तथा मनुष्यों से महान कहे

जाते हैं, फिर भी रामावतार का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।

(3) शान्तिपर्व की रामकथा (12,29,46,55)

प्रसंग द्रोणापर्व के समान हैं लेकिन यहाँ पर कृष्ण युद्धिष्ठिर को षोडशराजोपाख्यान सुनाते हैं। द्रोण पर्व तथा शान्ति पर्व की रामकथाओं का अन्तर यह है कि शांतिपर्व में रामकथा की सामग्री नहीं के बराबर है। केवल रामराज्य तथा राम की महिमा का वर्णन किया गया है–

"दशाश्वमेधांजाख्थ्यानाजहार निर्गलान्।।53।।

दश वर्ष सहस्राणि रामो राज्यमकारयत्।।54।।"

(4) महाभारत में रामवतार –

आरण्यक पर्व में तीन स्थलों पर रामवतार का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। भीम–हनुमान–संवाद में हनुमान कहते हैं–

"अय दाशरथिर्वीरो रामोनाम महाबलः।

विष्णुर्मानुष्य रूपेण चचार वसुधामिमाम्।।28।।

रामोपाख्यान पर ब्रह्मा देवताओं से कहते हैं कि–

"विष्णु मेरे आदेश के अनुसार अवतार लेकर रावण की हत्या करेंगे।"

रामोपाख्यान–

रामोपाख्यान का प्रसंग इस प्रकार है–द्रोपदी के हरण तथा उसको पुनः प्राप्त करने के पश्चात युधिष्ठिर अपने दुर्भाग्य पर शोक प्रकट कर इस प्रकार कहते हैं–अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः, क्या मुझसे भी कोई अधिक अभागा है? (3,25,10) इस पर मार्कण्डेय राम का उदाहरण देकर युधिष्ठिर को धैर्य बंधाने का प्रयत्न करते हैं। युधिष्ठिर के रामचरित सुनने की इच्छा प्रकट करने पर मार्कण्डेय रामोपाख्यान सुनाते हैं। पूना के प्रमाणिक संस्करण में इस रामचरित का विस्तार 604 श्लोकों का है जिनमें 200 श्लोक युद्ध के वर्णन के लिये प्रयुक्त हैं।

पुराणों में रामकथा

हरिवंश– हरिवंश का रचनाकाल 400 ई0 के लगभग माना जाता है। इसमें एक संक्षिप्त रामचरित मिलता है, जिसमें रामावतार के उल्लेख के बाद वनवास से लेकर रावण

वध तक रामकथा की मुख्य घटनाओं का वर्णन दिया गया है। अनन्तर रामराज्य की प्रार्थना दी गई है। इस वृतान्त में दशरथ के यज्ञ का अथवा अयोनिजा सीता का उल्लेख नहीं हुआ है।

हरिवंश के दो स्थलों पर रामायण का तथा दो स्थलों पर वाल्मीकि के काव्य का निर्देश मिलता है-गीतं च वाल्मीकि महर्षिणा (1,1,6) और सरस्वती च वाल्मीके (2,3,4) अवतारों की चार तालिकाओं में राम का नाम भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी राम अथवा रामकथा का उल्लेख किया गया है। (उदा0 1,15,26,1,54,26,2, 60,35,3,76,24)

प्रधान महापुराण-

(152 शेष महापुराणों में तीन प्राचीन सामग्री के साथ-साथ बहुत से प्रक्षेप भी पाये जाते हैं। कई महापुरूषों का अनेक बार रूपान्तर भी किया गया है)

पौराणिक साहित्य काल निर्णय के विषय में प्रस्तुत निबन्ध डा0 राजेन्द्र हजारा की पुस्तक तथा उनके अन्य लेखों का सहारा लिया गया है।

उनके अनुसार प्राचीन महापुराण कालक्रमानुसार निम्नलिखित हैं- मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत तथा कूर्मपुराण।

मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में रामचरित का कहीं वर्णन नहीं है, अन्य अवतारों के साथ ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में राम का नाम भी लिया गया है। (दे0 मत्स्य पुराण अध्याय 46, ब्रह्माण्ड पुराण अध्याय 63) इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड के मैथिल वंश के वर्णन में सीता के आलौकिक जन्म का उल्लेख किया गया है (दे0 अध्याय 64,15) इस पुराण का काल चौथी शताब्दी ई0 माना जाता है।

153 विष्णु पुराण-

(चौथी शताब्दी ई0) में भी अयोनिजा सीता का उल्लेख मिलता है (4,5 अध्याय) और राम कथा का संक्षिप्त रूप भी उद्‌धृत किया गया है। (4 अध्याय) हरिवंश की रामकथा की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक सामग्री मिलती है विशेषकर ताट्का वध, अयोनिजा सीता तथा रामादि चार भाईयों के पुत्रों का उल्लेख। एक अन्य स्थान पर लवणासुर वध का वर्णन किया गया है। (1,12,4)

154 वायु पुराण–

(पाँचवीं शताब्दी ई0) की रामकथा विष्णु पुराण की रामकथा से भिन्न नहीं है (दे0 रामचरित अध्याय 88,191,200 तथा अयोनिजा सीता का जन्म अध्याय 89,22)।

155 भागवत पुराण –

(छठी शताब्दी, सातवीं शताब्दी ई0) के रामचरित के पौराणिक साहित्य में पहले पहल सीता लक्ष्मी का अवतार मानी गयी है। सीता स्वयंवर के अवसर पर राम धनुष तोड़ते हैं। राम शूर्पणखा को विरूपित करते हैं तथा धोबी के कारण सीता त्याग का वर्णन किया गया है (दे0 स्कंध 9 अध्याय 10-11) इस पुराण में एक दूसरी अत्यन्त संक्षिप्त रामकथा (2,6,23,25) मिलती है जिनमें समुद्र राम को देखकर उन्हें तुरन्त मार्ग देता है (दे0 आगे अनु0 573)।

156 कूर्म पुराण–

(सातवीं शताब्दी ई0) में रामकथा सम्बन्धी निम्नलिखित सामग्री पाई जाती है। राक्षस वंश वर्णन (पूर्व भाग, अध्याय 19)। सूर्यवंश के वर्णन के अन्तर्गत रामचरित का वर्णन जिनमें सीता को जनकात्मजा माना गया है और रावण युद्ध के पश्चात राम द्वारा शिवालिंग की स्थापना का उल्लेख है (पूर्व विभाग अध्याय 21)।

पतिव्रतोपाख्यान में राम सीता के हरण का वृतान्त (उत्तर विभाग अध्याय 34)।

गौण महापुराण

स्कन्ध महापुराण–

स्कन्ध महापुराण के 'ब्रह्म खण्ड' नामक तृतीय खण्ड में रामेश्वर सेतुवन्ध नामक तीर्थ के वर्णन के प्रसंग में रामकथा का संक्षिप्त में वर्णन किया गया है।

योग वसिष्ठ रामायण (द्वादश शती ई0)–

द्वादश शती में प्रणीत योग वसिष्ठ रामायण में निम्नांकित छह प्रकरण हैं–

1. वैराग्य प्रकरण   2. मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण
3. उत्पत्ति प्रकरण   4. स्थिति प्रकरण
5. उपशम प्रकरण   6. निर्वाण प्रकरण

योग वशिष्ठ रामायण के निर्वाण प्रकरण में संक्षिप्त में सम्पूर्ण रामकथा का उल्लेख किया गया है। विशवामित्र ने श्रीराम के अवतार लेने के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुये कहा कि श्रीराम साक्षात् परमेश्वर है इन्होंने देवताओं का दुःख दूर करने के लिये ही अवतार धारण किया है–

देवकार्यं चरामोऽन्यदवतार प्रायोजनम्।

योग वसिष्ठ। निर्वाण प्रकरण। पूर्वार्ध। 28/67

ये मेरे साथ सिद्धिाश्रम जायेंगे तथा वहाँ ताट्का और सुबाहु का वध कर अहिल्या का उद्धार करेंगे।

करिष्यति ततोऽहल्या मुक्ति च जनकात्मजाम्।
परिणेपयति कोदण्डभंगेन कृतनिश्चयः।
रामस्य जामदग्नस्य कतनिष्टां गतिं ध्रुवम्।।

योग वसिष्ठ। निर्वाण प्रकरण। पूर्वार्ध।। 28/68-69

श्रीराम जनकपुर में शिव का धनुष तोड़कर सीता के साथ विवाह करेंगे। वे बाद में वन जायेंगे तथा सीता के अपहर्ता रावण का वध करेंगे।

सीताहरण दौर्गत्यच्छलेन भुवि शोच्यताम्।
दशीयेष्यति सर्वेषा रावणदि बधादपि।। (योग वसिष्ठ। 28/69)

श्रीराम लोक में आदर्श स्थापन के उद्देश्य से सीता की अग्नि परीक्षा लेंगे।

सीता विशुद्धिमत्तिच्छँल्लोकानुमतिमात्मनः।

योग वशिष्ठ। निर्वाण प्रकरण। पूर्वार्ध।। 26/62

इस प्रकार भगवान श्रीराम संसार में अनेक प्रकार की लीलायें करेंगे।

योग वशिष्ठ। निर्वाण प्रकरण पृष्ठ 128/76

गरुण पुराण (दशम शती ई0)–

गरुण पुराण के 142वें एवं 143वें अध्याय में श्रीराम की कथा का वर्णन किया गया है।

ब्रह्म पुराण (त्रयोदशी शती ई0)–

ब्रह्म पुराण के एक सौ तेईसवें और दो सौ तेरहवें अध्याय में रामकथा का विस्तार

पूर्वक वर्णन किया गया है।

पद्म पुराण (षोड़श शतीं ई0)–

पद्म पुराण के निम्नांकित तीन प्रसंगों में रामकथा का वर्णन किया गया है–

1. पद्म पुराण के प्रथम खण्ड–सृष्टि खण्ड में शम्बूक वध का वर्णन।
2. पद्म पुराण के पंचम खण्ड–पाताल खण्ड में रावण वध के प्रायश्चित हेतु श्रीराम के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ के आयोजन का वर्णन।
3. पद्म पुराण के षष्ठ खण्ड–उत्तर खण्ड में सम्पूर्ण रामकथा का विस्तृत वर्णन।

अध्यात्म रामायण (चतुर्दश शतीं)–

अध्यात्म रामायण के वक्ता और श्रोता क्रमशः शिव और पार्वती हैं। इस रामायण में रामचरित का वर्णन करते हुये भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचार सम्बन्धी दिव्य उपदेश दिये गये हैं। इसमें भगवान राम की विविध कथाओं का उल्लेख होने पर भी अध्यात्म तत्व की ही प्रधानता है, इसलिये यह रामायण के नाम से प्रसिद्ध है।

अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि श्रीराम चिन्मय और अविनाशी हैं। वे विश्व की स्थिति और लय के कारक है।

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं। (अध्यात्म रामायण 1/1/2)

उन्होंने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार धारण किया था।

यः पृथिवीभर वारणाय दितिजैः संपूर्थितश्चिन्मयः।

संजातः पृथिवीतले रविकुले माया मनुपयोऽव्ययः।। (अध्यात्म रामायण 1/1/1)

वे साक्षात् अद्बितीय सच्चिदानन्द धन है।

रामं विद्धि परंब्रह्म सच्चिदानन्दमद्बयम्। अध्यात्म रामायण 1/1/32

और सीता संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाली भगवान की मूल प्रकृति है।

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्त कारिणीम्।

तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता।। अध्यात्म रामायण 01/1/34

रावणादि राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित गौ रूपी पृथ्वी

भूमिभरिण भग्ना दशवदन मुखाशेष रक्षोगणानां।

धृत्वा गोरुपमादौ दितिजमुनिजनैः सकमब्जासनस्य।। अध्यात्म रामायण 1/2/6

और ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर विष्णु भगवान् ने उनसे कहा कि मैं पूर्व जन्म के कश्यप तथा वर्तमान जन्म के राजा दशरथ के यहाँ अवतार धारण करूँगा।

अद्भुत रामायण (पंचदश शती ई0)–

अद्भुत रामायण में 26 सर्ग और 1353 श्लोक हैं। इसमें सम्पूर्ण रामकथा वाल्मीकि–भरद्वाज संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई है।

तमसातीर निलयं निलायं तपसां गुरूम्।

वचसा प्रथम स्थानं वाल्मीकिं मुनिपुंगवम्।।

विनयावनतो भूत्वा भरद्वाजो महामुनिः।

अपृच्छत्संगतः शिष्यः कृतांजलिपुतो वशी।। (1/1–2)

अद्भुत रामायण में कहा गया है कि नारद के शाप के कारण श्रीराम का अवतार हुआ–

राक्षसापदः कश्चिन्तां ते भार्यां हरिण्यति।

यतो राक्षस धर्मेण हृता च श्रीमती शुभा।। (4/62)

सीता–जन्म की कथा– अद्भुत रामायण में सीता जन्म की कथा का उपोद्धात् करते हुये कहा गया है कि ब्रह्मा और शंकर के वरदानों से उन्मत्त अत्याचारी रावण ऋषियों और मुनियों के शरीर में बाण चुभोकर उनसे निकले हुये रक्त को एक कलश में भरने लगा।

भुशुण्डि रामायण (1500–1600 ई0)–

भुशुण्डि रामायण के वक्ता और श्रोता क्रमशः ब्रह्मा तथा काक भुशुण्डि हैं। छत्तीस हजार श्लोकों में उपनिबद्ध भुशुण्डि रामायण निम्नांकित चार खण्डों में विभक्त हैं–

1. पूर्व खण्ड
2. पश्चिम खण्ड
3. दक्षिण खण्ड
4. उत्तर खण्ड

आनन्द रामायण (1500 ई0)–

आनन्द रामायण के वक्ता और श्रोता क्रमशः शिव और पार्वती हैं। आनन्द रामायण का इतिवृत्त 9 काण्डों तथा 110 सर्गों में उपन्यस्त हैं। इस रामायण में रामकथा से सम्बन्धित ऐसे अनेक आख्यानों का उल्लेख किया गया है जो प्रायः अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। प्रस्तुत रामायण के काण्डों और सर्गों का विवरण निम्नांकित हैं–

1. सार काण्डम्–13 सर्ग।
2. यात्रा काण्डम्–9 सर्ग।
3. याग काण्डम्–9 सर्ग।
4. विलास काण्डम्–9 सर्ग।
5. जन्म काण्डम्–9 सर्ग।
6. विवाह काण्डम्–9 सर्ग।
7. राज्य काण्डम्–25 सर्ग।
8. मनोहर काण्डम्–18 सर्ग।
9. पूर्व काण्डम्–9 सर्ग।

तत्त्व–संग्रह रामायण (1600 ई0)–

तत्त्व-संग्रह रामायण की रचना श्रीराम ब्रह्मानन्द ने की थी। प्रस्तुत रामायण में रामकथा के तत्त्व अर्थात श्रीराम के पर-ब्रह्मत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसीलिये इस रामायण को तत्त्व-संग्रह रामायण कहते हैं। प्रस्तुत रामायण में श्रीराम को विष्णु के अतिरिक्त शिव, ब्रह्मा, हरिहर, त्रिमूर्ति तथा ब्रह्म का भी अवतार बतलाया गया है।

(ख) जैन एवं बौद्ध साहित्य में राम कथा–

(400 ई0पूर्व से 300 ई0 पूर्व तक)–

बौद्ध साहित्य में भगवान राम को गौतम बुद्ध का पूर्वातार बतलाया गया है। इसी प्रकार जैन साहित्य में उन्हें त्रिषष्टि शजाका महापुरूषों के अन्तर्गत सन्निविष्ट किया गया है।

दशरथ जातक–

गौतम बुद्ध ने जेतवन में विहार करते हुये 'एव लक्खण सीता च' यह बात एक ऐसे गृहस्थ के विषय में कही है जिसका पिता मर गया था।

वर्तमान कथा– एक बार एक गृहस्थ का पिता मर गया शोक के वशीभूत होकर उस गृहस्थ ने अपने कर्त्तव्यों का परित्याग कर दिया तब गौतम बुद्ध ने उस गृहस्थ को सांत्वना प्रदान करने के लिये राजा दशरथ की मृत्यु होने पर राम के धैर्य धारण करने

का दृष्टान्त देने के लिये 'दशरथ जातक' के माध्यम से अपने पूर्वजन्म की निम्नांकित कथा सुनाई–

अतीत कथा–

अतीते वाराणसियं दशरथ महाराजा नाम अगति
गमनं पहाय धम्मेन रज्जं कारेसि। तस्स
सोलसन्नं इति सहस्सानं जेट्ठिका अग्ग महेसी
हे पुत्ते एकं च धीतर विजायि। जेट्ठ पुत्तो
राम पण्डितो नाम अहोसि, पुतियो लक्खण
कुमारो नाम, धीता सीता देवी नाम।

दशरथ जातक के कथानक में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ पाई जाती हैं। दशरथ जातक के आरम्भ में सीता राम की बहन बतलायी गयी हैं और इस जातक के अन्त में सीता को राम की पटरानी बतलाया गया है। यह अप्रामाणिक एवं अतिगर्हित प्रसंग है। इसी तरह के अनेकों प्रसंग ऐसे हैं जो वाल्मीकि रामायण से मेल नहीं खाते।

जातक ग्रन्थों में रामकथा के पात्रों और कथानक की विकृत रूप में प्रस्तुति रचनाकार की विद्वेषमूलक दूषित मनोवृत्ति का परिचायक है।

दशरथ कथानम (300–400 ई0)–

फादर डा0 कामिल बुल्के ने दशरथ की कथावस्तु का विवेचन करते हुये कहा है कि चीनी त्रिपिटक के अन्तर्गत 'त्सा चौ–त्संग–किंग' नामक ग्रन्थ में 121 अवदानों का संग्रह है। इसमें एक अवदान 'दशरथ कथानम्' भी है। दशरथ कथानम् में बतलाया गया है कि प्राचीन काल में जम्बू द्वीप में राजा दशरथ राज्य करते थे। उनकी चार रानिया थीं। उनकी प्रधान महिषी के राम नामक एक पुत्र था। दूसरी रानी से लक्ष्मण, तीसरी रानी से भरत, तथा चौथी रानी से शत्रुघन नामक पुत्र का जन्म हुआ। राजा दशरथ अपनी तीसरी रानी को बहुत प्यार करते थे।

कुछ समय के पश्चात् राजा दशरथ ने नारायणी शक्ति से युक्त अपने पुत्र राम को राजा बनाने की इच्छा व्यक्त की किन्तु छोटी रानी ने राजा से कहकर राम और लक्ष्मण को बारह वर्ष के लिये वन भिजवा दिया। इस प्रसंग में सीता का कोई उल्लेख नहीं दिया गया

है।

जब भरत अपने ननिहाल से लौटकर वापस आये तब उन्हें राम के वनगमन की जानकारी हुई। उन्होंने वन में जाकर राम से लौटने की प्रार्थना की किन्तु राम वापस लौटने के लिये तैयार नहीं हुये अन्त में भरत राम की पादुकायें लेकर वापस लौट आये। उन्होंने राम की पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया और उन पादुकाओं से आज्ञा लेकर बारह वर्ष तक शासन किया।

वनवास की बारह वर्ष की अवधि के समाप्त होने पर राम वन से वापस आये और उन्होंने भरत की प्रार्थना से राज्य भार ग्रहण किया। उनका शासन सभी के लिये सुखदायक था और उनके शासन काल में सभी व्यक्ति अपने-अपने धर्म का निष्ठा के साथ पालन करते थे।

पउम चरियं (विमल सूरिकृत) 300 ई0 400 ई0–

जैन कवियों ने प्रायः प्राकृत और अपभृंश में रामकथा विषयक अनेक काव्यों का प्रणयन किया है, 'पउम चरियं' उन्हीं में से एक है।

'पउम परियं' रामचरित विषयक प्राकृत का प्रथम महाकाव्य है। पउम चरियं का कथानक एक सौ उट्ठारह पर्वों में विभक्त है। पउम चरियं के प्रथम पर्व से बीसवें पर्व तक रावण-चरित्र, इक्कीसवें पर्व से बत्तीसवें पर्व तक राम और सीता के जन्म तथा विवाह, तेंतीसवें पर्व से बयालीसवें पर्व तक श्री राम के वन-भ्रमण, तेतालीसवें पर्व से तिरपनवें पर्व तक सीता-हरण तथा सीता-अन्वेषण का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार चौंवनवें पर्व से सतहत्तरवें पर्व तक राम-रावण युद्ध का वर्णन किया गया है। युद्ध में लक्ष्मण रावण का वध कर देते हैं। अठहत्तरवें पर्व से लेकर एक सौ अट्ठारवें पर्व तक श्रीराम के उत्तम चरित्र का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत काव्य में राम और सीता का जैन धर्म में दीक्षित होना बतलाया गया है। यह काव्यकार की जैन धर्म के प्रति विशेष निष्ठा का प्रतीक है।

अपभ्रंश साहित्य में रामकथा (500 ई0 से 1000 ई0 तक)–

अपभ्रंश भाषा में प्रचुर राम-साहित्य लिखा गया है। अपभ्रंश में लिखी गई निम्नांकित कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं-

1. पउम चरिउ (रामायण पुराण) - स्वयम्भू कृत।

2. पउम चरिउ (महापुराण) – पुष्पदन्त कृत।

3. पउम चरिउ अथवा बलहद्द चरिउ (पद्म पुराण अथवा बलभद्र पुराण) – रइधू कृत।

पउम चरिउ (रामायण पुराण) स्वयम्भू कृत–

पउम चरिउ अपभ्रंश में लिखा गया रामकथा विषयक प्रथम महाकाव्य हैं। इसमें पाँच काण्ड और नब्बे सन्धियाँ हैं। इन नब्बे सन्धियों में स्वयम्भू की तिरासी सन्धियाँ हैं शेष सात सन्धियाँ त्रिभुवन की हैं। पउम चरिउ के पाँच काण्ड निम्नांकित हैं–

1. विद्याधर काण्ड। 2. अयोध्या काण्ड।

3. सुन्दर काण्ड। 4. युद्ध काण्ड।

5. उत्तर काण्ड।

इसके अनुसार भी रावण का वध लक्ष्मण ने किया है।

पउम चरिउ (महापुराण) पुष्पदन्त कृत–

पउम चरिउ महापुराण में निम्नांकित दो काण्ड हैं–

1. आदि पुराण 2. उत्तर पुराण

पउम चरिउ में एक सौ बाईस सन्धियाँ हैं। इस महापुराण में तिरसठ महापुरूषों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। इसमें महापुरूष–चरित्र कथन के क्रम में भगवान श्री राम के चरित्र में भी प्रकाश डाला गया है।

पउम परिउ अथवा बलहद्य चरिउ (श्री रइधू कृत)
(पद्म पुराण अथवा बलभद्र पुराण)

प्रस्तुत काव्य में बारह सन्धियाँ और दो सौ पैंसठ कड़वक हैं। इस काव्य में राम–रावण के तुमुल युद्ध का सजीव वर्णन किया गया है।

इस प्रकार महाकवि रइधू कृत पउम चरिउ में भगवान राम के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है।

संस्कृत प्रबन्ध काव्यों में रामकथा–

संस्कृत के ललित साहित्य का भण्डार असीम है। इसमें बृहत्रयी तथा लघुत्रयी की विशेष प्रसिद्धि है। श्रीराम और श्रीकृष्ण की लीलाओं को काव्य का प्रतिपाद्य विषय बनाकर संस्कृत में अनेक काव्यों का प्रणयन किया गया है। प्रस्तुत प्रसंग के अन्तर्गत संस्कृत के

प्रसिद्ध रामकाव्यों का अनुशीलन किया जायेगा।

रघुवंश (प्रथम शतीं ई0पू0) कालिदास–

महाकवि कालिदास ने उन्नीस सर्गात्मक महाकाव्य रघुवंश में सूर्यवंश की उनतीस पीढ़ियों के छत्तीस राजाओं का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में राजा दिलीप से लेकर राजा अग्निवंश तक की कथा कहीं गयी है।

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के दशम सर्ग से प्रारम्भ कर पंचदश सर्ग तक में श्रीराम के आलौकिक चरित्र का मनोहारी वर्णन करते हुये कहा है कि पृथ्वी पर रावण का अत्याचार बढ़ गया था। स्थिति के असध्य हो जाने पर विष्णु ने पृथ्वी और देवताओं की प्रार्थना सुनकर धर्म संस्थापन हेतु अवतार धारण कर रावण का वंश सहित विनाश करने का आवश्वासन दिया–

धर्म संरक्षार्थेव प्रवृत्तिर्भूवि शार्गिणः। रघुवंश 15/4

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः।

अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघ स्तिरोदधे।। रघुवंश 10/48

भट्टि काव्य (रावण–वधकाव्य) पंचम शती ई0–

कवि के नाम के आधार पर इस काव्य को भट्टि काव्य भी कहते हैं। इस काव्य में कुल बाइस सर्ग हैं। प्रस्तुत काव्य में राम–कथा के वर्णन के साथ ही संस्कृत व्याकरण के नियमों की जानकारी देने का भी प्रयास किया गया है।

जानकी–हरण (अष्टम शती ई0)–

सिंहल के महाकवि 'कुमारदास' ने अष्टमशती में जानकी हरण नामक काव्य की रचना की है। किन्तु उन्होंने अपने काव्य में श्रीराम की उदात्तता का प्रतिपादन नहीं किया है। उसने अनेक स्थलों में अमर्यादित प्रसंगों का विनियोजन किया है। जानकी हरण का कथानक बीस सर्गो में विन्यस्त है। उसका कथानक वाल्मीकि रामायण के आरम्भिक छह काण्डों की कथावस्तु पर आधारित है।

रामायण मंजरी (एकादश शती ई0)–

महाकवि 'क्षेमेन्द्र' द्वारा प्रणीत रामायण मंजरी नामक काव्य वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ का सारांश रूप है। इसमें वाल्मीकि रामायण की भांति ही सम्पूर्ण रामकथा

बाल काण्ड से लेकर उत्तर काण्ड तक कुल सात काण्डों में विभक्त है। इसमें कुल छह हजार तीन सौ इक्यानवें श्लोक हैं।

कथा का आरम्भ वाल्मीकि और नारद के प्रश्नोत्तर से हुआ है। वाल्मीकि ने नारद से पूछा कि इस समय लोक में सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों से युक्त महापुरुष कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने गुणाभिराम श्रीराम का नामोल्लेख कर उनकी लीलाओं का वर्णन किया है-

गुणाभिरामः श्रीरामो विरामो वैरि सम्पदाम्।

जगद्येन हरेर्वृक्षः कौस्तुभेनेव राजितम्।। रामायण मंजरी 1/10

संस्कृत नाटकों में राम-कथा-

संस्कृत के कवियों की भांति ही उसके नाटककारों ने भी रामकथा को आधार बनाकर अनेक नाटकों की रचना की है जो निम्नलिखित है-

प्रतिमा नाटकम् (भासकृत) तृतीय शती ई0पू0-

संस्कृत के प्राचीन नाटककारों में सर्वप्रथम भास का नामोल्लेख किया जाता है। उनके राम से सम्बन्धित दो नाटक हैं 1-प्रतिमानाटकम् 2. अभिषेक नाटक।

प्रतिमा नाटक में रघुकुल के दिवंगत नरेशों की प्रतिमा स्थापित करने की राजकीय परम्परा का उल्लेख किया गया है। यह प्रसंग ही नाटक को वैशिष्ट्य प्रदान करता है।

सात अंकों वाले प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भ राजा दशरथ के इस कथन से किया गया है कि "श्रीराम के राज्याभिषेक की व्यवस्था शीघ्र कर ली जाये।"

अभिषेक नाटक-

अभिषेक नाटक में कुल छह अंक हैं। इस नाटक में किष्किन्धा काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड की कथा कहीं गयी है।

महावीर चरित नाटक (अष्टम शती ई0)-

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति के राम कथा विषयक निम्नांकित दो नाटक प्रसिद्ध हैं-

1. महावीर चरित नाटक। 2. उत्तर रामचरित नाटक।

महावीर चरित में कुल सात अंक हैं। इस नाटक में श्रीराम के द्वारा ताट्का आदि के वध से लेकर उनके राज्याभिषेक तक के प्रसंगों का वर्णन किया है।

उत्तर रामचरितम् नाटक–

भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम्' नाटक में सप्त अंक हैं। नाटककार भवभूति ने प्रस्तुत नाटक में श्रीराम के उत्तर अर्थात परवर्ती चरित्र का प्रतिपादन किया है।

अनर्धराघव नाटक (नवम् शती ई0)–

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार मुरारि ने सप्त अंकात्मक नाटक 'अनर्ध राघव' में भगवान श्रीराम की कथा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

बाल रामायण नाटक (नवम् शती ई0)–

काव्य मीमांसाकार राजशेखर ने दस अंकों वाले नाटक 'बाल रामायण' में भगवान श्रीराम की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

हनुमान नाटक (एकादशी शती ई0)–

हनुमान्नाटक के सम्प्रति दो संस्करण उपलब्ध हैं। प्रथम संस्करण श्री दामोदर मिश्र के नाम से सम्बद्ध है। इसमें चौदह अंक पाँच सौ उन्यासी श्लोक हैं। द्वितीय संस्करण महानाटक के नाम से प्रसिद्ध है इसके प्रणेता श्री मधुसूदन मिश्र हैं। इसमें नौ अंक तथा सात सौ इक्यानवे श्लोक हैं।

प्रसन्न राघव नाटक (त्रयोदश शती ई0)–

प्रसन्न राघव नाटक के प्रणेता पीयूषवर्षी जयदेव का आविर्भाव विक्रम की तेरहवीं और चौदहवीं शती के मध्यकाल में हुआ था। यह जयदेव गीत गोविन्द के रचनाकार जयदेव से भिन्न है।

प्रसन्न राघव नाटक का प्रारम्भ जनक के धनुष यज्ञ महोत्सव से होकर श्रीराम के राज्याभिषेक तक ही है।

श्लोक काव्य– राघव पाण्डवीय प्रथम, (धनंजय), राघव पाण्डवीय द्विवतीय (माधव भट्ट), राघव नैषधीय (हर दत्त सूरि), रामचरित मानस (संध्याकर नंदी), राघव पाण्डव यादवीय (चिदंबर)।

विलोम काव्य– राम कृष्ण विलोम काव्य (सूर्यक कवि), यादव राघवीय, (वेंकट वृरि), राघव-यादवीय (लेखक अज्ञात है)।

चित्र काव्य– राम लीलामृत (कृष्ण मोहन), चित्रवन्ध रामायण (वेंकटेश)।

खण्ड काव्य– रामाभ्युदय (अन्नदा चरण तर्क चूणामणि), जानकी परिणय (चक्र कवि), श्री रामचरित (कोटि राजवंश के युवराज कवि), सीता स्वयंवर (हरिकृष्ण भट्ट), उत्तर रामचरित (राम पाणिवाद)।

सन्देश काव्य– हंसदूत (वेदान्त देशिक), भ्रमरदूत (रुद्र न्याय पंचानन), वातदूत (कृष्णनाथ)।

ऐतिहासिक ग्रन्थ– रघुनाथाभ्युदय (रामभद्राम्ब), पृथ्वी राज विजय (जोनराज)।

व्याकरण काव्य– भट्टि काव्य (महाकवि भट्टि) रावणार्जुनीयम् (भट्टभीम)।

चम्पूकाव्य– चम्पू रामायण (भोजराज) उत्तर रामचरित चम्पू (वेंकट)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी व्यापकता के कारण रामकथा युगानुरूप मूल्य बोधों के अनुसार ढलती और प्रवावित होती रही है। आधुनिक युग में अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने जानकी जीवनम् में उक्त रामकथा को किंचित संक्षिप्त, किंचित विस्तार तथा परिवर्तन, परिवर्धन रूप में लिखा है। मूलकथा सीता के जन्म, बाल, वयः सन्धि, किशोरी एवं युवती रूपों की भव्य, सहृदय झांकी अंकित कर दशरथ शासन, पुत्रेष्टि यज्ञ एवं रामजन्म से लेकर सीता निर्वासन तथा उसका अन्त राम–सीता के मिलन से हुआ है। इस प्रकार यह कथा मूल रूप में सुखान्त है। कवि ने वैदेही के जीवन का उत्तरार्ध पुटपाक प्रतीकाश व्यथा कथा लिखकर वशिष्ठ उपदेश के रूप में नूतन रूप में प्रस्तुत किया है। कवि स्वयं कहता है–"राघव द्वारा सीता को निर्वासित किये जाने की घटना पर मेरी आस्था नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि सचमुच यह घटना घटी थी अथवा नहीं परन्तु यह अवश्य मानता हूँ कि रामकथा के आदि सृष्टा प्राचेतस वाल्मीकि ने न तो सीता–निर्वासन को स्वीकार किया न लिखा था।"[1]

राजेन्द्र मिश्र ने सीता निर्वासन सम्बन्धी रामायण के उत्तर काण्ड, भवभूति के उत्तर रामचरितम् तथा अन्य काव्य ग्रन्थों में मिलने वाले इस प्रसंग के मिलने वाली कथा की विस्तृत परीक्षा एवं समीक्षा की है उसका निष्कर्ष कवि ने सुखान्त रूप में प्रस्तुत किया कर अपने अकाण्ड प्रथन को दुग्ध कुल्या दृष्टि से देखने का अनुरोध किया है।

निष्कर्ष यह है कि वाल्मीकि ने जिस रामकथा का गायन किया है उसमें उनके प्रेक्षेपों

(1) जानकी जीवनम्–आत्मकथ्य पृष्ठ सं0–10

अप्रासंगिक घटनाओं का विस्तार है समूचा उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त प्रतीत होता है फिर भी अपनी उदात्त कथा, भव्य एवं आदर्श चरित्र चित्रांकन, मनोआह्लादकारिणी प्राकृतिक सुषमा एवं उदात्त रसों और भव्य भाषा की बनावट और बुनावट के कारण सचमुच ही यह काव्य प्रस्थान काव्य बीजकाव्य या आदिकाव्य होने योग्य है। इसी कथा का आश्रय लेकर व्यास समास शैली में राजेन्द्र मिश्र ने जानकी जीवनम् नामक महाकाव्य लिखा है। शोधकर्त्री ने काव्यशास्त्रीय मानदण्डों के अनुसार प्राक्तन वाल्मीकि रामायण और अधुनातन जानकी जीवनम् की समीक्षा, तुलना, साम्य वैषम्य प्रस्तुत करना चाहती है, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि आज के संघर्षमय जीवन, तनाव और विडम्बना पूर्ण स्थितियों का चित्रांकन करने में रामकथा पूर्णरूपेण सक्षम है।

द्वितीय अध्याय

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् की कथा वस्तु

हृदय की रागात्मक अनुभूतियाँ भावोच्छ्न्न अवस्था में काव्य रूप में प्रकट होती है। जिसके प्रबन्ध और मुक्तक दो भेद मान्य हैं। प्रबन्ध काव्य का प्रमुख भेद महाकाव्य है, जिसमें किसी न किसी कथा का आश्रय लिया जाता है इसे हम कथानक, कथावस्तु, वस्तु संगठन, इतिवृत्त या प्लाट कहते हैं।

कथावस्तु महाकाव्य का मूल आधार है इसके अन्तर्गत वे समस्त घटनाऐं, पात्रों का जीवन आ जाता है जिससे कथा का विकास होता है। भारतीय आचार्यों ने कथानक के सन्दर्भ में निम्न मान्यताएँ स्थापित की हैं कथानक ऐतिहासिक हो, वह विभिन्न सर्गों में विभक्त हो, उनमें नाटकीय सन्धियों का निर्वाह हो, काव्यारम्भ में नमस्कार, मंगलचरण और आशीर्वचन हों। इस कथा का महद उद्देश्य होना चाहिए इसकी घटनाओं से समग्र जीवन का चित्रण आवश्यक है।[1]

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र में महाकाव्य को 'एपिक' कहा जाता है जिसमें गम्भीर और उदात्त कार्य व्यापार, ऐतिहासिक कथानक, अति प्राकृत तथा आलौकिक तत्त्वों का मिश्रण, घटनाओं में अन्विति होनी चाहिए। इसकी कथावस्तु में जीवन् की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। इसमें समसामयिक जीवन के उद्गार होते हैं। इसकी कथा में घटना बाहुल्य और वर्णन वैविध्य होता है।[2]

तात्पर्य यह है कि महाकाव्य का मूल आधार कथानक या कथावस्तु है। जिसके अभाव में महाकाव्य की परिकल्पना नहीं की जा सकती। यह कथावस्तु छोटी-छोटी घटनाओं का आलेख होता है और यह घटनाऐं सांसारिक यथार्थ और व्यवहारिकता से सम्वद्ध होती हैं। घटना विन्यास में लेखक, कवि, परिच्छेदों या सर्गों का उपयोग कर उनमें अन्विति और प्रवाहमयता का ऐसा संयोजन करता है जिसमें पारस्परिक सम्बद्धता, वैचारिक मौतिकता, घटनात्मक सत्यता, वर्णनात्मक रोचकता और मानव जीवन के समस्याओं की व्याख्या करता है। महाकाव्य में प्रयुक्त घटनाऐं जीवन की विविध अवस्थाओं से सम्वद्ध होती हैं क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है जिस प्रकार समाज में रहकर परस्पर सामंजस्य से जीवन को सरल

(1) काव्यालंकार-रूद्रट, 16/7-19 एवं दर्पण-विश्वनाथ, 6/315 (2) विस्तृत विवरण के लिए इंग्लिस एपिक एण्ड हीरोइक पोयट्री दृष्टव्य है। 25

और सुगम बनाता है उसी प्रकार कवि निर्मित रचना संसार भी होता है जिसके माध्यम से महाकवि मानवीय अनुभूतियों की पूर्णात्मक अभिव्यक्ति एवं जीवन के सत्-असत् पक्षों का चित्रांकन करता है। प्रस्तुत अध्याय में आलोच्य महाकाव्यों की घटनाओं के उल्लेख से कथावस्तु के स्वरूप का उल्लेख कर अन्त में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र सम्बन्धी नियमों, सिद्धान्तों के अनुसार उसकी समीक्षा और अनुशंसन और परिशंसन किया जायेगा। प्रथम अध्याय में रामकाव्य के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि रामकथा का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है यद्यपि कुछ विद्वानों किसी मूल रामायण की परिकल्पना कर आलोच्य काव्य को उसका विस्तार मानते हैं। जानकी जीवनम् की कथा का स्रोत भी वाल्मीकि रामायण है यद्यपि दोनों के मध्य शताब्दियों का अन्तर है इस कारण कथा में प्राप्त घटनाओं, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों में वैषम्य उसकी अन्तिवति में पर्याप्त विषमता है फिर भी मूल कथानक तो लगभग एक सा ही है जो इस प्रकार है-

वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु

बालकाण्ड प्रथम काण्ड

दशरथ यज्ञ— अयोध्या का वर्णन, राजा, नागरिक, मंत्री, पुरोहितों का वर्णन। अश्वमेघ यज्ञ का संकल्प, ऋष्यशृंग की कथा, ऋष्यशृंग द्वारा अश्वमेघ, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना, पायस प्राप्त कर दशरथ का इसे अपनी पत्नियों में बाँटना, देवताओं का अप्सराओं और गंधर्वियों से वानों की उत्पत्ति।

राम का जन्म तथा प्रारम्भिक कृत्य— राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का जन्म, विश्वामित्र का आगमन और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगना, राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ गमन, सरयू तट पर विश्वामित्र से बला और अतिबला की प्राप्ति, गंगा-सरयू के संगम पर विश्वामित्र द्वारा कामदहन की कथा, मलद और करूष की कथा। तारका की कथा, राम द्वारा उसका वध, राम को दिए गये आयुधों की सूची, सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा, मारीच का समुद्र पर विक्षेप और सुवाहु का वध, मिथिला के लिए प्रस्थान।

पौराणिक कथाएँ— विश्वामित्र की वंश कथा, हिमवान की पुत्रियाँ, गंगा का स्वर्गारोहण, उमा का शिव से विवाह, कार्तिकेय का जन्म। सगर पुत्रों का पाताल में भस्म

होना, भागीरथ द्वारा गंगावतरण, जह्नु द्वारा गंगा का पिया जाना और मुक्त होकर भागीरथ का अनुसरण करते हुए पाताल में सगर पुत्रों का उद्धार करना।

समुद्र मंथन की कथा, गौतम द्वारा इन्द्र एवं अहिल्या को दिए गये शापों की कथा, अहिल्योद्धार, जनक द्वारा विश्वामित्र, राम-लक्ष्मण का स्वागत, विश्वामित्र की कथा।

राम-विवाह– जनक द्वारा धनुष तथा सीता के आलौकिक जन्म की कथा, उनकी सीता-विवाह विषमक प्रतिज्ञा, राजाओं की असफलता और उनका आक्रमण, राम द्वारा धनुर्भंग। दशरथ का बुलावा और मिथिला में उनका आगमन।

वशिष्ठ द्वारा दशरथ का परिचय, जनक का अपना वंश वर्णन, चारों भाइयों का विवाह।

उत्तरीय पर्वतों पर विश्वामित्र का गमन। दशरथ के मार्ग में अपशकुन और परशुराम का आगमन। वैष्णव धनुष चढ़ाकर राम द्वारा परशुराम की पराजय, अयोध्या गमन, भरत और हनुमान का प्रस्थान, राम की लोकप्रियता।

आयोध्या काण्ड-द्वितीय अध्याय

राम का निर्वासन– राम के काव्याभिषेक की तैयारी, मंथरा-कैकेयी संवाद, दशरथ-कैकेयी संवाद, दशरथ द्वारा दो वरों की स्वीकृति। दशरथ के पास राम का आगमन, दशरथ के सम्मुख कैकेयी का समाचार कथन। लक्ष्मण और कौशल्या द्वारा निर्वासन का विरोधन, राम को उनको समझाना। कौशल्या द्वारा विदा और मंगलकांक्षा वन की भयंकरता से राम का सीता को भयभीत करना, अन्त में साथ चलने की स्वीकृति देना, लक्ष्मण का आग्रह और राम द्वारा स्वीकृति।

प्रस्थान, दान-वितरण, राम का राजा के पास जाना, समुन्त्र द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, दशरथ का राम के साथ सेना भेजने का प्रस्ताव, कैकेयी की आपत्ति, कैकेयी द्वारा दिए वल्कल का धारण करना, दशरथ द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, सुमन्त्र का रथ लाना, कौशल्या द्वारा सीता को शिक्षा, विदा विलाप-कलाप, दशरथ की मूर्च्छा, कौशल्या का विलाप और सुमित्रा का सान्त्वना देना।

चित्रकूट की यात्रा– अयोध्यावासियों का रथ के साथ जाना, तमसा के पास रात्रि-निवास, उनके सोते समय तीनों का सुमन्त्र के साथ प्रस्थान, लोगों का विलाप एवं अयोध्या लौटना। वेदश्रुति और गोमती के पार गुह का मिलन, लक्ष्मण और गुह का राम का गुणकथन करते हुए रात्रि व्यतीत करना, सुमन्त्र को विदा करके गुह की नौका पर गंगा

पार करना।

गंगा-यमुना के संगम पर भरद्वाज आश्रम में जाना, भरद्वाज की चित्रकूट-निवास की मन्त्रणा, यमुना को पार करना, चित्रकूट पहुँचना, वाल्मीकि से मिलन, लक्ष्मण द्वारा एक पर्णशाला का निर्माण।

दशरथ का मरण– सुमन्त्र द्वारा राम का सन्देश सुनकर दशरथ की मूर्च्छा और विलाप, सुमन्त्र द्वारा कौशल्या को सांत्वना, कौशल्या की भर्त्सना से दशरथ का मूर्च्छित होना, दशरथ द्वारा अन्धमुनि-पुत्र की कथा, दशरथ मरण, विलाप।

भरत का राज्य अस्वीकृत करना– भरत का अयोध्या आगमन, कैकेयी द्वारा राज्य-ग्रहण का अनुरोध, भरत की भर्त्सना और मंत्रियों के सम्मुख राज्य को अस्वीकृत करना तथा उनका कौशल्या को अपना निरपराधी होने का आश्वासन।

दशरथ की अन्त्येष्टि– भरत द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया और दान-वितरण, भरत और शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न द्वारा मंथरा को ताडना।

भरत की चित्रकूट यात्रा– भरत का पुनः राज्य को अस्वीकार करना और यात्रा की आज्ञा देना, सभा में वशिष्ठ का भरत को समझाना परन्तु उसका न मानना, प्रस्थान और श्रृंगवेरपुर आगमन। भरत द्वारा गुह का सन्देह-निवारण, गुह का लक्ष्मण की वार्ता का उल्लेख करना तथा राम का शयन साल दिखलाना, गंगा पार करना। भरद्वाज की तपःशक्ति से आतिथ्य सत्कार।

चित्रकूट आगमन– चित्रकूट देखकर भरत का सेना रोकना, राम द्वारा चित्रकूट और मन्दाकिनी की शोभा का वर्णन, सेना को निकट आते देख लक्ष्मण का आक्रोश और राम का उनको शान्त करना, भरत और शत्रुघ्न का राम के निकट जाना, राम का कुशल प्रश्न।

राम द्वारा प्रत्यागमन की अस्वीकृति– भरत का दशरथ मरण का समाचार देना और राम से राज्य-ग्रहण का अनुरोध, राम का अस्वीकार करना, राम का विलाप और दशरथ के लिए जलक्रिया करना, माताओं का आगमन, जावालि-वृतान्त, वशिष्ठ का आग्रह, भरत द्वारा प्रायोपवेशन की धमकी, लौटने पर राज्य ग्रहण का राम द्वारा आश्वासन, ऋषियों की आकाशवाणी सुनकर भरत की पादुकाएँ लेकर वापस जाना।

भरत का प्रत्यागमन– भरद्वाज से मिलकर भरत का रस-शून्य अयोध्या में

लौटना। राज्यसिंहासन पर पादुकाऐं स्थापित कर भरत का नन्दिग्राम में निवास।

राम का चित्रकूट से प्रस्थान— राक्षसों के उपद्रव से तपस्वियों का चित्रकूट-त्याग और राम से भी आग्रह, राम का अस्वीकार करना, बाद में चित्रकूट त्यागकर राम का अत्रि के आश्रम में जाना। सीता-अनुसूया संवाद, अनसूया का माला-वस्त्र-आभूषण, अंगराग प्रदान करना, सीता का अपना जीवन वृतान्त कहना।

अरण्य काण्ड (तृतीय काण्ड)

दण्ड कारण्य प्रवेश— दण्ड कारण्य निवासी ऋषियों का स्वागत, विराध द्वारा सीता-अपहरण तथा राम-लक्ष्मण का उसे परास्त करना, राम को देखकर इन्द्र का आश्रम से प्रस्थान, शरभंग का राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम भेजना, राम द्वारा राक्षसों के विरूद्ध सहायता देने की प्रतिज्ञा का उल्लेख। पंचात्सरतड़ाग पर आगमन। राम का तड़ाग के चारों ओर के आश्रयों में दस-वर्षो तक निवास। सुतीक्ष्ण से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछना, अगस्त्य द्वारा इल्वल और वातापि के वध की कथा का राम द्वारा उल्लेख, अगस्त्य का स्वागत और विष्णु धनुष प्रदान, फिर गोदावरी-तट पर स्थित पंचवटी का प्रथप्रदर्शन जटायु के मित्र और सम्पात्ती के भाई जटायु से मिलना, पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटर निर्माण। लक्ष्मण का कैकेयी को दोष देना। राम का उन्हें रोक कर भरत गुणकथन के लिये आग्रह।

शूर्पणखा आगमन— शूर्पणखा को निरूपीकरण राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर झपटना। लक्ष्मण का उनके नाक, कान काटना खर के भेजे हुए चौदर राक्षसों का राम द्वारा वध।

खर-वध— खर के चौदर हजार की सेना लेकर पहुँचाने पर सीता और लक्ष्मण का गुफा में जाना, राम द्वारा राक्षसों का दूषण त्रिशिर और खर का वध, अकंपन का रावण को समाचार देने और सीता-हरण के लिए प्रोत्साहित करना, मारीच से मन्त्रणा।

शूर्पणखा-रावण संवाद— रावण का मारीच के सम्मुख सीता हरण का प्रस्ताव रखना। मारीच का समझाना, बाद में चेतावनी देना, स्वीकार करना।

कनक मृग— मारीच के कनक मृग रूप को देखकर सीता का उसके लिये प्रार्थना करना। सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर राम का मृग के लिये जाना। दूर जाने पर राम का मारीच को मारना। करते समय उसका राक्षस रूप में सीता, लक्ष्मण शब्द करना, सीता का

लांक्ष्ना से लक्ष्मण का प्रस्थान।

सीता–हरण– परिव्राजक के रूप में रावण का सीता से जीवन वृतान्त सुनाना। प्रकट होकर रावण का बलपूर्वक सीता को अपने रथ पर ले चलना। सीता द्वारा पुकारे जाने पर जटायु का युद्ध करना और आहत होना, सीता के आभूषणों का गिरना, पाँच वानरों की ओर सीता का आभूषण फेंकना, लंका में सीता का अशोक वन में राक्षसियों का नियन्त्रण में रहना।

सीता–खोज– शून्य पर्णशाला लौटते समय राम का लक्ष्मण से मिलना और शंकाकुल होकर लक्ष्मण को दोष देना, शून्य कुटी देखकर राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना। गोदावरी तट पर खोज। पुष्प और आभूषणों का मिलना। जटायु युद्ध के चिन्ह दिखाई देना। लक्ष्मण की सान्त्वना। जटायु मरण के पूर्व जटायु का रावण द्वारा सीता हरण तथा दक्षिण की ओर प्रस्थान का उल्लेख। लक्ष्मण का अयोमुखी को निरूप करना। कबंध का वाहु चिव्छेद, उसके विषय में स्थूल सिर तथा इन्द्र के शाप का उल्लेख, चिता के प्रज्जवलित होने पर कंबध का दिव्य रूप में सुग्रीव के पास जाने की मंत्रणा देना, पम्पासर स्थित आश्रम में शवरी का स्वागत और उसका स्वर्गरोहण। पंपावर्णन और राम का विलाप।

किष्किंधा काण्ड (चतुर्थ काण्ड)

सुग्रीव से मैत्री– पंपासर देखकर राम की विरह व्यथा। सुग्रीव का हनुमान को भेजना। हनुमान का उनको सुग्रीव के पास ले जाना। सुग्रीव का स्वागत तथा अपनी कथा वताना। राम द्वारा वालि वध की प्रतिज्ञा। सुग्रीव का राम की सहायता का वचन देना तथा सीता के आमरण दिखलाना, सुग्रीव का पुनः सहायता का वचन देना तथा अपनी कथा सुनाना।

राम की परीक्षा– सुग्रीव द्वारा बालि की शक्ति का वर्णन। राम द्वारा दुंदर्भि के अस्थि कंकाल का फेंका जाना, अनन्तर राम से सात ताड़ तरूओं के एक, वाण द्वारा भेदे जाने पर सुग्रीव का विश्वस्त होना। किष्किंधा जाकर सुग्रीव का वालि से प्रथम द्वन्द्व युद्ध। राम का सुग्रीव को न पहचानना। ऋष्यमूक में लौटना।

बालि–वध– द्वितीय वार सुग्रीव का बालि को युद्ध के लिये ललकारना, तारा द्वारा रोके जाने पर भी वालि का युद्ध के लिये जाना तथा राम के वाण से आहत होना। इन्द्रमाला के वालि का जीवित रहना तथा राम को भर्त्सना देना, राम का प्रत्युत्तर।

तारा–विलाप– समाचार पाकर तारा का आना और विलाप करना हनुमान का तारा

को सान्त्वना देना।

बालि—मरण— बालि का सुग्रीव के हाथ अंगद को सौंपना सुग्रीव के इन्द्रमाला उतार देने पर उसका मरण, वानरों और तारा का विलाप, सुग्रीव का पश्चाताप और राम का सान्त्वना देना।

वर्षा ऋतु— राम का प्रस्रवण पर्वत की एक गुफा में वर्षा निवास, सुग्रीव का अभिषेक तथा अंगद का युवराज होना राम का वर्षा वर्णन तथा उनका विलाप।

वानरों का प्रेषण (शरद ऋतु)— सुग्रीव का वानर सेना बुलाना, राम का शरद ऋतु वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता का उल्लेख कुद्ध होकर लक्ष्मण का सुग्रीव के पास जाना।

लक्ष्मण सुग्रीव भेंट— तारा को लक्ष्मण का शान्त करना। लक्ष्मण का सुग्रीव की भर्त्सना करना। तारा तथा सुग्रीव की रक्षा प्रार्थना। सुग्रीव की आज्ञा से सेना का आगमन।

दिग्वर्णन— सुग्रीव का सेना के साथ राम के पास पहुँचना। दिशाओं का वर्णन करते हुए सुग्रीव का वानर सेना को चर्तुदिक भेजना। विश्वासपात्र हनुमान का दक्षिण दिशा में भेजना तथा राम का उन्हें अभिज्ञान के रूप में अंगूठी देना।

वानरों की खोज— वानरों का प्रस्थान तथा पूर्व पश्चिम और उत्तर से वानरों का निराश लौटना हनुमान और उनके साथियों की विध्य पर्वत में खोज, उनका कंदरा में प्रवेश, स्वयं प्रभा द्वारा सत्कार तथा आँखें बन्द करवाकर उनको गुफा के बाहर ले जाना।

अंगद की निराशा— कंदरा से निकलकर विन्ध्य तल से सागर तट पर उनका पहुँचाना। अंगद प्रायोपवेशन के लिये प्रस्ताव अंगद का सुग्रीव से भयभीत होना, सभी का दुःखी और निराश होना।

संपाति— संपाति के सम्मुख अंगद जटायु मृत्यु का उल्लेख। संपाति की वृतान्त पूंछना और लंका की स्थित बतलाना। उसका अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा रावण को सीता ले जाते देखने का उल्लेख करना, ऋषि निशाकर के कथनासुर संपाति के पंखों का फिर से उग आना।

सागर का तट— सागर के तट पर पहुँचकर अंगद की निराशा। जाम्बवान द्वारा हनुमान की कथा सामर्थ्य वर्णन हनुमान का महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर कूदने के लिए तत्पर होना।

लंका काण्ड

समुद्र की ओर प्रस्थान— समुद्र की बाधा की विचार से राम से निराशा तथा सुग्रीव द्वारा सेतुबन्ध प्रस्ताव, हनुमान द्वारा लंका वर्णन, समुद्र तक पहुँचाना तथा राम का विरह वर्णन।

रावण सभा— सभासदों द्वारा रावण को विजय का आश्वासन तथा सीता को लौटा देने की विभीषण की मन्त्रणा, दूसरे दिन विभीषण द्वारा चेतावनी, कुम्भकर्ण का जागना रावण को दोष देना लेकिन सहायता की प्रतिज्ञा करना, पुंजिक स्थला के कारण पितामह के शाप का रावण द्वारा उल्लेख, इन्द्रजित, रावण द्वारा निन्दित होकर विभीषण का रावण को छोड़कर जाना।

विभीषण की शरणागति— सुग्रीवादि के विरोध करने पर भी हनुमान के आग्रह कारण विभीषण को शरण मिलना, राम द्वारा विभीषण का अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को विवश करने की विभीषण की मंत्रणा शार्दूल द्वारा रावण को राम सेना की सूचना मिलना सुग्रीव को अपनी ओर मिलाने के लिये रावण द्वारा शुक को भेजा जाना, शुक का बंधन और राम द्वारा मुक्ति।

सेतु बंध— तीन दिन के प्रायोपवेशन के बाद राम का समुद्र पर व्रह्मास्त्र प्रयोग के लिये तत्पर होना। समुद्र की विनय तथा दुमकुल्य का ब्रह्मास्त्र द्वारा विध्वंस। सागर के कथन से नल द्वारा सेतुबंध और सेना का संतरण लंका में अपशकुन तथा शुक का रावण को समाचार देना।

शुक-सारण-शार्दूल— रावण गुप्तचर शुक और सारण का विभीपण द्वारा बंधन और राम द्वारा मुक्ति। उनका रावण को समाचार देना। शार्दूल का रावण द्वारा भेजा जाना, उसका बंधन मुक्ति और समाचार देना।

राम का मायामय शीर्ष— विन्धुज्जिव द्वारा निर्मित राम के मायामय शीर्ष का सीता का दिखलाया जाना। सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा रहस्योद्रघाटन, सरमा द्वारा सीता को रावण–सभा का समाचार मिलना, माल्यवान् का रावण को समझाना, अपशकुन होने पर भी रावण का दृढ़ निश्चय होकर नगर के प्रवेश द्वारों की रक्षा देना। सुवेल पर्वत से राम लंका दर्शन सुग्रीव रावण द्वन्द्व, लंकावरोध तथा अंगद का दूत कार्य।

युद्ध प्रकरण— धूम्राक्ष, वज्रदष्ट्र, अंकपन तथा प्रहस्त का वध। रावण–लक्ष्मण द्वन्द्व, लक्ष्मण का आहत होना, मुष्टि प्रहार से हनुमान का रावण को मूर्च्छित करना, राम–रावण

युद्ध की पराजय और लज्जित होकर लौटना।

कुम्भकर्ण वध— कुम्भकर्ण का जागरण, विभीषण द्वारा राम से कुम्भकर्ण निद्रा की कथा का उल्लेख, कुम्भकर्ण द्वारा रावण की भर्त्सना कुम्भकर्ण सुग्रीव द्वन्द्व। राम द्वारा कुम्भ्कर्ण वध। रावण विलाप।

द्वन्द्व युद्ध— रावण के चार पुत्रों का (नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिर, अतिकाय) तथा दो भाइयों (महोदर, महापार्श्व) का वध। राम विलाप, इन्द्रजित का आदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम और लक्ष्मण की व्यथित करना।

लंका दहन— हनुमान को औषधि पर्वत लाकर आहतों तथा राम लक्ष्मण को स्वस्थ्य करना, रात्रि में वानरों द्वारा लंका दहन, कंपन, कुंभ, निकुम्भ तथा मकराक्ष का वध।

इन्द्रजित–वध— यज्ञ करके इन्द्रजित का युद्धारम्भ, मायामय सीता का वानर सेना के सम्मुख वध, राम विलाप तथा लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना, विभीषण वध तथा मायामय सीता का रहस्योद्घाटन तथा निकुंभिला में इन्द्रजित यज्ञ विध्वंश का परामर्श सेना सहित लक्ष्मण का यज्ञ-ध्वंश तथा इन्द्रजित वध करना, सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा, रावण विलाप, सुपार्श्व का रावण को सीता वध से रोकना, निरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व की वध राक्षसियों का विलाप।

रावण वध— रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगाना तथा हनुमान द्वारा महोदय पर्वत से औषधि लाना, इन्द्ररथ का मातलि सहित भेजा जाना, राम रावण युद्ध का आरम्भ, अगस्त्य का राम को आदित्यहर्दय का स्त्रोद सिखाना, सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मस्त्र से रावण वध, विभीषण का विलाप, रावण की अत्येष्टि, विभीषण का अभिषेक, तथा राम का सीता को बुला भेजना।

प्रत्यावर्तन

अग्नि परीक्षा— राम का सीता को अस्वीकार करना, लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता में सीता का प्रवेश, देवताओं द्वारा राम की विष्णुरूप में पूजा, अग्नि राम को सीता समर्पण, शिव द्वारा प्रशंसा, दशरथ की शिक्षा, मृत वानरों का इन्द्र द्वारा जीवित किया जाना, विभीषण का यात्रा के लिये पुष्पक प्रस्तुत करना, वानरों का दान दिया जाना।

वापसी यात्रा— आकाश मार्ग से राम का विभिन्न स्थानों का वर्णन करना

किष्किंधा में वानर पति-पत्नियों को साथ लेना, भरद्वाज से भेंट, हनुमान का गुह और भरत का आगमन का समाचार देना।

अयोध्या प्रवेश– अयोध्यावासियों सहित भरत का शत्रुघ्न का राम से मिलना, नन्दिग्राम में भरत का राम को शासन सौंपना, पुष्पक का कुवेर के पास लौटाया जाना, रामाभिषेक राम राज्य वर्णन।

उत्तर काण्ड

रावण चरित– विश्रवा देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल तथा धनेश बनना पुष्पक प्राप्त कर उसका लंका निवास, प्रहेति तथा हेति के वंश में उत्पन्न राक्षसों का लंका निवास, तथा विष्णु द्वारा पराजित होने पर उनका पाताल प्रवेश।

रावण का जन्म– विश्रावा कैकसी के दशग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म, वैश्रवण से ईर्ष्या होने के कारण तीनों भाइयों की तपस्या तथा व्रह्मा से नर प्राप्ति, रावण की आशंका से वैश्रवण का लंका त्याग तथा कैलाश पर निवास, राक्षसों का लंका में प्रवेश, मयसुता मन्छोदरी से रावण का विवाह।

रावण की प्रथम विजय–यात्रा– वैश्रवण को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना, रावण का नन्दिशाप, रावण का कैलाश को उठाना तथा शिव से 'रावण' नाम तथा चन्द्रहास खड्ग को प्राप्त करना, वेदवती का रावण को शाप देना, रावण द्वारा अनेक राजाओं की पराजय, तथा राजा अनारण्य का उसे शाप देना, नारद की प्रेरणा से यम पर रावण का आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा यम से रावा की रक्षा, शूर्पणखा के पति विद्युज्जिव का रावण द्वारा वध और वरुण पुत्रों का पराजय।

रावण के अन्य युद्ध– रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियों का हरण और शूर्पणखा को खर तथा दूषण के साथ दण्डकारण्य भेज देना, कुंभनसी के द्वारा मधु की रक्षा, नलकूबर का शाप, मेघनाद की वर प्राप्ति, किसी भी युद्ध के पूर्व यज्ञ कर लेने से वह अजेय होगा, अर्जुन कार्त्तवीर्य तथा वालि द्वारा रावण की पराजय।

सीता त्याग– अभिषेक के दूसरे दिन राम का ऋषियों, राजाओं, वानरों तथा राक्षसों द्वारा अभिवादन। जनक युधजित् तथा प्रतार्दन का प्रस्थान, दो मास पश्चात् सुग्रीव, अंगद, हनुमान, विभीषण, तथा वानरों, राक्षसों और प्रस्थान, पुष्पक का प्रत्यागनन तथा राम द्वारा विदा।

आश्रमों को देखे जाने की सीता की दोहद् लोकापवाद के कारण वाल्मीकि आश्रय में सीता को छोड़ने की राम की आज्ञा, गंगा के उस पार लक्ष्मण का सीता को त्याग का समाचार देना, सीता का विलाप, वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना, समुन्त्र का लक्ष्मण को सीता त्याग का कारण बतलाना। राम द्वारा लक्ष्मण को नृग, निमि तथा ययाति की कथाओं का सुनाया जाना।

शत्रुघ्न चरित्र— भार्गव च्यवन के आग्रह पर राम का लवण का वध करने के लिये शत्रुघ्न को भेजना, शत्रुघ्न का वाल्मीकि आश्रय में रात्रि व्यतीत करना तथा उसी रात्रि में कुश-लव का जन्म, शत्रुघ्न का लवण वध और मधुपुरी में बसाया जाना, बारह वर्ष के बाद राम के पास लौटते समय वाल्मीकि के आश्रम में शत्रुघ्न का रामायणगान सुनना, राम से मिलकर उनका अपने राज्य में वापस जाना।

शम्बूक वध— ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु पर नारद का शूद्र की तपस्या को उसका कारण बताना, राम का दक्षिण जाकर शम्बूक वध करना, अनन्तर अगस्त्य को दण्डक आरण्य की कथा सुनाना।

अश्वमेघ— राजसूय यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, लक्ष्मण का अश्वमेघ का प्रस्ताव तथा अनेक महात्म्य में ब्रह्महत्या से अश्वमेघ द्वारा इन्द्र की शुद्धि की कथा, राम द्वारा इला अश्वमेघ से पुरुषत्व प्राप्त करने की कथा।

पृथ्वी में सीता का प्रवेश— नैमिष वन में अवश्मेघ के अवसर पर कुश-लव का सभा के सामने रामायण गान करना, कुश लव को सीता पुत्र जानकर राम का वाल्मीकि के पास सन्देश भेजना और सभा के सम्मुख अपनी शुद्धि का साक्ष्य देने के लिये सीता से अनुरोध करना, सीता की शपथ, पृथ्वी का सीता को अपने साथ ले जाना, राम द्वारा सीता को लौटा देने का व्यर्थ अनुरोध, कुश-लव द्वारा उत्तर काण्ड का गान, सभा विसर्जन माताओं की मृत्यु।

विजय यात्राऐं— भरत के पुत्रों (तक्ष, पुष्कल) का तक्षशिला तथा पुष्कलवती में राज्य स्थापन लक्ष्मण के पुत्रों (अंगद, चन्द्रकेतु) का अंगदीप और चन्द्रकान्त में राज्य स्थापन।

लक्ष्मण मृत्यु— काल का राम को अपना विष्णु रूप प्राप्त करने का स्मरण दिलाना। दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम काल के पास जाना और इसके कारण लक्ष्मण का सरयू प्रवेश।

वर्ग–गमन– राम का कुश को कुशावती में और लव को श्रावस्ती में राज्य देना। अपने त्रों को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आना, सुग्रीव और वानरों का आना, विभीषण और नुमान को अमरत्व का वरदान, राम का अपने भाइयों के साथ विष्णु रूप में तथा वानरों का अंशानुसार देवताओं में प्रवेश, नागरिकों की स्वर्गप्राप्ति।

जानकी जीवनम् की कथावस्तु

प्रथम सर्ग– विदेह जनपद में वर्षा न होना, प्रजा में अतिशय दुःख व्याप्त होना, राजा जनक का अपने पूर्व जन्म में किये गये पाप के बारे में चिन्ता करना। राजा जनक का अपने गुरू गौतम नन्दन शतानन्द के तपोवन में प्रवेश, तपोवन की सुन्दरता एवं पवित्रता का वर्णन, गुरू शतानन्द द्वारा राजा जनक को हल चलाने का निर्देश देना, राजा द्वारा सुवर्ण निर्मित हल से खेत जोतना, प्रजा द्वारा राजा जनक को सर्वश्रेष्ठ राजा घोषित करना, हलकर्षण से कन्या का जन्म, आकाशवाणी द्वारा राजा जनक को कन्या के पालन–पोषण का आदेश, विदेह में तेज वर्षा होना एवं प्रजा का आह्लादपूर्ण होना।

द्वितीय सर्ग– प्रजा में सर्वत्र हर्ष का व्याप्त होना, प्रजा द्वारा कमनीय महोत्सव आरम्भ करना, चरणों तथा शुकों द्वारा राजा जनक का यशोगान, प्रत्येक घर में महोत्सव का द्रुतगति से चलते रहना एवं इसके साथ ही सीता का चन्द्रकला के समान क्रमशः वयक्रम को पार करना, सीता द्वारा बाल सुलभ क्रीड़ाओं से माता-पिता एवं सखियों को आह्लादित करना, वर सम्बन्धी चर्चाओं को सुनने के फलस्वरूप सीता के मन में दूल्हे की प्रभामयी प्रतिभा का उत्पन्न होना। प्रातः नित्य कृत्यों को कर भगवान शंकर के पिनाक धनुष को सीता द्वारा प्रच्छालित करना, इस प्रकार असंख्य शिशुजनोचित खेल–खिलवाड़ों से कुटुम्बियों, पुरवासियों, बतोहियों तथा दर्शकों की मण्डली को प्रसन्न करते हुए सीता ने बचपन को विकसित यौवन के समीप पहुँचा दिया।

तृतीय सर्ग– सीता का कामव्यापार से परिचय होना, सीता का यौवनागम एवं उन्मुक्त सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन, सखियों से कामविषयक चर्चाओं को सुनकर सीता का काम देवता की शरण में जाना।

चतुर्थ सर्ग– आयोध्या में राम का जन्म, अपनी बाल क्रीड़ाओं से माता–पिता–भाईयों एवं नगरवासियों को आह्लादित करना विश्वामित्र को कोशल जनपद में आगमन, राजा दशरथ

द्वारा तीनों रानियों सहित विश्वामित्र का अभिनन्दन करना। विश्वामित्र द्वारा यज्ञ की राक्षसों से रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाने का अनुरोध। राजा दशरथ का राम के अभाव में जीने की कल्पना से व्यथित होना। वशिष्ठ द्वारा राजा दशरथ को समझाना। राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ प्रस्थान। राम-लक्ष्मण का गुरू विश्वामित्र से दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करना एवं राक्षसों का वध करना। सम्पूर्ण शास्त्रों में पारंगत होना। विश्वामित्र के पास सीता स्वयंवर का सन्देश आना। विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण को विदेह नगर प्रस्थान करने का आदेश देना।

पंचम सर्ग– विश्वामित्र सहित राम-लक्ष्मण का विदेह नगर को प्रस्थान। लक्ष्मण सहित राम को देखकर बटोहियों एवं जनपदवासियों का आह्लादित होना। मिथिला में प्रवेश। नगर की रमणीयता का प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए दोनों कुमारों का गुरू विश्वामित्र के साथ महाराज जनक के राज प्रसाद के द्वार तक पहुँचना। राजा जनक द्वारा उनका अभिनन्दन। राजा जनक को दोनों कुमारों का परिचय देना। राजा द्वारा राम में सीतोचित वर की समता का अनुमान करना ऋषि विश्वामित्र द्वारा दोनों कुमारों को फूल लाने का आदेश देना। दोनों का विलासवन में प्रवेश। विलासवन की रमणीयता का विस्तृत वर्णन, विलासवन में ध्वनि का सुनाई पड़ना। श्रीराम का काम सन्तप्त होना श्रीराम की आज्ञा द्वारा लक्ष्मण का ध्वनि दिशा की ओर बढ़ना। श्रीराम द्वारा गुरू विश्वामित्र से ज्ञात स्मृत रूपशोभा वाली जनक दुलारी को हृदय में धारण करना।

षष्ट सर्ग– लक्ष्मण का विलासवन में युवतियों के समूह मण्डल को देखना, लक्ष्मण द्वारा राम को यह ज्ञात होना कि सीता विलास वन में है। राम-सीता का परस्पर दर्शन, राम द्वारा सीता की प्रशंसा करना, सखि द्वारा सीता को राम द्वारा सीता की प्रशंसा करना, सखि द्वारा सीता को राम का परिचय प्राप्त होना एवं दोनों का वार्तालाप, राम एवं लक्ष्मण का वन से गमन।

सप्तम् सर्ग– श्रीराम द्वारा विलास वन में घटित घटना का स्मरण करना। गुरू की आज्ञा से लक्ष्मण सहित श्रीराम का नगर भ्रमण, नगर महिलाओं द्वारा राम की सीता के योग्य वर मानना। राम एवं लक्ष्मण का निवास स्थान में आना। विश्वामित्र द्वारा विवाह का समाचार एवं रात्रि में राम का कामविघ्वल होना, विश्वामित्र द्वारा राम के पराक्रम की प्रशंसा, विवाह महोत्सव में विश्वामित्र सहित राम एवं लक्ष्मण का उपस्थित होना। राजा द्वारा

आवभगत करना, राजा जनक द्वारा स्वयंवर के शर्त की घोषणा करना, राजाओं द्वारा असफलता, राम द्वारा धनुर्भंग, राजा दारथ का बुलावा एवं उनका मिथिला आगमन।

अष्टम् सर्ग— दशरथ का विदेह आगमन जनक द्वारा दशरथ का स्वागत सत्कार, चारों भाइयों का विवाह, सीता की विदाई।

नवम् सर्ग— बारातियों का अयोध्या पहुँचना, नगरवासियों द्वारा नगर को सजाना एवं हर्षोल्लास व्यक्त करना। तीनों रानियों द्वारा बहुओं को राजमहल में प्रविष्ट कराना। सीता द्वारा सास, ससुर एवं पति की सेवा का वर्णन। वारह वर्ष तक सीता का अयोध्या मं सुखपूर्वक निवास।

दशम् सर्ग— दशरथ को अपने वृद्धावस्था का आभास होना। राम के राज्याभिषेक के बारे में चिन्तन करना। भरत एवं शत्रुघ्न का अयोध्या में न होना। मुनि वशिष्ठ द्वारा निश्चित नक्षत्र राशि में राम के राज्याभिषेक की तैयारी करना। नगर वासियों में हर्ष व्याप्त होना। सम्पूर्ण पृथ्वी में राक्षसों का राज, रावण से लोकत्रय में आतंक। भगवती शारदा द्वारा मंथरा के विचारों में प्रवेश, मंथरा द्वारा कैकेयी को राज्याभिषेक की जानकारी देना। कैकेयी का कोपभवन में जाना। महाराज दशरथ द्वारा कैकेयी को समझाना। दशरथ द्वारा दो वरों की स्वीकृति। दशरथ की मूर्च्छा। लक्ष्मण एवं सीता सहित राम का वनगमन।

एकादश सर्ग— तमसा के पास रात्रि निवास। श्रृंगवेरपुर में गंगा को पार करना। गंगा-यमुना के संगम पर भरद्वाज आश्रम में जाना। चित्रकूट पहुँचना। कामदगिरि शिखर पर पर्णकुटीर बनाकर निवास। कोल-किरातों एवं वनेचरियों द्वारा सत्कृत। सीता का प्रतिदिन पयस्विनी नदी की ओर स्नानार्थ जाना। सीता द्वारा प्रणय व्यवहारों से राम को अनुकूल बनाना। राम के दर्शनार्थ प्रतिदिन ऋषि मुनियों का आगमन। सीता द्वारा मुनियों का सत्कार। सीता-अनुसूया संवाद। स्फटिक शिला तल पर राम द्वारा सीता को आभूपण पहनाना। सीता द्वारा राम के चौदह वर्षों के वनवास की कठोर प्रतिज्ञा (ब्रह्मचर्य-निर्वाह) का स्मरण कर दुःखी होना। सीता का सौन्दर्य वर्णन। वनवासिनी महिलाओं द्वारा विधाता एवं कैकेयी को धिक्कारना। वन वासियों का सीता से आगाध स्नेह। वनवासियों महिलाओं एवं सीता का संवाद। भरत का चित्रकूट आगमन। भरत द्वारा दशरथ मृत्यु का समाचार देना एवं राम से राज्यग्रहण का अनुरोध करना। राम का विलाप। लक्ष्मण सहित राम का पिता की जलक्रिया करना। अनुज भरत को समझाना चरण पादुकाओं को सौंपना। भरत को अयोध्या विदा करना। राम का

चित्रकूट से दक्षिण की ओर प्रस्थान। दण्डकारण्य में प्रवेश। लंकापति रावण के सेवकभूत खर-दूषण, शूर्पणखा एवं त्रिशिरा का दण्डक वन में शासन और आतंक राम द्वारा दण्डकारण्य के उद्धार का संकल्प। गोदावरी नदी के तट पर लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी का निर्माण। शूर्पणखा का विरुपी करण। राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर झपटना। लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटना। तीनों भाइयों सहित चौदह हजार सैनिकों का राम द्वारा वध। शूर्पणखा का रावण के पास जाना। रावण-शूर्पणखा संवाद। रावण का मारीच के सम्मुख सीता हरण व प्रस्ताव रखना, मारीच का समझाना एवं अपने वध को दुर्निवार समझकर मारीच का स्वीकार करना मारीच के कनक मृग रूप को देखकर सीता का उसके लिए राम से प्रार्थना करना। राम का मृग के पीछे जाना। राम का मारीच को मारना, मरते समय उसका लक्ष्मण, सीता एवं अन्त में राम शब्द कहना सीता की लांछ्ना से लक्ष्मण का प्रस्थान। रावण का महर्षि वेश में आगमन, सीता के शील, गुण, रूप, शील की प्रशंसा एवं भिक्षा-याचना। सीता का जीवन वृतान्त सुनाना, रावण द्वारा अपना परिचय देना। रावण का सीता को बलपूर्वक अपने रथ पर ले जाना। जटायु का रावण से युद्ध एवं मृत्यु। बन्दरों की ओर सीता का आभूषण एवं वस्त्रों को फेंकना।

द्वादश सर्ग– लंका में राक्षसियों के नियन्त्रण में सीता का अशोक वन में रहना। सीता को समझाने के लिये रावण द्वारा राक्षसियों की नियुक्ति। सीता का विलाप। त्रिजटा द्वारा सीता को सांत्वना। कामातुर राचण का सीता से अनुरोध, सीता द्वारा रावण की भर्त्सना। सीता का विलाप और त्रिजटा से चिता तैयार करने का अनुरोध।

त्रयोदश सर्ग– हनुमान का अशोक वन में रामकथा वर्णन, सीता का सन्देह, हनुमान का प्रकट होना एवं हनुमान द्वारा राम की व्यथा का वर्णन। सीता का विश्वास करना। हनुमान का राममुद्रिका देना एवं शीघ्र मुक्ति का आश्वासन देना। सीता का चूणामणि देना। हनुमान द्वारा अशोक वन का विध्वंस। रावण कुमार अक्ष का वध। इन्द्रजित द्वारा बन्धन। रामदूत के रूप में हनुमान का रावण से सीता मुक्ति का आग्रह। दण्ड रूप में हनुमान की पूँछ जलाने की रावण द्वारा आज्ञा। हनुमान द्वारा लंका दहन एवं हनुमान की प्रत्यागमन। लंकापुरी में राक्षसों का भयभीत होना।

चतुर्दश सर्ग– हनुमान का आकाश मार्ग से अपने साथियों के पास प्रत्यागमन और

अपनी सफलता का वर्णन। हनुमान द्वारा सम्पूर्ण समाचार का अद्यान्त वर्णन और सीता का चूड़ामणि देना, राम का मिलाप। सीता संवाद का उल्लेख करना। राम का सेना सहित समुद्र तट में आगमन। रावण द्वारा अपमानिमत होकर विभीषण का राम की शरण में आगमन। हनुमान के आग्रह के कारण विभीषण का राज्याभिषेक। नल, नील द्वारा सेतु का निर्माण। रावण को राम के लंकापुरी आगमन की सूचना मिलना। शत्रुबल की परीक्षा लेने शुक एवं सारण को भेजना विभीषण द्वारा पहचाने जाना, राम द्वारा मुक्ति। शुक-सारण द्वारा सीता को लौटाने का आग्रह, रावण की माता केकसी द्वारा आग्रह तथा नाना नयज्ञ माल्यवान द्वारा रावण को समझाना, रावण द्वारा अस्वीकृति। विद्युज्जिह्व द्वारा निर्मित राम के मायावी शीर्ष को सीता को दिखाना। सीता का विलाप, सरमा द्वारा रहस्योद्घाटन। वानर सैनिकों सहित राम का लंका को घेरता। दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध। प्रमुख राक्षस सेनापतियों का वध। अदृश्य मेघनाद द्वारा राम-लक्ष्मण को नागपाश में बांधना। रावण द्वारा सीता को पुष्पक से ले जाकर आहत राम-लक्ष्मण को दिखलाना, सीता-विलाप, त्रिजटा द्वारा सांत्वना, गरुड़ द्वारा राम-लक्ष्मण का स्वस्थ्य होना। हनुमान द्वारा अकम्पन एवं धूम्राक्ष का वध। अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र का वध। नील द्वारा प्रहस्त का वध। राम द्वारा कुम्भकर्ण का वध। अंगद द्वारा नरान्तक, नील द्वारा महोदर, हनुमान द्वारा त्रिशरा, वृषभ द्वारा मन्त, लक्ष्मण द्वारा अतिकाय, सुग्रीव द्वारा कुम्भकर्ण पुत्र कुम्भ का वध। रावण का अयोध्या नरेश अनारण्य एवं वेदवती के शाप का स्मरण करना। रावण द्वारा विलाप। इन्द्रजित का युद्धारम्भ एवं मायामयी सीता को रथ में बैठाकर वानर के सम्मुख वध। राम का विलाप विभीषण द्वारा मायामयी सीता का रहस्योद्घाटन तथा निकुम्भिला में ध्वंस का परामर्श। सेना सहित लक्ष्मण का यज्ञध्वंस तथा इन्द्रजित वध करना। रावण का युद्ध भूमि में आगमन, राम-रावण संवाद, राम रावण का युद्ध प्रारम्भ। मातालि द्वारा स्मरण कराये जाने पर ब्रह्मास्त्र से रावण का वध।

<u>पंचदश सर्ग</u>– राम द्वारा सीता को बुला भेजना। हनुमान का अशोक वन में प्रवेश। सीता को रावण वध की सूचना देना। सीता का आगमन। राम का सीता को अस्वीकार करना। राम-सीता संवाद लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता में सीता का प्रवेश, प्रवेश, सम्पूर्ण प्रजा का विलाप। इन्द्रादि देवताओं का आकाश मण्डल में उतरना, ब्रह्मा द्वारा राम की प्रशंसा। अग्नि द्वारा राम को सीता का रामषर्ण, राम द्वारा स्वीकार करना।

षोडश सर्ग– विभीषण को अयोध्या लौटने का प्रवन्ध करने की आज्ञा देना। कपियों द्वारा विलाप। सीता द्वारा कपि योद्धाओं को ले जाने का आग्रह, पुष्पक विमान द्वारा सभी का प्रस्थान। आकाश मार्ग से राम का विभिन्न स्थानों का वर्णन करना। किष्किन्धा में सुग्रीव की पटरानियों को साथ लेना। भरद्वाज से भेंट। हनुमान का भरत को राम का समाचार देना। अयोध्यावासियों सहित भरत एवं शत्रुघ्न का राम से मिलना। राम द्वारा कपियोद्धाओं का परिचय देना एवं वीरता की प्रशंसा करना। राम का सीता सहित राज्य में प्रवेश राम का राज्याभिषेक। प्रजा में हर्ष।

सप्तदश सर्ग– रामराज्य का वर्णन। सीता का गर्भधारण। दुर्मुख द्वारा प्रजा का सन्देश देवी सीता के चरित्र पर आरोप। राम की व्यथा का वर्णन। लक्ष्मण का गुरू वशिष्ठ से सम्पूर्ण कथा कहना, वशिष्ठ द्वारा सान्त्वना लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का संवाद।

अष्टादश सर्ग– वशिष्ठ द्वारा धोबी को बुलावा एवं समस्त प्रजा का राज्य सभा में आगमन। वशिष्ट द्वारा रघुकुल का विस्तृत वर्णन और राम का विष्णु अवतार रूप बताना, उनकी वीरता की प्रशंसा, सीता की पवित्रता का प्रमाण देना। धोवी द्वारा ग्लानि और क्षमायाचना राम द्वारा क्षमा।

एकोनविंश सर्ग– जुडवा पुत्रों का जन्म। अयोध्या में महोत्सव वर्णन। माताओं का हर्ष, वैदेही एवं श्रीराम के उत्साह का वर्णन। लव–कुश की बाल क्रीड़ा से कुटुम्बियाँ को आह्लाद। वाल्मीकि का आयोध्यागमन। श्रीराम सहित सपरिवार वाल्मीकि का सत्कार। वाल्मीकि द्वारा पुत्रों का नामकरण संस्कार। वाल्मीकि का लव–कुश को गुरूकुल ले जाने का आग्रह। सीता का तपोवन जाने का आग्रह। सीता का लव–कुश सहित तपोवन प्रस्थान। कौशल्यादि माताओं की व्यथा वर्णन। श्री राम का वियोग वर्णन।

विंश सर्ग– अयोध्या नगरी में रामराज्य का वर्णन। प्रजा का धन–धान्य से पूर्ण होना। श्रीराम द्वारा भरत को अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी की आज्ञा देना। विभिन्न ऋषियों का यज्ञ में आगमन। विभीषण सहित कपिपति सुग्रीव का आगमन। सीता सहित श्री राम का यज्ञ में दीक्षा लेना। ब्राह्मण मण्डली को दान देना। अश्वमेघ यज्ञ का विस्तृत वर्णन। महर्षि वशिष्ठ द्वारा वाल्मीकि के कवित्व का परिचय देना। व्रह्मा द्वारा वाल्मीकि से राम चरित्र से सम्बन्धित काव्य की रचना करने की आज्ञा देना। वाल्मीकि द्वारा छः काण्डों से युक्त रामकथा

की रचना एवं लव-कुश को उसके गायन में नियुक्त करना।

एकविंश-सर्ग- वाल्मीकि के आदेश से लव-कुश का महासभा में रामकथा का गायन।

आधिकारिक एवं प्रासांगिक कथाएँ

इतिवृत्त प्रधान काव्यों में कथावस्तु को अनिवार्य तत्व माना गया है। कथावस्तु ऐसा मेरूदण्ड है जिससे विशाल काव्य रूपी शरीर सुदृढ़ रहता है। घटनाएँ, उनका संयोजन, संक्षेपण एवं विस्तार कथा शैली के महत्वपूर्ण कारक तत्व हैं। भारतीय काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने नाटकीय तत्वों के परिप्रेक्ष्य में उत्पाद्य, तथा मिश्र[1] एवं आधिकारिक प्रासंगिक[2], पताका, प्रकरी[3] और इनके सफल सुप्रयोग हेतु अवस्थाएँ, अर्थ प्रकृतियाँ, सन्धियों आदि का विस्तृत विवरण वहाँ उपलब्ध होता है।

आधिकारिक कथा का निर्णय फलागमन की दृष्टि से किया जाता है। यहाँ हम पहले वाल्मीकि रामायण की आधिकारिक कथा का निर्णय कर प्रासंगिक कथाओं से उनका सम्बन्ध निरूपित करेंगे।

वाल्मीकि की आधिकारिक कथा

बहुश्रुत यह है कि वाल्मीकि रामायण का पूर्वनाम "पौलत्स्य वध" था इस दृष्टि से प्रथम दृष्ट्या यह कथा रावण से सम्वन्धित आधिकारिक कथा थी, किन्तु बाद में चारित्रयेण चकोः युक्तः के उत्तर में रामोधर्मोविग्रहवान के रूप में रामकथा का विन्यासकर वाल्मीकि ने आधिकारिक कथा के रूप में महत् चरित्र की भव्य एवं उदात्त झाँकी अंकित की है। अतएव दशरथ परिवार, राम जन्म, विवाह, वनवास प्रकरण, सीता हरण, रावण वध और प्रक्षिप्त ही सही सीता निर्वासन, रामका स्वर्गारोहण इत्यादि घटनाऐं आधिकारिक कथा है।

जानकी जीवनम् की आधिकारिक कथा

राजेन्द्र मिश्र ने अपने काव्य का नाम जानकी जीवनम् रखा है जिसका द्रष्ट्या सीता की कथा है किन्तु प्रतीयमान अर्थ के कारण रामकथा गायन ही कवि का मूल मंतव्य है। इस प्रकार वाल्मीकि और जानकी जीवनम् की आधिकारिक कथा में समानता को देखकर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग तक राम कथा की आधिकारिक कथा घटना विन्यास,

(1) धनंजय दशरूपक 1/15 (2) वही 1/11 (3) वही 1/13

कथानक रूढ़ियों में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है। यह अवश्य है कि आलोच्य दोनों काव्यों का उद्देश्य कथागायन शैली में पर्याप्त भिन्नता है।

वाल्मीकि रामायण में प्रासांगिक घटनाएँ

जो घटनाएँ मूल आधिकारिक कथा में नाट्कीयता, आकस्मिकता, तनाव और मोड़ के कारक होते हैं उन्हें प्रासांगिक घटनाऐं कहा जाता है।

वाल्मीकि रामायण में लगभग छः सौ पैंतालीस सर्गों में एक सौ सात सर्ग प्रासांगिक या पताका अथवा अवान्तर घटनाओं का हेतु कथाओं के रूप में युक्त है। प्रासांगिक एवं अवान्तर कथाओं का अन्तर निरूपित करते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रासांगिक घटनाएँ कथा प्रवाह में विस्तार लाती हैं। जबकि अवान्तर या हेतु कथाऐं आधिकारिक कथा प्रवाह को अवरुद्ध कर लेती हैं, इस कारण कथा रस में व्याघात या अवरोध उत्पन्न हो जाता है। डा० जगदीश शर्मा ने वाल्मीकि रामायण की अवान्तर कथाओं के सन्दर्भ में लिखा है-[1]

"यह अवान्तर कथाऐं आधिकारिक कथा के बीच-बीच में आकर दीवार की तरह अड़ गयी है जिसमें आधिकारिक कथा की गति कुंठित हुई है। आधिकारिक कथा थोड़ी दूर चलती है कि कोई पात्र अवान्तर कथा सुनाने लगता है और पूरे विस्तार में जाकर तब तक कई सर्गों में कथा ठहरी रहती है।"

वाल्मीकि रामायण के वालकाण्ड के लगभग सैंतीस सर्ग अवान्तर कथाओं के दिए गये हैं, इनमें ऋष्यशृंग, ताटका, सिद्धाश्रम, विश्वामित्र, अहिल्योद्वार, विश्वामित्र की कथाऐं हेतु कथाऐं कही जा सकती हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध मुख्य कथा से है।

अयोध्या काण्ड में श्रवण कुमार, कामधेनु-जाबालि, वृतान्त। अरण्य काण्ड में तुम्बल, माण्डकर्णि, अगस्त्य, जटायु एवं कबन्ध की कथा।

किष्किंधा काण्ड में सुग्रीव की व्यथा कथा पताका या प्रकरी कथा कहला सकती है, क्योंकि हनुमान, सुग्रीव, बालि, तीनों रामकथा के प्रासांगिक पात्र हैं। सुन्दर काण्ड में काक वृतान्त। युद्ध काण्ड में रावण की हेतु कथा का वर्णन है। उत्तरकाण्ड तो अवान्तर घटनाओं का अपार भंडार है जिसमें रावण की कथा हेतु कथा एवं प्रासांगिक घटना के रूप नें स्वीकृत होसकती है किन्तु नृग, निमि, ययाति, इन्द्र की ब्रह्महत्या से मुक्ति तथा अन्याान्य कथाऐं नितान्त

(1) वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस सौन्दर्य विधान का तुलनात्मक अध्ययन/पृ0-120

अप्रासांगिक और अनावश्यक हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने प्रासांगिक, अवान्तर, हेतु इत्यादि कथाओं का संयोजन ठीक से नहीं कर पाये सम्भवतः इसे पुराण जैसी मान्यता देना चाहते थे। अतः राजवंशों, सृष्टि विस्तार का वर्णन उन्हें अपेक्षित रहा होगा, अच्छा अपेक्षित यह होता कि प्रासांगिक और हेतु कथाओं को प्रारम्भ में और अन्य कथाऐं संक्षिप्त रूप में यथावसर प्रयुक्त की जाती तो कथा सौन्दर्य और आकषर्क बन पड़ता।

जानकी जीवनम् की प्रासांगिक घटनाएँ

जानकी जीवनम् का प्रारम्भ भूमिजा सीता के जन्म, शिशु केलि, स्मरांकुर, पुष्प वाटिका में रामानुराग से किया है। ऐसा लगता है कि कवि सीता को केन्द्र बिन्दु वनाकर इस महाकाव्य का प्रणयन करना चाहता था किन्तु भाव प्रवाह में सीता की कथा राम कथा में रूपान्तरित हो गयी अतः सीता कथा मुख्य प्रासांगिक कथा है अन्य प्रासांगिक घटनाओं में कैकेयी के वरदान, वेदवती द्वारा रावण के शाप की कथा का वर्णन है। पात्रों से सम्बन्धित प्रासांगिक पताका, या प्रकरी या हेतु कथाऐं जानकी जीवनम् समुद्र में तिरोहित सी हो गयी हैं। इसमें आधिकारिक कथा का विन्यास, उसकी प्रवाहमयता अद्यान्त एक सी मिलती है।

काव्य का प्रारम्भ

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्स के प्रारम्भ में मंगलाचरण का निर्देश किया है। इस दृष्टि से आलोच्य काव्यों की समीक्षा करें तो यह सहज ही निष्कर्प उपलब्ध होता है कि वाल्मीकि रामायण के समय तक मंगलाचरण की कोई प्रथा नहीं थी। वाल्मीकि ने अपनी रामायण का प्रारम्भ इस प्रकार किया है-

प्रथम चार सर्ग कथा की पूर्व पीठिका से सम्बन्धित है। मूल कथा पंचम अध्याय से प्रारम्भ होती है। बात यह है कि वैदिक अध्याय में स्वस्तेयन या शान्ति पाठ से किसी भी रचना का प्रारम्भ होता था। वाल्मीकि रामायण प्रथम मानसी काव्य है अतः इसका प्रारम्भ मंगलाचरण से न होकर अद्‌भुत शोक, करूण, वीर और शान्त रस से प्रारम्भ किया है, क्योंकि रामायण का व्युत्पत्ति परक अर्थ ''राम का घर'' या ''राम की कथा'' से है। कवि ने दशरथ

द्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरी के वर्णन से किया है–

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा।[1]
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्।।
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः।
षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्।।

जानकी जीवनम् में काव्य का प्रारम्भ सीता जन्म से किया गया है। अभिधेयार्थ सीता का जीवन चरित्र या लक्ष्यार्थ में सीता के प्राणस्वरूप राम की कथा ऐसा अर्थ करने पर ही फलागम के रूप में रामकथा की सार्थकता सिद्ध होती है। कवि ने काव्य शास्त्रीय मान्यताओं के विरुद्ध आशीर्वाद या नमस्क्रिया से काव्य का प्रारम्भ न कर वस्तुनिर्देश के रूप में जनकपुरी में अकाल का वर्णन किया है। यद्यपि संस्कृत के श्रेष्य साहित्य में मंगलाचरण निश्चित रूप से होता था जिसका परिपालन प्रस्तुत काव्य में नहीं हुआ है।

काव्य का समापन

दोनों आलोच्य काव्य नगरों के वर्णन से प्रारम्भ हुआ है। वाल्मीकि रामायण की मूल कथा लंका काण्ड में ही समाप्त हो जाती है। प्रायः रामकथा के समस्त विद्वानों ने उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त माना है क्योंकि पात्रगत जीवन चरित्र और सीता निर्वासन सम्वनी घटनाऐं मूल कथा से तालमेल नहीं रखती। राजेन्द्र मिश्र ने प्रत्येक अध्याय में अपने काव्य की फलश्रुति लिखी है। जिसमें कवि ने राम काव्य की महत्ता कालिदास, श्री हर्ष, जयदेव, विल्हण और पं0 राज जगन्नाथ का स्मरण कर अपने काव्य द्रुम को स्थायी बनाने की अभिलाषा व्यक्त की है–

यत्काव्यं मधुवर्षि नव्यघटनं प्रस्थानभूतं नवं,
सान्द्रानन्दमरन्दविन्दुरुचिरं सीता प्रमाणैः कृतम्।[2]
सर्गः पूर्तिमादायं तु चरमस्तत्रेकविशोऽधुना,
वैदेहीमनुकीर्तयन्नधुपतिं श्री जानकी जीवने।।
मूलं श्री कवि कालिदास कविता श्री हर्ष वाणी तनुः,
पत्रं श्री जयदेव देव वचनं श्री विल्हणोक्तं सुभम्।

(1) वा.रा. 1.5.1,2

श्रीमत्पण्डित राज काव्य गारिमा यस्य प्रपूतं फलं,

जीव्याद्धुन्त! निसर्गजोऽयमभिराऽराजेन्द्र काव्यद्रुमः ।।

काव्य में सूक्ष्म एवं विस्तार की अन्विति

पहले कहा जा चुका है कि वाल्मीकि रामायण कथा का ऐसा कोप है जिससे घटनाएँ, कथाक्रम लेकर कवियों ने युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप काव्य का प्रणयन किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ कवियों ने वाल्मीकि के कुछ अंशों का विस्तार किया है। नयी कल्पनाओं के संयोजन से काव्य की पूर्वपीठिका तैयार की है तथा कुछ ऐसे भी कवि हैं जिन्होंने वाल्मीकि की संक्षिप्त घटना को विस्तार दिया है इसे ही सूक्ष्म विस्तार संयोजन कला कहा जाता है। जानकी जीवनम् में सीता जन्म[1], बाल लीला[2], कौमार्य पौगण्ड[3], वय सन्धि[4], के कायिक और मानसिक विच्छिप्ति का ऐसा हृदयावर्जक वर्णन किया है जिसका प्रभाव संस्कृत नाटकों और अलंकृत काव्यों (श्रेण्य साहित्य) से ग्रहण किया है। धनुर्भंग के पूर्व सीता-राम का मिलन राम की प्रथम प्रणयानुभूति, सीता का वाचिक अनुभाव सचमुच ही ऐसा मार्मिक प्रसंग है जिसका वाल्मीकि रामायण में उल्लेख नहीं है।

प्रासांगिक एवं आधिकारिक कथाओं का विश्लेषण करते समय यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि पात्रों की कथा वताने के लिये आधिकारिक कथा रोककर प्रासांगिक घटनाओं को विस्तार दिया है जवकि जानकी जीवनम् में प्रासांगिक घटनाऐं अत्यन्त सूक्ष्म रूप से या समानुपातिक ढंग से वर्णित हुयी हैं। राजेन्द्र मिश्र ने रामकथा के विस्तृत अंशों का संक्षेप या सूचनामात्र रूप में दी है विस्तृत अंशों का संक्षेप या सूचना मात्र के रूप में दी है जहाँ प्रत्यक्ष सीता घटना के केन्द्र में आयी है उन स्थलों की कवि ने अच्छी व्याख्या की है। शेष

---

(1) जा.जी. प्रथम सर्ग (2) वही, द्वितीय सर्ग (3) वही, तृतीय सर्ग (4) वही, चतुर्थ सर्ग

घटनाओं को चलता सा कर दिया है। ऐसी घटनाओं में राम का वनगमन, निषाद भेंट, चित्रकूट प्रसंग, खर-दूषण वध, सीता शोध और विभिन्न राक्षसों के युद्धों के अवसर हैं जिनमें शृंगार, वीर, रौद्र रस की अच्छी व्यंजना हो सकती थी।

घटना प्रवाह

वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् की रचना दृष्टि में अन्तर है अतः कथा साम्य होते हुए भी सृष्टि में पर्याप्त वैषम्य है। वाल्मीकि रामायण की कथा का प्रारम्भ एक प्रकार से अयोध्या से होता है जिसका विकास चित्रकूट प्रसंग में हुआ है। सीता-हरण, सीता-शोध, सुग्रीव मैत्री इस कथा प्रवाह की चरम सीमा या आरोह माना जा सकता है। सेतुबन्धन के पश्चात् कथा की ओर प्रवाहित होने लगती है जो रावण वध और राज्याभिषेक पर समाप्त हो जाती है।

यहाँ यह कह देना अप्रासांगिक नही होगा कि उत्तरकाण्ड की समस्त कथाएँ प्रक्षिप्त हैं जिनका विस्तृत विश्लेषण किया जा चुका है। जानकी जीवनम् का आरोह, अवरोह इससे भिन्न है यहाँ कथा का लक्ष्य सुखान्त रूप देना है उसकी नायिका सीता है अतः काव्य का प्रारम्भ नायिका के जीवन चरित्र से किया गया है। यद्यपि भारतीय एवं पाश्चात्य कथा संविधान के तत्वों के अनुसार राजेन्द्र मिश्र ने रामकथा के मार्मिक एवं भावुक स्थलों की न तो पहचान कर सकते हैं न ही उनका रसपेशल वर्णन ही कर पायें क्योंकि राम का धनुर्भंग, वनगमन, सम्बन्धी प्रतिक्रियाऐं, भरत की भ्रातृ भक्ति, शूर्पणखा प्रसंग, राम का विरह और युद्ध इस कथा के मार्मिक प्रसंग हैं। राजेन्द्र मिश्र ने अपनी भूमिका में पुटपाक प्रतीकाश मध्य कथा को ही केन्द्र में रखा है। कवि का वैयक्तिक जीवन भी कुछ कलंक से युक्त होकर निर्वासित रूप में रहा है इसलिये इस कथा को कवि ने अपने भिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत

किया है। कथा का विकास सीता-हरण पर जाकर समाप्त होता है और सीता पर लगे मिथ्या अपवाद तथा कुलगुरू ब्रह्मर्षि, नीति नियामक वशिष्ठ के उपदेश से समापन की ओर चली है और उसका अन्त कुशीलवों द्वारा रामायण के गायन से समापन हुआ है।

इस प्रकार शोधकर्त्री ने कथा की भिन्नता की दृष्टि के कारण उसके आरोह, अवरोह, में भाये वैषम्य को प्रस्तुत किया है। इस आरोह की एक विशिष्टता यह भी है कि अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने कथा में एकतानता, अन्विति आरोह-अवरोह का ध्यान वड़ी सूक्ष्मता से रखा है जबकि वाल्मीकि रामायण में प्रासांगिक घटनाओं के बाहुल्य के कारण आरोह-अवरोह में शिथिलता, अन्विति भग्नता का ध्यान नहीं रखा गया है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य द्वय काव्यों में कथा प्रवाह में विकास, संशोधन या परिवर्धन में युगीन देश काल, परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है। वाल्मीकि ने घटनाओं के वर्णन उसकी पृष्ठभूमि में कारणों का निर्देश, रामचरित्र की व्याख्या, उनके चरित्र के प्रति उत्सुकता और समाधान, नायकेतर जीवन चरित का विस्तार, चमत्कार एवं आलौकिकता, नीति, धर्म, संस्कृति, सामाजिक रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास, आर्थिक दशाएँ, प्रकृति का विशाल व्यापक फलक प्रस्तुत कर आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप दिया है। जबकि जानकी जीवनम् में प्रकृति के साथ नायक-नायिका के मनोभावों पर केन्द्रित होकर लौकिक आचार, काव्यात्मक एवं अलंकार पूर्ण वर्णनों का संयोग लोकमत के आग्रह की विशेषताऐं दिखाई पड़ती हैं।

वाल्मीकि की कथा-रामचरित्र की धर्मानुसार व्याख्या है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने घटनाओं को बड़े विस्तृत रूप में लिखा है जिनसे कथा में नाट्कीयता और भव्याता का संयोजन हुआ है जबकि राजेन्द्र मिश्र के जानकी जीवनम् में सीता पर लगे लांछन का परिष्कार करना है अतः कवि ने राम सम्बन्धी घटनाओं के प्रयोग में अप्रत्यक्ष कथन का सहारा

लिया है।

वाल्मीकि रामायण में कथा वर्णन, वक्ता, श्रोता शैली में हुआ है विशेष रूप से अवान्तर कथाओं में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है जबकि जानकी जीवनम् की कथा शैली प्रत्यक्ष कथन में है, नाटकीयता वशिष्ट के उपदेश में ही प्राप्त होती है।

अध्याय–3

आलोच्य काव्यों में पात्रों का चरित्र–चित्रण

(क) पात्रावधारणा, स्वरूप एवं विकास–

1. पात्र व्युत्पत्ति एवं तात्पर्य–पात्र शब्द पा धातु के साथ प्टन् प्रत्यक्ष से युक्त करने पर निष्पन्न होता है, जिसका नपुसकलिंग में अर्थ बर्तन, भाजन, यज्ञोपकरण। पुलिंग रूप में वह व्यक्ति जो सर्वथा सब प्रकार से उपयुक्त हो अधिकारी हो। एवं विशेषण रूप में पात्र उसे कहा जा सकता है जो किसी कार्य या पद के लिये चयनित या नियुक्त किया जाता है।[1]

हमारे लिये पात्र का तात्पर्य यह है कि साहित्य विधाओं में कथानक जिसका परिपाक होता है पात्र कहलाता है। रस निष्पत्ति का मूलाधार आलम्वन–विभाव हो पात्र कहला सकता है, राग पक्ष को प्रभावी ढंग से प्रकट करने का एकमात्र तरीका श्रेष्ठ है कि भाव पक्ष को विस्तार एवं गहराई से वर्जित किया जाये।

2. पात्र एवं चरित्र– पात्र एवं चरित्र में प्रत्यक्षतः कोई अन्तर नहीं किया जाता क्योंकि साहित्य में जिस पात्र का उल्लेख किया जाता है उसे किसी न किसी चरित्र में ढालकर ही होता है जैसाकि जी0एम0 किकडड ने कहा है–

Bat character means also personality, Espcially that part or Aspect of fersonality moral character.[2]

पात्र एक ओर व्यक्ति रूप में आलम्बन विभाव है, तो दूसरी ओर उसके आन्तरिक, वाह्य गुणों का समुच्चय भी जबकि चरित्र में सूक्ष्म, आन्तरिक भावनाओं एवं क्रिया–कलापों की अधिक चर्चा की जाती है जैसाकि अरस्तु ने उसकी विशदता का इस प्रकार उल्लेख किया है–

Character in its widest sense, As including All that Reard is a man's personal and inner self his iatelleluak powers no less then the will and the emotions.[3]

वस्तुतः चरित्र एक गतिशील तत्व है पात्र तो उसका सामान्य अर्थ ही व्यक्त करता है। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने तो मनुष्य के आचरण को चरित्र कहा है। भारतीय दर्शन में चरित्र

(1) शब्द कल्प द्रुम तृतीय भाग पृष्ठ–108/9 (2) ए स्टडी आफ सोफोक्लीन ड्रामा पृष्ठ सं0–99 (3) अरस्टटेल थ्योरी आफ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट, एस.एच.बूचर पृष्ठ–340

को समझने के लिये उनके बर्हिन्तर संघटन को आधार मानकर उसका स्वरूप व्यंजित किया गया है। श्रीमद्भागवत् गीता में क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ की चर्चा करते हुये पंच महाभूत त्रिगुणमयी प्रकृति दश इन्द्रियाँ उनके विषय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि की चर्चा हुई है।[1]

इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि चरित्र अन्तःकरण की उद्भूत प्रक्रिया है इसीलिये सांख्य दर्शन में प्रकृति, महत् तत्व, अहंकार, मन, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ पंच तन्मात्रायें और पंच महाभूतों को चरित्र का कारक तत्व माना गया है। भारतीय चरित्र सम्बन्धी अवधारणाओं का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत कर पाश्चात्य दार्शनिक मनोविश्लेषकों की दृष्टि से भी इसे परिभाषित किया जा रहा है यद्यपि जितना ही चरित्र को स्वरूप में बाँधा जा रहा है कोई न कोई कारक तत्व छूट ही जाता है। मैक्डूगल ने चरित्र को प्रज्ञात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तत्वों का संघटन मानना है। डा0 रोबर के अनुसार-''चरित्र जन्मजात प्रवृत्यात्मक उत्तेजनाओं को निग्रह करने वाला सतत् जागृत मनोवैज्ञानिक सुझाव है।''

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार-प्रवृत्तियाँ, आदतों, आवेग, इच्छा, संवेग, संवेदना चरित्र के अन्तर्गत आते हैं।[2]

वस्तुतः मानवाचरण का मूल प्रेरक अन्तः करण है। अन्तःकरण और वाह्य शरीर मिलकर ही व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। अंज धातु में वि उपसर्ग लगाकर क्तन् और त्वल् प्रत्यय के संयोग से व्यक्तित्व शब्द बनता है जिसका अर्थ निजी विशिष्ट क्षमताएँ, गुण प्रवृत्ति आदि है। जो उसके उद्देश्य या कार्यों से प्रकट होती है। इस व्यक्तित्व की परिभाषाओं को मनोवैज्ञानिकों ने अनेक ढंग से विश्लेषित किया है। उनके अनुसार सामान्य वयस्क व्यक्तित्व इड इगो, सुपर इगो से मिलकर संरचित होता है।[3]

फ्रायड व्यक्तित्व के नियामक मन के अचेतन अंश को बहुत महत्वपूर्ण कहता है। इस प्रकार व्यक्तित्व निर्माण के मूल में, शारीरिक गठन में, नाडी तन्त्र में, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव, आनुवंशिकता एवं पर्यावरण, मानसिक दृढ़ता का महत्वपूर्ण स्थान है।

(ख) साहित्य में पात्र की महत्ता एवं स्वरूप—भौतिक दृष्टि से प्रत्येक चेतन प्राणी सोद्देश्य गतिमान है। साहित्य में प्रयुक्त पात्र शील-स्वभाव, आचार-विचार,

---

(1) गीता 13/15-16 (2) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका भाग-18 पृष्ठ-116 (3) कन्टेम पोर्टरी स्कूल आफ साइक्लाजी पृष्ठ-53

आहार-व्यवहार, तथा प्रवृत्ति की विविधता एवं विभिन्नता से विन्यस्त कथावस्तु का वाहक होता है। ब्रह्मा के समान कवि भी प्रजापति स्वयंभू, सृष्टि रचयिता माना गया है। संसार में विविध चरित्रों का प्रतिफलन वह अपने काव्य में वर्णित करता है। कथावस्तु का विकास रस की निष्पत्ति, भाषा के विविध रूप और उद्देश्य सम्यक रीति से पात्रों से ही प्रस्फुटित होता हैं। प्रारम्भ में नाटकों से पात्रावधारणा विकसित होकर अपने वृहत् रूप को महाकाव्यों में विस्तार पाते हैं।

भामह ने लिखा है कि "महाकाव्य की कथा का आधार महान चरित्र होते हैं।"[1] इस प्रकार भारतीय काव्यशास्त्र में पात्र के रूप में नायक-नायिका, प्रतिनायिका, उपनायक, सहनायक, सहनायिका, तथा विभिन्न वर्ग वाले पात्रों की परिकल्पना हुई।

प्रायः सभी देशों में समाज के विकास के साथ-साथ नायकत्व का भी विकास होता है। भारतीय नाट्यशास्त्र में अधिकारी को नायक कहकर धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत, धीरप्रशान्त इत्यादि भागों में बाटकर इनके आन्तरिक और ब्राह्य गुण, अवगुणों की विस्तृत चर्चा की गई है। इसी तरह नायिका-स्वकीया, परकीया, सामान्य, एवं मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा आदि के शताधि भेदकर उनके अंगज अलंकार हाव-भाव, हेला, बिम्बोक एवं अयत्नज अलंकारों में शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य आदि गुणों की चर्चा की गई है। इसी तरह से पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र में उच्च कुलोद्भव महत् चरित्र सम्पन्न तथा अनेक साहस आदि गुणों की चर्चा अरस्तु प्रभृति विचारकों ने की है।

सारांश यह है कि वैदिक साहित्य में ऋषि-प्राकृतिक, अप्राकृतिक, अति प्राकृतिक, स्थितियों, वस्तुओं, दशाओं का उल्लेख कर उनसे अपनी कामनाओं की पूर्ति करते रहते हैं इसीलिये इनके वर्ण्य पात्र अमानवीय या देवता कहे जाते हैं। विश्व में सबसे प्रथम चरित्र सम्पन्न मानवी काव्य वाल्मीकि रामायण है जिसमें महत् कथा को उपन्यस्त करने हेतु महत् चरित्र की अवस्थापना की गई है। यहाँ हम आलोच्य काव्य वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में प्रयुक्त पहले प्रमुख बाद में गौण एवं अन्य उल्लिखित पात्रों की सूची प्रस्तुत कर लिंग, प्रवृत्ति प्रतीक, कार्य, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक विभिन्न दृष्टियों से उनका वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि प्रमुख और गौण पात्रों का

(1) काव्यालंकार (भामह) 1/19

विभाजन कथा के आधार पर किया जायेगा। जो पात्रों का विभाजन, कथा के आधार पर किया जायेगा। जो पात्र कथा में जितने अंश में फैले हैं उन्हें मुख्य पात्र और जो क्षणिक देर के लिये आकर अपने चरित्र व्यवहार से कथा को दिशा देते हैं गौण पात्र कहलाते हैं।

वाल्मीकि के पात्र— प्रथम अध्याय में वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु का विश्लेषण कर देखा गया है कि यह कथा एक व्यापक समाज को समाहित किये हुये है, अतः इसके पात्र पुष्कल मात्रा दिखाई देते हैं। कथा महोदधि में यह पात्र कुछ महार्ध रत्न और कुछ सीपी, घोंघे के समान हैं। सचमुच में वाल्मीकि रामायण पात्रों की दृष्टि से समूचा विश्वकोष जैसा प्रतीत होता है। पहले प्रमुख पात्रों की सूची–

प्रमुख पात्र— राम, सीता, रावण, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण।

गौण पात्र— शत्रुघ्न, उर्मिला, सुमित्रा, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, जनक, वशिष्ट, मन्थरा, विश्वामित्र, सुमन्त्र, गुह, वामदेव, अत्रि, अनुसुइया, सूर्पणखा, जटायु, शबरी, बालि, कुम्भकर्ण, भारद्वाज, जाबालि, वाल्मीकि, अहिल्या, ताड़का, सुबाहु, मारीच, अंगद, तारा, जाम्बवन्त, नल, नील, मेघनाद, अकम्पन, खर, दूषण, प्रहस्त, विराध, शरभंग, सुतीक्ष्ण, कबंध, अगस्त, लव, कुश।

अन्य पात्र— अक्ष (अक्षय कुमार), अग्नि, अतिकाय, अदिति, अरुंधति, इन्द्र, कर्दम, कश्यप, कालनेमि, कुबेर, गज, गौतम, जयन्त, त्रिजटा, त्रिशरा, दक्ष प्रजापति, दधिवक्र, द्विविद, नारद, परशुराम, उमा, प्रमाथी, प्रहलाद, ब्रह्मा, बृहस्पति, मन्दोदरी, मय, मातलि, माल्यवान, मैनाक, स्थाणु, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता (वरूण), पुलह, गरूण, अरिष्टनेमि, अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा मनु, अनला (दक्ष कन्याएँ) (कश्यप की पत्नियाँ), शम्बूक (शूद्र), छुप (राजा), सुदेव (राजा), श्वेत (पुत्र), सुरथ (पुत्र), दण्ड (इक्ष्वाकु का पुत्र), अरजा, मधुरेश्वर, राजा इल, इला, प्रजापति कन्दर्प, बुध, सोमदेवता, संवर्त (महात्मा), अरिष्टनेमि, प्रमोदन, मोदकर, वषट्कार, ओंकार, मरूत्त, शक्ति, दीर्घतमा, गर्ग, सुप्रभ, वामन, पार्वत (ऋषि), तक्ष (भरतपुत्र), पुष्कल, अंगद (लक्ष्मण पुत्र), चन्द्रकेतु, सर्वसंहारकारी काल, सुबाहु (शत्रुघ्न पुत्र), शत्रुधाती, वरूण, श्येनगामी (खर के सेनापति), पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुजर्य, करवीराक्ष, परुष, कालकार्युक, हेमलाक्षी, महामाली, सर्पास्य, रूधिराशन, विद्युज्जिहव,

मतंग, अयोमुखी, स्थूलशिरा, दनु (दैत्य), ऋक्षरजा, मायावी, दुन्दुभि, पुलोम (दानव), शची, अनुह्लाद, शतबलि, रूमा, केसरी, गवाक्ष, धूम्र, पनस, गवय, दरीमुख, मैन्द, द्विविद, वीरगज, रूमण (रूमण्वान्), गन्धमादन, तार, इन्द्रजानु, रम्भ, दुर्मुख, दधिमुख, शरभ, कुमुद, वह्नि, रंह, महर्षि वालखिल्यगण, सुहोत्र, सुषेण (वानर), शरगुल्म, वृषभ, हुताशन, उत्कामुख, अनंग, विश्वकर्मा, वासुकि (सर्पराज), रोहित (गन्धर्व), शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष (शिग्रु), शुक, बभ्रु, अर्चिष्मान, विजय, मधुमत्त, काश्यप, मंगल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र, सुमागध (श्रीराम के सखा), दुर्वासा, नृग, शबला (गौ), वसु (राजकुमार), वरूण (देवता), पुरूरवा, उर्वशी, श्रीमान् आयु, मित्र, शर्मिष्ठा, वृषपर्वा, देवयानी, पुरू, यदु, सर्वार्थमित्र (भिक्षु), आंगिरस, कुत्स, सरमा (कुत्ता), लोलका, लवणासुर, स्कन्द, सुदास (राजा), वीरसह (पुत्र), मदयन्ती (पत्नी), अर्चिमाल्य, हयग्रीव, नरक (दानव), महर्षि मेरूसावर्णि, विनत, महर्षि कण्डु, हेमा (अप्सरा), स्वयं प्रभा, वृत्रासुर, निशाकर (ऋषि), भगवान सूर्य, पुंजिक स्थला (अप्सरा), कुंजर, भज्जना, वायु देवता, सिंहिका, रोहिणी, एकाक्षी, एककर्णा, कर्णप्रावरणा, गोकर्णी, हस्तिकर्णी, लंबकर्णी, अकर्णिका, हस्तिपदी, अश्वपदी, गोपदी, पादचूलिका, एकपादी, पृथुपादी, अपादिका, अतिमात्र शिरोग्रीवा, अतिमात्र कुचोदरी, अतियात्रास्मनेत्रा, दीर्घजिह्वा नखा, अनासिका, सिंहमुखी, गोमुखी, सूकरीमुखी, धान्यमालिनी, एकजटा, हरिजटा, विकटा, दुर्मुखी, विनता, चण्डोदरी, प्रघसा, अजामुखी, कला (विभीषण पुत्री), अविन्दय, जम्बुमाली, यूपाक्ष, दुर्घर, प्रघस, भासकर्ण, सुमाली, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दृंष्ट्र, रोमश, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, मकराक्ष, दुरात्मा, ब्रह्मशत्रु, मघु (दानवराज), कुम्भीनसी, वज्रहनु, सुप्तहन, यज्ञकोप, वैवस्वत यम, विनातकवच (दैत्य), कालकेय, सुरभि (गौ), चन्द्रदेव, गौ (सेनाध्यक्ष), पुष्कर, प्रभास (मंत्री), शुक्राचार्य, नलकूबर, रूद्र, आदित्य, वसु, मरूद्गण, अश्विनी कुमार, सावित्र (आठवें वसु) त्वष्टा (अदिति पुत्र), पूषा, जयन्त, गोमुख (मातलि पुत्र), पुलोमा (दैत्यराज), अर्जुन (राजा), कृतवीर्य (पिता), प्रभ, मुदित, प्रतर्दन, बलीमुख, सुपाव्ल, शुम्भ, केसरी, शंखचूड, युवनाश्व, शार्दूल, सारण, समुद्र (दिवता), श्वेत, क्रोधन, दम्भ, क्रथन, संनादन, शम्बसादन, प्रमाथी, वेगदर्शी, सुमुख, ज्योतिर्मुख, हेमकूट (मंत्री विभीषण), अनल, पनस, सम्पाति, प्रमति, हर, तपन, अग्निकेतु, वज्रमुष्टि, अरानिप्रभ, प्रतपन, विद्युन्माली, यज्ञशत्रु, सानु प्रस्थ, ऋषभस्कन्ध, स्कन्ध, प्रधु, कद्रू, कुम्भहनु, महानाद, समुन्नत, अकम्पन, पिशाच,

त्रिशरा, यूपाक्ष, हरिलोमा, विद्युदृंष्ट्र, सूर्यानन, पावकाक्ष, शोणिताक्ष, कम्पन, मकराक्ष, तीक्ष्ण वेग, संघ्रदी, विकट, अरिघ्न, प्रघस, जंघ, द्विजिह्व, चक्रमाली, ऋतधामा, वराह, अग्निदेव, प्रवृत्ति, अशोक (मंत्री), विजय, सिद्धार्थ, सुयज्ञ, कौशिक (ऋषि), यवक्रीत, गार्ग्य, गालव, मेघातिथि, कण्व, स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, सुमुख, विमुख, नृषंग, कवष, धौम्य, कौशेय, वशिष्ठ, जामदग्नि, तृणबिन्दु, वैश्रवण, हेति (राक्षस) प्रहेति, मधु, कैटभ, कालकी, भया, विद्युत्केश, संध्या, पुलोम, सालकटंकटा, सुकेश, विश्वावसु, ग्रामणी (गन्धर्व), देववती, नर्मदा (गन्धर्वी), केतुमती, कुबेर, राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी, वसुदा, अनिल, राधेय, लोकपाल, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ, निशुम्भ, मय (दितिपुत्र), विरोजन कुमार वलि, वज्रज्वाला, शैलूष (गन्धर्व) सरमा, संयोधकटंक, सूर्यभानु (द्वारपाल), मणिभद्र, शुक्र, प्रौष्ठपद, नन्दीश्वर, कुशध्वज (ऋषि), शम्भु (दैत्य), राजा मरुत, संवर्त, दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, पुरूरवा, नारद जी, यमराज, राहु, लंका, शतानन्द, महादेव, ऋष्यश्रृंग, संपाति, समुद्र, सरस्वती, सुरसा, सुषेण, हिरण्यकशिपु, धूम्राक्ष, युधाजित, वज्रदन्त, शान्ता, सरमा, रोमपाद, दैत्यराज सुन्द, राजा कुश, कुशम्भ, कुशनाभ, असूर्तरजस, वसु, राजा ब्रह्मदत्त, गाधि, मुनि ऋचीक, पर्वतराज हिमवान, भगवान रूद्र, कार्तिकेय, राजा सगर, महर्षि भृगु, असमंज, अशुंमान, महात्मा कपिल, दिलीप, भगीरथ, राजा सुमति, राजा त्रिशंकु, राजा अम्बरीष, शुनः शेप, कुशध्वज, परशुराम, गन्धर्वी सोमदा, सत्यवती, गंगा, केशिनी, सुमति, दिति, मेनका, रम्भा, सुकेतु, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, महापार्र्व, कुम्भ, निकुम्भ, विरूपाक्ष, विश्रावा, कैकसी, वैश्रवण, वरुण कन्या वारूणी, सुरा, इक्ष्वाकु, विशाल, अलम्बुषा, हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, संश्रय, सहदेव, कुशाश्व, काकुत्स्थ, निमि, देवरात, सुदामन (मंत्री), मरीचि, कश्यप, विवस्वान्, वैवस्वत मनु, कुक्षि, विकुक्षि, बाण, अनरण्य, पृथु, धुन्धमार, युवनाश्व, मान्धाता, सुसन्धि, धुव्रसन्धि, प्रसेनजित्, भरत, असित, हैदय, तालजंघ, शशविन्दु, च्यवन, कालिन्दी, रघु, प्रवृद्ध, शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरू, प्रशुश्रुक, नहुष, ययाति, नाभाग, अज, राजा निमि, मिथि, उदावसु, नन्दिवर्धन, वृहद्रथ, सुधृति, घृष्टकेतु, हर्यश्व, मरू, प्रतीधक, कीर्तिरथ, देवमीढ, विवुध, महीध्रक, कीर्तिराज, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा, सुधन्वा, शम्बर (दैत्यराज), श्रवण कुमार, मार्कण्डेय, मौदग्ल्य, कात्यायन, जव (राक्षस), शतह्रदा, माण्डकर्णि, वातापि, इल्वल, कर्दम प्रजापति (प्रथम), विकृत (द्वितीय), शेष (तृतीय), संश्रय (चतुर्थ), बहुपुत्र (पंचम)।

जानकी जीवनम् में पात्र

स्त्री पात्र—जानकी, सीता, रानी सुनयना, ताटका, रानी कौशल्या, रानी कैकेयी, रानी सुमित्रा, दासी मन्थरा, अनसूया, शूर्पणखा, त्रिजटा, मन्दोदरी, रावण की माता केकसी, राक्षसी सरमा, ऋषिकन्या वेदवती, सुग्रीव की पत्नी तारा, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति।

पुरूष पात्र—राजा जनक (सीरध्वज), शतानन्द, राजा दशरथ, श्री राम, महर्षि वशिष्ठ, मन्त्री सुमन्त्र, विश्वामित्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुबाहु, मारीच, कुशध्वज, महर्षि भरद्वाज, महर्षि अत्रि, लंकापति रावण, खर, दूषण, त्रिशिरा, महर्षि सुतीक्ष्ण, महर्षि शरभंग, गृद्धपति जटायु, वानर राज सुगीव, वानरराज बाली, पवनपुत्र हनुमान, ऋक्षपति जाम्ववान, रावणपुत्र अक्ष, रावणपुत्र मेघनाद, नल, नील, अंगद, विभीषण, शुक–सारण (गुप्तचर), रावण के नाना माल्यवान, रावण के महामात्य प्रहस्त, कुम्भकर्ण, कुम्भ, निकुम्भ, अयोध्या नरेश अनरण्य, महर्षि अगस्त्य।

अन्य पात्र—कुमुद, सुषेण, उल्कामुख, अर्क, प्रजंघ, गज, गवय, गवाक्ष, अनंग, गन्धोत्कट, द्विविद, पनस, गन्धमादन, जम्भ, धूम्र, शरभ, राक्षस विराध, इन्द्रपुत्र जयन्त, दुर्मुख गुप्तचर, धोबी, महर्षि वाल्मीकि, कुश, लव, लक्ष्मण पुत्र अंगद, चन्द्रकेतु, भरतपुत्र तक्ष, पुष्कल, शत्रुघ्नपुत्र सुबाहु, शत्रुधाती।

पात्रों का वर्गीकरण

आलोच्य काव्यों के पात्रों की सूची ऊपर प्रस्तुत की गई है। यहाँ विभिन्न दृष्टियों से इन पात्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है। मोटे तौर पर इन पात्रों में कुछ पात्र नाममात्र के एवं कुछ किसी घटना के सन्दर्भ में प्रयुक्त है, अतः इन्हें छोड़कर यह वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

1.प्रमुख एवं गौण पात्र—कथावस्तु के वाहक पात्र ही होते हैं। ये कथानक के सजीव तत्व कहे जाते हैं। कुछ पात्रों की भूमिका लम्बी होती है और कुछ ही संक्षिप्त अतः लम्बी भूमिका वाले पात्रों को प्रमुख एवं दूसरे को गौण पात्र कहेंगे। इन दोनो पात्रों के स्वरूपगत वैशिष्ट्य का अन्तर करना अपेक्षित है।

जो पात्र कथानक में वर्णित काल सीमा में देर तक छाये रहते हैं उनकी भूमिका लम्बी होती है। प्रत्यक्ष रूप से उनके अस्तित्व का बोध होता रहता है, कथानक के कार्य की पूर्णता

जिनसे होती है ऐसे पात्रों को प्रमुख पात्र कहा जाता है। इसके विपरीत गौण पात्रों का आगमन कथा में अल्पकाल के लिये होता है या उनकी झलक मात्र ही दिखाई देती है इन पात्रों के जीवन की घटनाएँ प्रमुख पात्र के चरित्रगत किसी न किसी विचित्रता का वर्णन होता है। तात्पर्य यह है कि रामकथा में राम, सीता, दशरथ, कौशल्या, लक्ष्मण, भरत, रावण, हनुमान, सुग्रीव एवं विभीषण प्रमुख पात्र तथा विश्वामित्र, मंथरा, सूर्पणखा, शबरी, बालि, अंगद, मेघनाद आदि गौण पात्र हैं। रामकथा के पात्र वर्गीकरण के कई आधार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। डा0 रमेश कुन्तल मेघ[1] ने रामकथा का मिथकीय रूप प्रस्तुत करते हुये अपना वर्गीकरण इस प्रकार दिया है-

क– **दिव्य, आलौकिक उप्रासादन की धुरी पर**–राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान।

ख– **आलौकिक अवसादन की धुरी पर**–रावण, मेघनाद, कुंभकर्ण

ग– **सन्यास वृत्त पर–** राम, लक्ष्मण, भरत, ऋषि, मुनि।

घ– **शौर्य वृत्त पर–** रावण, लक्ष्मण, परशुराम, हनुमान।

ड.– **धार्मिक नेतृत्व की धुरी पर–** विश्वामित्र, पुरोहित, साधक

च– **नायक चक्र–** राम, लक्ष्मण, हनुमान।

छ– **खलनायक चक्र में–** रावण, खर–दूषण, मंथरा, कैकेयी।

ज– **विदूषक या मूर्ख चक्र में–** परशुराम, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा।

झ. **मानवीय चक्र में–** केवट, शबरी, ग्रामयुवतियाँ।

पात्रों का प्रतीकात्मक रूप

वाल्मीकि से लेकर आद्यावधि लिखे रामकाव्यों में लौकिकता के साथ आलौकिकता प्रारम्भ से ही अन्स्यूत रही है। डा0 कपिल देव पाण्डेय[2] एवं वीरेन्द्र नारायण[3] ने इन्हें प्रतीकात्मक मानकर इन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया है-

1. राम– चेतनमुक्त आत्मा।
2. दशरथ– दश इन्द्रियाँ।
3. कौशल्या– सौभाग्य।

(1) तुलसी आधुनिक वातायन से पृष्ठ सं0–188, डा0 रमेश कुन्तल मेघ (2) मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद डा0 कपिल देव पाण्डेय (3) नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 65 अंक 4 पृष्ठ 329

4. कैकेयी- निम्न चेतना।

5. सुमित्रा- सुमित्र।

6. भरत- मन।

7. लक्ष्मण- समय या सर्प।

8. शत्रुघ्न- शंख या आकाश।

9. सीता- राम की शक्ति या आत्मा की चेतन किरण।

10. सुग्रीव एवं बालि- ज्ञान एवं बुद्धि।

11. हनुमान- प्राणवायु।

12. रावण- तामसिक मनोवृत्तियाँ।

13. शूर्पणखा- वासनापूर्ण काम।

और इस प्रकार पूरी रामकथा को इस दृष्टि से व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। इसी तरह सत्यदेव चतुर्वेदी ने आध्यात्मिक दृष्टि से रामकथा को रूपकमयी बताते हुये लिखा है-"शरीर में स्थित जीवात्मा-राम है, शान्ति-सीता, अहंकार-रावण, धैर्य-विभीषण, विचार-हनुमान, उद्योग-लक्ष्मण, उत्साह-सुग्रीव, संयम-भरत, अहंकार-वालि है।"[1]

इसी तरह अवतार प्रतीकों के रूप में राम कथा की व्याख्या डा0 कपिल देव पाण्डेय, एवं डा0कुमार विमल ने की है। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि मूल वाल्मीकि कथा महद् चरित्र की व्याख्या है जिसमें मानव के बाह्य सौन्दर्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य का समाज-सापेक्ष चित्रांकन है। इस कथा के पात्र देशकाल परिस्थिति के अनुरूप प्रतीकात्मक रूप धारण करते गये जिनका चरम रूप अवतारवाद में दिखाई देता है। यहाँ हम आलोच्य काव्यों के प्रमुख एवं गौण पात्रों का चरित्र चित्रांकन कर दोनों कवियों की दृष्टियों का विश्लेषण करेंगे। यद्यपि स्मरणीय है कि वाल्मीकि की रामायण चरित्र कोष है। वहाँ पात्रों के सभी प्रतिरूपता प्रतिदर्श मिल जायेंगे जबकि जानकी जीवनम् में पात्र संख्या नितान्त सीमित है, वहाँ कथा की छिप्र गति के कारण उन्हें व्यक्तित्व रूप नहीं प्राप्त हो पाया वह पात्र ही रहे। जिन पात्रों को चरित्र या व्यक्ति के रूप में स्थान मिला है उनमें-राम,सीता, रावण, लक्ष्मण प्रमुख है।

(1) गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा-सत्यदेव चतुर्वेदी पृष्ठ 59

पात्रों का चरित्र चित्रण

1.राम

रामकथा में राम केन्द्रीय पात्र एवं नायक है। इन्हीं के चतुर्दिक सम्पूर्ण रामायणी कथा घूमती है। पित्राज्ञा का पालन पत्नी के साथ वनगमन, अन्याय, अत्याचार का विरोध, सज्जनों की रक्षा के साथ धर्म की प्रतिष्ठा, एतदर्थ दुष्टों या राक्षसों का संहार राम के अलौकिक एवं महत्कार्य को द्योतित करते हैं इसीलिये वह भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन में अन्स्यूत हैं वह धर्म के केतु हैं, वह मानवता के सेतु हैं इस प्रकार सम्भवतः प्रारम्भिक अवस्था में वे महापुरूष, जननायक पुरूषोत्तम रहे होंगे। अवतारवाद के साथ इन्हें विष्णु का अंशावतार, कलावतार माना जाने लगा। भक्ति के विकास के साथ इन्हें ब्रह्म से आगे ले जाकर परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि रामकाव्य इन्हीं तीन सोपानों की व्याख्या के ग्रन्थ हैं। वाल्मीकि रामायण रामकथा का मूलग्रन्थ है अतः इसमें राम के चरित्र विशेष रूप से मानवीय चरित्र या ऐतिहासिक रूप की व्याख्या सुरक्षित है। इस सन्दर्भ में विद्वानों का अभिमत है कि "राम एक क्षत्रिय जाति के नेता थे, जो अपने महत् कार्यो के कारण चरणों तथा कवियों की वाणी से गर्वान्वित होकर एक राष्ट्रीय नेता के रूप में मान्य होने लगे और अन्ततोगत्वा उनकी परिणति मानव मनीषा द्वारा निरूपित पूर्ण परब्रह्म में हो गई है।"[1]

रामकथा में कुछ विद्वानों ने राम को पात्र चरित्र, लीला नायक इत्यादि विशेषणों से युक्त कर विभिन्न काव्यों में उन्हें धीरोदात्त नायक या चरित्र सम्पन्न कहकर उनके शक्ति शील सौन्दर्य की व्याख्या और उनके चरित्र में इनकी चरम पराकष्ठा दिखाई है[2] तो दूसरी ओर आध्यात्मिक व्याख्याकारों ने उन्हें लीलानायक कहकर इस कथा को राम की लीला से अभिहित किया है, जिसमें राम परब्रह्म होकर साधु, सन्त, धार्मिकों की रक्षा हेतु स्वयं मानवकृत लीलाएँ या क्रिया कलाप करते हैं यद्यपि उनके भृकुटि निपेक्ष मात्र से अथवा संकल्प मात्र से सभी कार्य अनायास ही सरल हो जाते हैं यही गुण भक्ति के प्रादुर्भाव, विकास और चरम सीमा की सार्थकता सिद्ध करते हैं।"

वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् के राम महापुरूप, पुरुषोत्तम, धीरोदात्त

---

(1) ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, विन्टर नित्स एवं रामकथा पृष्ठ 480-83 (2) गोस्वामी तुलसीदास-रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 60

नायक हैं अतः उनके चरित्रगत साम्य वैषम्य के लिये बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक गुण दोषों का आधार बनाना अधिक समीचीन होगा।

राम का बाह्य सौन्दर्य

भारतीय काव्य शास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य एवं कामशास्त्र में स्त्री-पुरूष के बाह्य सौन्दर्य चित्रांकन अनेक दृष्टियों से किया गया है। वाल्मीकि और राजेन्द्र मिश्र दोनों ने राम के अतुलित, मनोहारी-उत्तम रूप का चित्रांकन विशद रूप से किया है। वाल्मीकि का मूल प्रश्न ही यही था कि इस लोक में सर्वाधिक प्रियदर्शन कौन है? जिसके उत्तर में राम के स्थूल सौन्दर्य का हृदयावर्धक चित्रांकन इस प्रकार है-

बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमांछत्रुनिवर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनु।।[1]
महोरस्को देष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
अजानुबाहुः सुशिराः सुललाटःसुविक्रमः।।
सम समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्ष विशालाक्षो लक्ष्मीवानछुभलक्षणः।।

इस प्रकार प्रत्यक्ष चित्रण उतना प्रभावी नहीं होता जितना कि परोक्ष चित्रणगत प्रभाव। तात्पर्य यह है कि राम के अतुलित अनुपम सौन्दर्य को देखकर आत्मीय या पारिवारिक जन ही नहीं मुग्ध होते अन्य परिचित पुरूष-स्त्री दोनों मुग्ध होते हुए दिखाई देते हैं। आत्मीय जनों में दशरथ, कौशल्या सर्वाधिक निकट व्यक्ति हैं। राम के सौन्दर्य पर मोहित हो दशरथ विश्वामित्र की याचना को ठुकराते हैं तो जनकपुर में आबाल, वृद्ध, नर-नारी द्वारा राम के कामविनिंदक सौन्दर्य का चित्रांकन कवियों ने किया है। पुष्पवाटिका में राम-सीता का प्रथम दर्शन किशोरी सीता के समक्ष राम के आकर्षक सौन्दर्य का चित्रांकन जानकी जीवनम् में इस प्रकार वर्णित है-

श्रुममिति श्रवणैर्यदसौ युवा भुवन मोहन रूप मनोभवः।
दशरथस्य महाबलशालिनः प्रथमसूनुरनन्तगुणाश्रयः।।[2]

आत्मीय स्वजनों में अयोध्या, पुरजन, चित्रकूट, दण्डकारण्य के विरक्त तपस्वी,

(1) वा.रा.1/1/9-11 (2) जा.जी.6/35

संन्यासी, हनुमान इत्यादि सहायक राम के माधुर्य, व्यंजक रूप से आकृष्ट हैं। हनुमान ने लंका में सीता के समक्ष राम के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता से किया है-

रूपवान् सुभगः श्रीमान् कंदर्प इव मूर्तिमान्।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः।।[1]
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः।
अपक्रम्या श्रमपदान्मृगरूपेण राघवम्।।
रामः कमल पत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभानन्।
रूपदाक्षिण्य सम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे।।

राम के अप्रतिम सौन्दर्य की प्रसंशा उसके विपक्षियों ने भी की है-शूर्पणखा, मारीच, खर-दूषण इसके उदाहरण हैं। पुरजन वासी एवं स्वजनों ने जिस सौन्दर्य को देखा है वह वाह्य सौन्दर्य तो था ही उसमें सुकुमररता थी जबकि विपक्षी ने जिस सौन्दर्य के मनोहारी रूप से आकृष्ट हुये वह कोमल सुकुमार तथा ओजस्वी, दृप्त और दृढ़ता से परिपूर्ण था। शूर्पणखा कहती है-

दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायलेलक्षणम्।
गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम्।।[2]
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यंजन्वितम्।
राममिन्दीवरश्यामं कंदर्प सदृश प्रभम्।।
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहितम्।

जबकि जानकी जीवनम् में राम के सौकुमार्य, मादर्व, कोमल रूप की अधिक अभिव्यंजना हुई है जिसमें संस्कृत के अलंकृत प्रधान श्रेण्य साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। राम के ऐसे सौन्दर्य वर्णन में हनुमान नाटक, अनर्घ राघव, क्षलित रामायण, प्रसन्न राघव इत्यादि श्रृंगारी रामायण प्रमुख हैं। इस प्रकार राजेन्द्र मिश्र ने राम के रंजक, मार्दव रूप का चित्रांकन स्वा वा परपक्ष दोनो रूपों किया है।

विवाह पूर्व राम-सीता के पूर्वराग जनित क्रियाकलापों में यही सौन्दर्य प्रमुखता से वर्णित है। शूर्पणखा की रतियाचना के पीछे कामविनिंदक सौन्दर्य की झलक देखिये-

---

(1) वा.रा.5/34/30, 31 (2) वा.रा.3/17/7,8,9/2
5/35/8

सौम्य सुन्दर! कोऽसि किं पुरुषे वनेऽस्मिन् त्वदृशं पुरुषं न पूर्वमितोवदेश्यम्।[1]

मामकं हृदयं प्रलोभमहो त्वयीदं कामये रति वल्लभं निर्जिताऽहम्।।

आलोच्य कवियों ने एतद् विषयक दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए कहा है कि यद्यपि वाल्मीकि ने राम के बालकिशोर सौन्दर्य का चित्रांकन नहीं किया उन्होंने यत्र-तत्र आंगिक शोभा, दीप्ति, कांति, लावण्य आदि के लिये चन्द्रमा और कमल उपमान का प्रयोग किया है तथापि उन्होंने राम के दृढ़ वक्षःस्थल, अजानुवाद आदि तेजोदृप्त ओजस्वी सौन्दर्य का चित्रण किया है जबकि जानकी जीवन में सौकुमार्य, लावण्य, विलासी नायक जैसी श्रंगारपीता के लिये राम के पौगण्ड किशोर और ललित नायक की तरह युवा सौन्दर्य छवि का मण्डन किया है यह वैषम्य कालगत और दृष्टिगत भी है क्योंकि वाल्मीकि के राम धार्मिक नेता न होकर राजनीतिक, सामाजिक, भारतीय राजाओं के राष्ट्रीय चरित्र के अनुरूप हैं जबकि जानकी जीवन के राम कोमल मध्ययुगीन सम्राटों, नायकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

श्रीराम का शील

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के आन्तरिक गुणों का परिचय देते हुये कहा गया है कि "आन्तरिक गुण वाह्य आकृति एवं क्रिया कलापों से व्यक्त होते हैं।" शील मन का वह भाव है जो व्यक्ति के मूल रूप में निहित होता है इसे ही हम स्वभाव कहते हैं जबकि सुशीलता दूसरे को प्रसन्न करने वाले आचरणों की श्रेणी में आता है, जिसे वाल्मीकि में चरित्र कहा गया है उसे ही मनोविज्ञान में शील कहा जाता है।" यहाँ हम आलोच्य काव्यों में राम के आन्तरिक गुणों की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत करेंगे। रामायण के प्रारम्भ में राम के आन्तरिक गुणों की तालिका में धर्मज्ञता, कृतज्ञता, सत्यभाषण, दृढ़ संकल्प, सर्वभूतहित, विद्वान, आत्मवान, जितक्रोध, अनसूयक, धृतिमान्, वाग्मी, इन्द्रियजयी, सर्वशास्त्रज्ञ, आदीन-दीन आत्मा है। इसी प्रकार जानकी जीवनम् में वाग्मी, भ्रातृप्रेम, धीरता, सरलता, निडरता आदि गुणों का उल्लेख है यहाँ हम कुछ घटनाओं के द्वारा राम के आन्तरिक स्वाभाव, सबलता और कुछ दुर्बलताओं का उल्लेख करेंगें। बात यह है कि रामकथा के चरित्र के केन्द्र सदाचार को प्रमुखता दी गई है चाहे वह विश्वामित्र, ताड़का, सुबाहु वध, धनुर्भंग प्रसंग, वनगमन, शूर्पणखा की याचना, राम-रावण युद्ध ही क्यों न हो फिर भी उनके चरित्र में अनेक आपेक्ष उठाये जा

---

(1) जा.जी.11/48

सकते हैं। शील का एक यह भी स्वरूप है कि परिवार परिधि में राम के जो रूप सामने आये हैं उनमें उनका आचरण किस प्रकार है यहाँ हम इन रूपों की चर्चा वाद में करेंगे।

प्रस्तुत प्रसंग में राम के सहजशील, सौजन्य, अक्रोध, क्षमाशीलता, अदोष दर्शन, गुणग्रहकता की चर्चा करेंगे।

दोनों आलोच्य काव्यों में एतद्विषयक अनेक घटनाओं की परिकल्पना की गयी है। सीता-राम की आसक्ति में राम का विवेकयुक्त होना, वनवास प्रकरण में कैकेयी के प्रति अक्रोध, सुग्रीव एवं विभीषण के सन्दर्भ में अदोष दर्शन, तथा परिवारीजनों के साथ ऋषि-मुनियों की हित चिन्ता उनके सौशील्य का निदर्शन है। यद्यपि कुछ घटनाओं के चित्रण में शील गुण बाधित हुआ है जिसमें स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार के रूप में ताट्का, शूर्पणखा और रावण-वध के पश्चात सीता की परीक्षा, बालि प्रकरण में स्वार्थसिद्धि हेतु अनुचित साधन का प्रयोग शूर्पणखा से असत्य भाषण, साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के लिए उनके शील के प्रति आक्षेप जनित उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

राम की शक्ति

ईश्वर को अनन्त सौन्दर्य, शील, शक्ति सम्पन्न कहा जाता है। इस दृष्टि से राम चरित्र का मूल्यांकन प्रमुख है। वाल्मीकि ने राम की शक्ति के अनेक उदाहरण घटनाओं एवं कथाओं के माध्यम से दिया है। रामायण की मूलकथा पौलस्त्य वध या राम की विजयागाथा है। अतः संसार में जितना मानसिक बल ~~ओज, शक्ति और पौरुष की~~ कल्पना की जा सकती है सबके प्रतिष्ठापक मूर्तिमंत रूप राम ही दिखाई पड़ते हैं क्योंकि राम की शक्ति सर्वभूतहिताय है; उन्होंने लोककल्याण के लिये युद्ध का आश्रय लिया है। इसीलिये कहा भी जाता है कि "क्रिया सिद्धि सत्त्वे भवति महताम् नौपकरणे।

वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में राम के इस गुण की प्रतिष्ठा हेतु समान घटनाओं का वर्णन है जिसमें विश्वामित्र मखरक्षण, धनुषभंग, विराध, खर-दूषण, कबन्ध, कुम्भकर्ण, रावण आदि विषयक वैशिष्ट्य का निरूपण किया जायेगा-धनुष भंग प्रकरण में जनक की प्रशंसा देखिये-

भगवन् दृष्टवीरो में रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमितं यथा।।[1]

---

(1) वा.रा.1/67/2/1/75 1

राम दशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्।

धनुषो भेदनं चैव निखिलेन यथा श्रुतम्।।

उनकी वीरता का चरम निदर्शन खर-दूषण, कुम्भकर्ण और रावण वध में दिखाई पड़ता है-

तेनाग्निकाशेन कवचेन विभूषितः।

बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः।।[1]

स चापयुद्यम्य यदच्छरानादाय वीर्यवान्।

सम्बभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः।।

राम की शक्तिमत्ता का दुर्दर्ष रूप रावण-वध के समय चित्रित हुआ है। अस्त्र-शस्त्र संचालन में राम की निपुणता का उल्लेख जानकी जीवनम् में इस प्रकार हुआ है-

रघूत्तमशरक्षतप्रवहमानरक्तश्रवैः।

प्रफुल्लितपलाशतामुपगतोरणे रावणः।।[2]

चकर्त बहुशः शिरस्त्वरितमेव तद् प्रोद्गतं।

विरंचिवरदानतोऽभवदमानितो राघवः।।

राम की शक्तिमत्ता, वीरता, सफलसैन्य संचालन, रणदक्षता आदि की दृष्टि से जब दोनों कवियों की तुलना करते हैं तव यह सहज ही निष्कर्ष सामने आ जाता है कि शारीरिक बल, दृढ़ता, शास्त्र ज्ञान, प्रयोग, नैपुण्य, तेजस्विता वाल्मीकि रामायण में मुखर रूप से है। उन्हें विष्णु के समान पराक्रमी कहा गया है। वह कर्मठ, सचेत, क्रियाशील, कुशल राजनीतिज्ञ है। उनकी वाणी की उद्भुत शक्तिमत्ता का उल्लेख वाल्मीकि ने अनेक स्थानों पर किया है जवकि राजेन्द्र मिश्र ने ऐसे स्थलों की संक्षिप्त चर्चा कर अप्रत्यक्ष रूप से राम की वीरता का वर्णन किया है। यह दोनों कवियों के कथा-चित्रण, दृष्टि-वैषम्य का कारण है। वाल्मीकि युगीन राम क्षत्रियोचित वीरता का प्रतीक है; जिसनें युद्धवीरता, दानवीरता, धर्मवीरता और दयावीरता साक्षात् मूर्तित है जवकि जानकी जीवनम् का राम वीर शक्तिवान तो है किन्तु उसमें कोमलता, लावण्य और सौकुमार्य की प्रवलता है।

राम की गुरू भक्ति (आदर्श शिष्य)

रामकथा में राम के शिष्यत्व का आदर्श रूप विश्वामित्र और वशिष्ठ के परिप्रेक्ष्य में

(1) वा.रा.3/24/17,18 (2) जा.जी.14/83

दिखाया गया है। यद्यपि शील सौजन्य भावनाओं का सुन्दरतम् निदर्शन वाल्मीकि रामायण में कम दिखाई देता है क्योंकि वाल्मीकि ने वीरता प्रदर्शन में इस गुण का विकास देखा है। शीलता, सुकुमारता, सुजनता, गुरूभक्ति की अभिव्यक्ति साधन रूप में कम ही आये। विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम की रक्षा, छः रात्रियों तक कठिन जागरण, राक्षसों का नरसंहार कर तथा वशिष्ठ की आज्ञानुसार नियम पालन में यह भाव अपने चरम रूप में दिखाई देता है-

इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव् किम्।।[1]

उनकी इस सेवा से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उन्हें दिव्यास्त्रों का दान किया था। इसी प्रकार वनवास प्रकरण से चित्रकूट प्रसंग तक राम में गुरू के प्रति भक्ति का भाव व्यंजित हुआ है, यद्यपि चित्रकूट प्रसंग के कुछ स्थलों पर राम द्वारा गुरू की अवज्ञा व्यंजित है परन्तु वह सन्दर्भ भिन्न है। उदाहरण देखिये-

स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप।
मम त्वं वचनं कुर्वन् नाति वर्तेः सतां गतिम्।।[2]

वस्तुतः यह वशिष्ठ की आज्ञा नहीं भावावेशी विचार है जिसका पालन न करना ही नैतिक रूप से उचित सिद्ध हुआ है। जानकी जीवनम् में राम की कोमलता, सौशील्य एवं विनम्रता से वशिष्ठ अभिभूत हो गये-

अरून्धती जानिरपि प्रहृष्टो गुणव्रजं तं रघुनन्दनस्य।
प्रकल्प्य रोमांचपरीतकायः क्षणं हृषीकाशुवशं जगाम।।[3]

पितृभक्ति (आदर्श पुत्र)—वैदिक साहित्य और औपनिषद् राम सम्बन्धी कुछ स्थलों की व्याख्या में राम का अर्थ पुत्र भी किया है जिसका चरम विकास वाल्मीकि और परवर्ती साहित्य में हुआ है। वाल्मीकि रामायण में पितृभक्ति का महान आदर्श अनेक पात्रों के माध्यम से प्रतिष्ठित हुआ है, इन पात्रों में राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, अंगद, मेघनाद विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं किन्तु "रामो रतिकरः पितुः" कहकर वाल्मीकि ने राम की एतद् विषयक भक्ति भावना अनेक रूपों में व्यंजित की है। पित्राज्ञा पालन में गर्वोन्भूति का उदाहरण देखिये-

---

(1) वा.रा.1/31/14 (2) वही 2/111/4 (3) जा.जी.8/6

कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता।

कुपितस्तन्माचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय।।[1]

अतोषयन महराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः।

मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे।।

चन्द्रमा की कीर्ति अलग होना सम्भव है, हिमालय शीतलता छोड़ सकता है, समुद्र उद्वेलित हो सकता है किन्तु राम अपने पिता की प्रतिज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकते-

लक्ष्मीश्चन्द्रायपेयाद वा हिमवान वा हिमं त्यजेत्।

अतीयात् सागरो बेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।[2]

पिता की सत्यरक्षा हेतु वल्कल वेशधारी राम की वन यात्रा का उल्लेख जानकी जीवनम् में इस प्रकार हुआ है-

दधद्वल्कलो वद्धकेशश्च रामः प्रियासोदराम्यां तृतीयो मनस्वी।

पितुः सत्यरक्षाव्रते दत्तचित्तो वनाय व्रतस्थे रथस्योऽभिरामः।।[3]

पिता दशरथ को भी राम की इस अनन्यता और पितृ भक्ति पर पूर्ण विश्वास है, दशरथ कहते हैं-

नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम्।

स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति।।[4]

यदि मे राघवः कुर्याद वनं गच्छेति चोदितः।

प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति।।

कैकेयी के आशंका व्यक्त करने पर राम अपने को धिकृत करते हुये कहते हैं कि वह पित्राज्ञा हेतु अग्निकुण्ड में कूद सकते हैं, हलाहल का प्राशन कर सकते हैं और वह अपने विषय में कहते हैं कि,"रामोद्विः न अभिभाषते।"

अहो धिङ्. नार्हसेदेवि वक्तुं मामीदृशं वचः।

अहं हि वचनाद् राज्ञः पेतयमपि पावके।।[5]

भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।

नियुक्तो गुरूणा चित्रा नृपेण च हितेन च।।

---

(1) वा.रा.2/18/11,15 (2) वही 2 112/18 (3) जा.जी.10/79 (4) वा.रा.2/12/85,86 (5) वही 2/12/28,29

चित्रकूट प्रसंग में राम भरत की अहर्निश चिन्ता करते थे। उन्होंने सुमन्त्र, भरत और वशिष्ठ से अलग-अलग समय पर पिता की देख-भाल की चर्चा भी की है। अयोध्या पुरवासी भी राम की इस पितृ भक्ति से अतीव प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में डा0 विद्या मिश्र ने लिखा है,"राम की अभिवादन शीलता, नम्रता, विनयशीलता, आज्ञा पालन एवं सत्य सन्धत्त्व सभी गुणों का उत्तरोत्तर विकास एवं अभिव्यक्ति रामायण में विस्तृत रूप से की गयी है।"[1]

यत्र-तत्र मानवीय दुर्बलता के अन्तर्गत राम के एतद्विषयक अन्तर्द्वन्द्वों का उल्लेख वाल्मीकि ने किया है। इस मानवीय क्षोम प्रदर्शन रूपी कलंक के होते हुए भी राम की अनन्य भक्ति निष्ठा, चन्द्र, स्निग्ध, सुखद और प्रीतिकर सिद्ध हुई है।

आदर्श भ्राता– भातृ भक्ति के चरम आदर्श की व्यंजना लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न में दिखाई देती है फिर भी श्रेष्ठ भ्राता होने के कारण राम का यह चिन्तन अत्यन्त प्रभावी बना है कि बन्धु-बान्धव की हत्या कर प्राप्त धन वैभव विष तुल्य है-

यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्।
नाहं तत् प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान् विषकृतानिव।।[2]
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छमि सत्येनायुधमालभे।।

सुखः-दुःख में सम्मिलित होना यह उतनी श्रेयष्कर बात नहीं है जितनी की मन गह्वर में छिपी काम भावना का भाई से विचार विमर्श करना जानकी जीवनम् में राम सीता-दर्शन से उत्पन्न पूर्वराग जनित उद्दाम कामभावना की चर्चा लक्ष्मण से भ्रातृभाव के कारण ही करते हैं। वह पूछते हैं कि उनके हृदय के अन्तर्मन्थन का क्या कारण है-

कथय वत्स! हृदि प्रणयोर्मिभिः किमिवरिंगणमाशु विधियते।
न खलु कच्चिंदियं मुखचन्द्रिका भवति कारणमस्य यथोचितम्।।[3]

जिस प्रकार राम ने भरत के लिये त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया उसी प्रकार वे लक्ष्मण की भी चिन्ता करते हैं। लक्ष्मी से सम्पन्न लक्ष्मण के बिना राम एकाकी भोजन नहीं क़रते थे-

लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो वहिः प्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।।[4]

---

(1) वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस पृष्ठ सं0-221 (2) वा.रा.2/37/4,6 (3) जानकी जीवनम् 6/25 (4) वा.रा.1/18/30,31

मृष्टमन्नमुपानीतम स्नाति न हि तं बिना।
यदा हि ह्यमारुढो मृगयां याति राघवः।।

राम का यह भ्रातृ प्रेम लक्ष्मण मूर्च्छा के समय चरम रूप में दिखाई देता है-

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पंचत्यापन्नः सुमित्रा नन्दवर्धनः।।[1]

तात्पर्य यह कि वाल्मीकि रामायण में राम के भ्रातृ प्रेम के सुख-दुःखात्मक पक्षों का चित्रांकन कवि ने व्यापक चित्रफलक पर किया है जबकि जानकी जीवनम् में यह चित्रण घटनाओं के माध्यम से परोक्ष प्रणाली द्वारा मात्र सुख पक्ष को ही केन्द्र में रखकर चित्रित किया गया है।

मातृ भक्ति

राम की मातृ विषयक निष्ठा पूज्य भाव से आगे चलकर भक्ति की सीमा का स्पर्श करने लगती है। वनवास प्रकरण में राम को कौशल्या की सर्वाधिक चिन्ता थी। यौवराज्याभिषेक की चर्चा सुन वह माता से इसकी सूचना देते हैं इसी प्रकार वनवास का आदेश सुनकर दुखिता कौशल्या का धैर्य बंधाते हुये राम कहते हैं-

स स्वभाव विनीतश्च गौरवाच्च तथानतः।
प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे।।[2]

दण्डकारण्य प्रवास में राम अपनी माता की चिन्ता में अनेक वार अश्रुपात करते हुये चित्रित किये गये हैं। तात्पर्य यह है कि राम एक आदर्श पुत्र थे वह स्वयं कहते हैं कि जान या अन्जान में उन्होंने माता-पिता की अवज्ञा नहीं की-

न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्।।[3]

आदर्श पति

कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये तो राम आदर्श पति रूप में चित्रित हुये हैं। जिन अपवादों की चर्चा की जा सकती है उनमें सीता की अग्नि परीक्षा और निर्वासन है। रामकथा के विद्वानों ने सीता-निर्वासन को प्रक्षिप्त अंश कहा है अतः यदि सत्य भी मान ले तो इस कृत्य का एक दूसरा पक्ष मर्यादा का दिखाई पड़ता है क्योंकि यदि वास्तव में राम सीता को

(1) वा.रा.6/49/7 (2) वही 2/20/26 (3) वा.रा.2/22/8

पतिता मानते तो पुर्नविवाह की समस्या उनके सामने नहीं थी; वस्तुतः अतिशय प्रेम के कारण ही वह एक पत्नीव्रत का निर्वाह कर सके हैं इसीलिये यह प्रसंग लोकरंजन सामाजिक मर्यादा के कारण न्याय पक्ष कुछ दबा अवश्य प्रतीत होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राम के इस रूप की व्याख्या परवर्ती सम्पूर्ण रामकाव्य में इसी रूप में मिलती है। राम के पत्निप्रेम की नींव में सीता के प्रति प्रारम्भिक आकर्षक, पूर्वराग आगे चलकर दाम्पत्य जीवन की सुदृढ भित्ति का कार्य करता है। जानकी जीवनम् में ऐसे पूर्वराग का मादक, मांसल, हृदयावर्धक चित्रांकन किया गया है।

मनोविज्ञान के पण्डित फ्रायड ने यह प्रतिपादित किया है कि,"विवाह पूर्व की प्राक्क्रीड़ाएँ आगे दोनों के प्रेम को प्रागाढ़ करने में सहायक होती है। सम्भवतः परिवेशगत भिन्नता के कारण ही वाल्मीकि ने साहचर्य जनित दाम्पत्य प्रेम की आकर्षक झांकी प्रस्तुत की है तो राजेन्द्र मिश्र ने इसकी पूर्वपीठिका में पूर्वराग को चित्रित किया है। पुष्प वाटिका में सद्यः किशोरी सीता के देहयष्टि, आंगिक, लावण्य से अभिभूत राम का आकर्षण काम की सीमा में पहुँच गया था यद्यपि विवेक का अंकुश वहाँ छूट नहीं गया। आकर्षण जनित आनन्द का चित्रांकन राजेन्द्र मिश्र ने इस प्रकार किया है–

किमु निपीय दृशैव सुवासिनीं जनकजामपि लक्ष्मण! साम्प्रतम्।
स्मृतभवान्तरसंगत बन्धनोऽयमध्यद्य मनोभवमाश्रये।।[1]

काम की सीमा में पहुँचा हुआ वह यौवन उन्माद इस प्रकार चित्रित है–

गणनयोडुगणस्य निशीयिनी दिनमपि स्मरगोपनया मया।
किमपरं निखिलं श्वसन क्षणं त्वदभिमन्त्रित यैव तृषोह्यते।।[2]

विवाह के पश्चात सीता राम के दाम्पत्य प्रेम की झांकी भी जानकी जीवनम् में अंकित है। पत्नी का सामीप्य प्राप्त करने के लिये राम के अनेक बहाने कवि ने व्यंजित किया है–

इति प्रियोपलब्धा सा मुधैवालीक भाषिणा।
मात्रादेश वशात्सीता जानन्त्यपि प्रिय श्रमम्।।[3]
कदाचिदुत्थिता यावच्छयनीयमुपाययौ।
तावदेव समाश्लिष्टा निदर्य दयितेन सा।।

(1) जा.जी.6/26 (2) वही 6/53 (3) वही 9/52,53

यह प्राथमिक अनुराग पारिवारिक परिवेश में प्रौढ़ तो अवश्य हुआ किन्तु इसकी दृढ़ता वनवास काल विशेष रूप से चित्रकूट दण्डकारण्य में पुष्ट हुआ है। सीता-राम की श्रंगारिक विहार और विलास के अनेक चित्र जानकी जीवन में मिलते हैं। यह एकान्तिक प्रेम शूर्पणखा के आगमन और रति याचना जैसे विपरीत भावों से अपने चरमरूप एकनिष्ठा व्यंजित करता है-

कृतदारोऽस्मि् भवति भार्येयं दयिता मम।
त्वाद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा स सपत्नता।।[1]

पश्य मे दयितां न तां विनतां विहाय स्वीकरोमि परामयं खलु मेऽस्ति धर्मः।
गच्छ सुन्दरि! सोदरं वनिता विहीनं त्वामसौ रमयेत्पुरन्ध्रिमनोमनोज्ञ।।[2]

आदर्श मित्र

रामकथा नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की कथा है। राम के पुत्र, भ्रातृ, पति आदि रूपों के साथ ही सख्य भाव भी अपने चरम रूप में दिखाई देता है। निषाद राज गुह, हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवान, विभीषण आदि पात्र इस भाव के निदर्शन हैं। निषाद से भेटकर उसके आतिथ्य से अभिभूत राम अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं

भुजम्मिां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।।[3]
दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेष च।।

इसी तरह से सुग्रीव से मित्रता कर उसके दुःख को अपना दुःख माना है-

कृशानुसाक्ष्ये सह तेन मैत्री नियोजिता मारूतिना सुखाय।
संश्रुत्य सुग्रीव विपित्ति हेतुं प्रतिश्रुंत वालिवधाय तेन।।[4]

इस सन्दर्भ में वाल्मीकि ने मित्रता का सैद्धान्तिक आदर्श प्रस्तुत करते हुए लिखा है-

आढ्योवापि दरिद्रो वा दुःखित सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः।।[5]
धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागो वानध।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्।।

सुग्रीव का राज्याभिषेक प्रस्रवण गिरि पर चातुर्मास व्यतीत करते हुये राम कहते हैं

---

(1) वा.रा.3/18/2 (2) जा.जी.11/52 (3) वा.रा.2/50/41-42 (4) जा.जी.13/16 (5) वा.रा.4/8/8-9

कि सुहृद के प्रति सद्भावना, स्नेह के साथ कृतज्ञता आवश्यक है अतः मित्र की यथोचित प्रशंसा और विश्वास से ही कार्य सफलीभूत होता है-

चन्द्रमा रजनीं कुर्यात् प्रभया सौम्य निर्मलाम्।
त्वद्विधो वापि मित्राणां प्रीतिं कुर्यात् परंतप।।[1]
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन्।
त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुर्महसि।।

वस्तुतः कृतज्ञता वह बहुमूल्य वशीकरण मन्त्र है जिससे आबद्ध सुहृद सखा यावज्जीवन मैत्री के अटूट् बन्धन में बंध जाता है। वह अपने प्राणों की चिन्ता न कर मित्र की प्राणपण से सहायता की अभिलाषा रखता है। राम ने वनवास से लौटकर अपने नागरिकों के समक्ष सुग्रीव एवं विभीषण की प्रशंसा ही नहीं की उन्हें रत्नजडित उपहार भी दिये। इस विषय में विभीषण के प्रति राम का दृष्टिकोण सर्वथा सख्य भाव पर आधारित है क्योंकि यदि राम चाहते तो रावण-वध के बाद लंका पर एकाधिकार कर सकते थे जबकि राम ने वह राज्य विभीषण को सौंप दिया था। विभीषण के प्रति पूर्ण विश्वास उसको शरण देकर मंत्री बना लेना राम के सख्य भाव के आदर्श को निरूपित करता है। सेना के विभाजन, रावण के प्रमुख सेनाओं के बलाबल जानने, लक्ष्मण के साथ निकुम्भिला भेजने के लिये सुग्रीव का आमन्त्रण विशेष महत्व रखता है।

पूजितोऽस्मि त्वया वीर साथिव्येन परेण च।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च।।[2]

आदर्श राजा

राम नराकार रूप का एक अन्य चित्र राजा रूप में वाल्मीकि ने चित्रित किया है। सीता-निर्वासन के परश्चात राम रोते-रोते दिन व्यतीत कर दिए, प्रजा का कार्य वन्द हो गया वह कहते हैं-

आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा।
कार्यार्थिनश्च पुरूषाः स्त्रियो वा पुरूषर्षभ।।[3]

---

(1) वा.रा.4/29/3,2 (2) वा.रा.6/121/17 (3) वा.रा.6/53/5,6

पौरकार्माणि यो राजा न करोति दिन दिने।

संवृते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः।।

रामराज्य का आदर्श चित्रांकन वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में समान रूप से हुआ है जहाँ धरित्री रत्नगर्भ, सर्वकामद एवं सुखप्रद रूप में वर्णित है–

स्वर्गायते रत्नागर्भेयं रामराज्य महनीय।

अमरावत्यपि सम्प्रतीयते कृपणा ननु दयनीया।।[1]

आदर्श सेनाध्यक्ष

वाल्मीकि ने लिखा है कि "कार्य की सफलता साधनों से नहीं होती है।" यह उक्ति राम पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। रावण जैसा विश्व विजेता जिसके पास पुष्कल मात्रा में सेना, कोष, दुर्ग, भूमि, अविजित पराक्रम था एकाकी, निस्सहाय, विपन्न राम ने साधारण वानरों की सहायता से उसे पराजित किया है इसमें राम का सेनापतित्व रूप प्रमुख रहा है। भरत के आग्रह को अस्वीकार कर राम ने वन्यजातियों की सेना का संगठन कर खर-दूषण आदि राक्षसों का संहार, सुग्रीव को विश्वास में लेकर विशाल सहायकों की सेना ही नहीं खड़ी की विभीषण को आश्रय देकर लंका के गुप्त रहस्यों को ज्ञात किया और अपनी सेना का ऐसा सुदृढ़ योजनाबद्ध ब्यूह रचना कर युद्ध कौशल प्रदर्शित किया जिससे वह श्रेष्ठ सेनापति सिद्ध हुये हैं। राम ने अपनी सेना के ब्यूह निर्माण हेतु हनुमान से उसके विषय में पूछते हैं–

गुप्तकर्म च लंकाया रक्षसां सदनानि च।

यथासुखं यथावच्च लंकायामसि दृष्टिवान्।।[2]

सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वशा कुशलो ह्यसि।

बलस्य परिणामं च द्वारदुर्ग क्रियामपि।।

इसी प्रकार विभीषण की शरणगति में राम ने आदर्श सेनाध्यक्ष का परिचय दिया वह कहते हैं कि विभीषण को अपने पक्ष में मिला लेना ही युद्धनीति है–

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकांगचि राक्षसः।

पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राहो विभीषणः।।[3]

ब्यूह रचना का एक उदाहरण द्रष्ट्व्य है–

---

(1) जा.जी.2/160 (2) वा.रा.6/3/4,5 (3) वा.रा.6/18/13

शशास कपिसेनां तां बलाददाय वीर्यवान्।
अंगद सह नीलेन तिष्ठेनदुरसि दुजर्यः।।[1]
तिष्ठेद वानरवाहिन्या वानरौघ समावृतः।
आश्रितो दक्षिणं पार्श्वभृषभोनाम वानरः।।

विभीषण भी राम को ब्यूहबद्ध करने की मन्त्रणा देते हैं–

तद्भवांश्चतुरंगेण बलेन महता वृतम्।
ब्यूह्योदं वानरानीकं निर्मयिष्यसि रावणम्।।[2]

इस ब्यूहबद्ध रुप में खड़ी सेना की शक्ति ही नहीं बढ़ती विपक्ष का मनोबल भी टूट जाता है इसे राम भली प्रकार से जानते थे–

आवृतः स गिरिः सर्वेस्तैः समन्तात् पल्वंगमैः।
आयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत।।[3]
वानरैर्बलवाद्भश्चबभूव द्रुम पाणिभीः।
सर्वतः संवृता लंका दुष्प्रवेशापि वायुना।।

हत मनोबल के कारण प्रजा में कैसी संयमहीनता आ जाती है जानकी जीवनम् में इसका उदाहरण इस प्रकार मिलता है–

विलोक्य नगरग्रहोच्चलित पौरर्धर्यध्वजं।
दिदेश कित रावणो दनुज यूथपान सत्वरम्।।[4]

तात्पर्य यह है कि समूहबद्ध युद्ध, वैयक्तिक युद्ध, नगर विध्वंस से सामान्य जनता में भय उत्पन्न करना इसके पूर्व अपना वर्चस्व दिखाने के लिये शान्तिदूत भेजना, परिस्थिति वशात् स्वसेना में हतासा या निराशा के कारण को दूर करने के लिये विशिष्ट अस्त्रों का प्रयोग, सेना में आये हुये तात्कालिक व्यवधानों को अपनी प्रत्युत्पन्नमति से उन्हें नष्ट कर सेना को धैर्य बंधाये रहना राम जैसे आदर्श सेनाध्यक्ष का ही काम था इसीलिये सुदर अन्जान, अपरिचित देश में अस्त्र-शस्त्रहीन निर्बल विजातियों की सहायता से विश्वविजेता रावण का समूल उच्छेद करना राम जैसे असाधारण साहस सम्पन्न रणविधा विशारद सेनाध्यक्ष के कारण ही हो सकता था।

---

(1) वही 6/24/14,15 (2) वही 6/37/24 (3) वही 6/41/52,53 (4) जा.जी.14/39 9

भगवान अथवा अवतारी रूप में राम

वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में महद् चरित्र की चर्चा की गयी जिसका विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामान्य पात्र से विकसित होकर व्यक्तित्व बनता है और यही व्यक्तित्व महापुरूषों का रूप धारण कर महद् चरित्र हो जाता है। राम महामानव पुरूषोत्तम से विकसित होकर विष्णु रूप में चित्रित किये गये हैं जिसका विकास अन्य भारतीय भाषाओं में ब्रह्म के रूप में पर्यवसित हुआ है।

राम चरित्र के नराकार रूप की व्याख्या करते हुये उसमें अनन्त शक्ति, शील, सौन्दर्य के साथ मानवी रूपों का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ वाल्मीकि रामायण में उन स्थलों की भी परीक्षा की जा रही है जिन स्थलों पर उन्हें विष्णु या उससे अधिक शक्तिमान कहा गया है, यद्यपि रामकथा समीक्षकों ने उन स्थलों को प्रक्षिप्त कहा है फिर भी इन स्थलों के साथ कुछ प्रामाणिक श्लोक भी रामायण में उपलब्ध है जहाँ राम को विष्णु माना गया है-

वाल्मीकि रामायण के अनेक अंशों में विष्णु के साथ राम की तुलना की गई है-

विष्णुना सदृशो वीर्य सोमवत्प्रियदर्शनः।[1]

अन्य स्थलों में पुत्रेष्टि यज्ञ, शरभंग ऋषि के आश्रम, मेघनाद के नागपाश मोचन और राम-रावण युद्ध के समय इन्द्र द्वारा रथ भेजने के प्रसंग इस बात के प्रतीक हैं कि राम में ईश्वरीय अंश की परिकल्पना प्रारम्भ हो गयी थी यदि वह विष्णु के अवतार नहीं, समकक्ष नहीं तो उनमें देवत्व विकास की आरम्भ हो गया था जैसा कि कुम्भकर्ण, रावण वधादि में देवताओं द्वारा पुष्पवर्षा और जयकार ध्वनि इसके प्रमाण हैं-

तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं,
विरावणं रावणमुग्रपौरूषम्।[2]
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं,
सुरेन्द्रगुप्तं गत दोष कल्मषम्।।

इन स्थलों की यदि विधिवत् परीक्षा कर देखा जाये तो ज्ञात होगा कि राम का व्यक्तित्व विष्णु से कुछ श्रेष्ठ ही दिखाई देता है, क्योंकि विष्णु सजातीय देवताओं की रक्षा के लिये न्याय-अन्याय नहीं देखते जवकि राम के चरित्र में ऐसे अनेक स्थल हैं विष्णु रूप राम ऋषि,

---

(1) वा.रा.1/1/17/1 (2) वही 1/15/34

मुनि, ब्राह्मण, रजक के ही उद्धारक नहीं अपितु शापग्रस्त व्यक्तियों के भी उद्धारक हैं अहिल्या, विराध, कबन्ध, इसके उदाहरण हैं। अतः आदर्श मानव राम के साथ विष्णु चरित्र का सांमजस्य अधिक उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि परवर्ती काल में विष्णु जिन रूपों में चित्रित हैं राम का चरित्र उससे ऊँचा ही ठहरता है।

यहाँ यह प्रश्न समीचीन प्रतीत होता है कि वाल्मीकि रामायण में राम के जिस चरित्र की उपस्थापना की गयी है वह विष्णु से अधिक श्रेष्ठ है? वाल्मीकि ने राम को त्रिदशपुंगव, सुरोत्तम, सर्वलोकनमस्कृत, महायोगी, परमात्मा, सनातन जैसे विशेषणों का उपयोग किया गया है–

"एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगव।"[1]

जानकी जीवनम् में राम के धीरोदात्त रूप की प्रतिष्ठा है जिसमें लालित्य प्रमुख हैं फिर भी–

एवामुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमत्ययम्।
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे।।[2]

यत्र-तत्र राम के अवतार की चर्चा हुई है कि कवि की मान्यता हैं कि जिस प्रकार नारायण की चिर सहचरी लक्ष्मी सीता रूप में अवतरित हुई उसी प्रकार कामदेव सदृश्य मनोज्ञ अजानुबाहु राम विष्णु के अवतारी हैं–

रामोऽभिरामचरितो मदनांगयष्टि,
स्त्वाजानुबाहुररविन्द विलोचनोऽसौं।[3]
सा आत्स्वयं निखिललोकपतिर्मुरारि,
वंशे रघोरवततार किलाध्ययोध्यम्।।

आशय यह है कि वाल्मीकि द्वारा निरूपित राम चरित्र में ईश्वर की झलक दिखाई देती है जवकि हम सृष्टि में समस्त गुणों का केन्द्रीयभूत रूप किसी एक व्यक्ति में आरोपित करते हैं तब वह व्यक्तित्व ब्रह्म के समकक्ष हो जाता है। वाल्मीकि ने इसीलिये महापुरूष का उदात्तीकरण कर ईश्वर से आगे बढ़कर परब्रह्म रूप में राम की प्रतिष्ठा अप्रत्यक्ष रूप में की गई है। महातेज, समदर्शी, सत्यवाक, आर्तानाम, संश्रय, सर्वगुणोपेत उनकी

---

(1) वा.रा.1/1/26/1 (2) वही 1/16.3 (3) जा.जी.4/2

सर्वशक्तिमयता; शरण्यता, भक्ति वत्सलता आदि गुण परब्रह्म सूचक हैं।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि रामायण और जानकी जीवनम् के राम महामानव, पूर्ण पुरूषोत्तम से विकसित होकर विष्णुत्व और व्रह्मत्व रूप में पर्यवसित हैं। दोनों काव्यों के राम आदर्शवादी केन्द्रीय पात्र हैं, दोनों के चरित्र में दृष्टिकोण अन्तर अवश्य हैं वाल्मीकि के राम में वीरता, तेजोदृप्त रूप का प्रामुख्य है जो यथार्थ और आदर्श का समन्वय है तो जानकी जीवनम् के राम में लालित्य, सौन्दर्य, सौकुमार्य तथा आदर्श की प्रबलता है।

2. दशरथ

वाल्मीकि रामायण में दशरथ का चरित्र विचित्र विरोधाभास से अंकित हुआ है। उनके नाम में प्रतीकात्मकता दिखाई देती है। दशरथ या दस इन्द्रियों से युक्त इसी अन्तर्विरोध का द्योतक उनकी कथा कराती है। डा0 राजूरकर ने लिखा है–

"रामकथा में दशरथ का चरित्र बहुत अधिक जटिल एवं संक्षिप्त समझा जाता है, क्योंकि मूलकथा में उनके चरित्रगत अन्तर्विरोध असंगतियाँ दिखाई देती हैं। सत्य–प्रेम, पुत्र–प्रेम, पत्नी–प्रेम में मग्न किन्तु किंकर्त्तव्यविमूढ दशरथ का भावुक हृदयस्पर्शी चित्र हमारे सामने अधिक स्पष्ट रूप में आता है। इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की अवस्था में भी दयनीय, भावुक दशरथ विवश होकर कर्त्तव्य कठोर बनता सा दिखाई देता है।"[1]

इस अन्तर्विरोध के कारणों की चर्चा करते हुये डा0 रामप्रकाश अग्रवाल ने लिखा है–"प्रथम तो यह असंगति मूल कथा में विद्यमान है द्वितीय कथागायक पक्षपात वश या कथात्मक अस्पष्टता के कारण बचकर निकलते हुये दिखाई देते हैं, तीसरा कारण स्वयं जनता और आलोचक की अपनी अभिरूचि और मनः स्थिति है।"[2]

दशरथ राम के पिता, अपने परिवार के मुखिया, तीन पत्नी चार पुत्रों के परिवार से युक्त हैं। वृद्धावस्था में उन्हें पुत्र प्राप्त हुये थें अतः पुत्र मोह स्वाभाविक था। राम उन्हें सर्वाधिक प्रिय थे। इस द्वन्द्व में वह शीघ्र ही राम को राजा वनाना चाहते थे, किन्तु सत्यरक्षा में बंधकर उन्हें अपने प्राण गंवाने पड़े। उनके चरित्र का पूर्व पक्ष अत्यन्त उज्ज्वल रहा है। वाल्मीकि ने दशरथ का परिचय देते हुये लिखा है–"कि धर्न और न्याय के बल से राष्ट्र की वृद्धि करने वाले दशरथ ने अयोध्या को सजाया वे प्रजा–पालक, कलाप्रिय, आदर्श प्रजारक्षक,

(1) रामकथा के पात्र, डा0भा0रा0रजूरकर पृष्ठ सं0–285 (2) वाल्मीकि और तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन–डा0 राम प्रकाश अग्रवाल पृष्ठ सं0–178

कर्त्तव्यनिरत राजा के रूप में चित्रित हैं-

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसंग्रहः।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः।।[1]
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी।
महर्षि कल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।
बलवान् निहतामित्रो मित्रवान् जितेतेन्द्रियः।
धनैश्च संचयैश्चाऽन्यैः शक्रवैश्रवणोपमः।।
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता।।

इस प्रकार वेदवेत्ता, संग्रहकर्ता, दूरदर्शी, तेजस्वी, यज्ञ परायण, दिव्य गुणोपेत राजर्षि जितेन्द्रिय, आजादशत्रु, लोक रंजक सत्कारकर्ता, विनम्र, अपरिमेय पराक्रमी रूप में दशरथ का चित्रण किया गया है-

दाक्षिण्यभावललिता मम चित्तवृत्ति-
दैवे गुरौ पितरि यत् कलितावकाश।[2]
यद्वाऽतिथिप्रणयपारणमस्ति हार्द;
भृव्यायितस्य मम सेवनदर्पितस्य।।

दोनो काव्यों में राम के वियोग में देह त्यागने का उल्लेख समान रूप से हुआ है। इस प्रकार दशरथ के चरित्र के सम्बन्ध में तीन बातें कही जा सकती हैं प्रथम वे सत्यसन्ध थे दूसरे राम के प्रति उनका मोह था तीसरा उनका कैकेयी प्रेम दुर्बलता की सीमा को स्पर्श करता है। इस प्रकार दशरथ के चरित्र में दो आदर्शात्मक तत्व और एक दुर्बलता का पक्ष है। दोनो कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनका उल्लेख किया है। वात यह है कि वृद्धावस्था प्राप्त होने पर यज्ञोपरान्त चार पुत्रों की प्राप्ति हुई अतः पुत्र प्रेम स्वाभाविक ही है। वह पुत्र प्रेम दशरथ को रजोगुणी बनाता है। सत्य प्रेम के विषय में यह कहा जा सकता है कि दशरथ रघु, अज की वंश परम्परा थे जिनकी सत्यनिष्ठा विश्रुत ही रही है यह गुण उनमें सत्वगुण का बोधक है। तामसिक या कामुकता कैकेयी के कारण उनमें आयी।

---

(1) वाल्मीकि रामायण 1/6/1-4 (2) जानकी जीवनम् 4/12

यौवराज्य प्रसंग की अन्तिम निशा में वासनाभिभूत हो वह कैकेयी के पास पहुँचते हैं और स्त्रैण की भांति कैकेयी को मनाने का प्रयास करते हैं। जानकी जीवनम् में लिखा है-

अथाद्यैव ते कामनां पूरयिष्ये पणीकृत्य यज्जीवितंचापि देवि।
प्रमाणं तदेवास्तु मे त्वत्परस्य स्वभाङ्क्षितं प्रस्फुटं ब्रूहि राज्ञि!!।।[1]

वाल्मीकि रामायण में दशरथ की विवाहिता स्त्रियों की संख्या तीन सौ पचास थी ऐसी दशा में केकेय नरेश का दौहित्र हेतु राजा बनाने की शर्त स्वाभाविक ही थी किन्तु दशरथ उसे भूल गये इसीलिये भरत को ननिहाल भेजना, अभिषेक में त्वरा, मिथेलश और केकेय नरेश को निमन्त्रण न भेजना उनके चरित्र की विसंगतियाँ दिखाई देती है। इसीलिये उन्होंने राम से कहा कि भरत के लौटने से पूर्व वह युवराज बन जाए। कैकेयी से मन्त्रणा नहीं की जबकि यह सूचना कौशल्या और सुमित्रा को मिल गयी थी। वह राम से कहते हैं जब तक भरत नगर से बाहर है इसी बीच तुम्हारा अभिषेक उचित प्रतीत होता है क्योंकि शुभ कार्यो में बहुत से विघ्न सम्भावित होते हैं-

भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि।
विप्रोषितश्च भरतो यावदेय पुरादितः।।[2]

इसी कामुकता पर लक्ष्मण ने भी वन-गमन प्रसंग पर आक्षेप किया था-

अनाथश्च हि वृद्धश्च मया चैव बिना कृतः।
किं करिष्यति कामात्मा कैकेय्या वशमागतः।।[3]
इदं व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम्।
काम एवार्थधर्माभ्यां गरीयानिति में मतिः।।
अर्थ धर्मो परित्यज्य यः काममनुवर्तते।
एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा।।

वाल्मीकि रामायण में दशरथ चरित्र की विसंगतियों पर काफी प्रकाश डाला है किन्तु उनके पक्ष की सबसे बड़ी बात यह दिखाई देती है यदि दशरथ सचमुच भरत और कैकेयी से छल कर रहे थे तो वे कोप भवन में रुष्ठ कैकेयी को मनाते समय दो वरों को देने की बात सरलता से राम की सौगन्ध खाकर क्यों तत्पर हो गये। जब सचिव, सभा परिषद और

(1) जानकी जीवनम् 10/60 (2) वा.रा.2/4/24-25 (3) वही 2/53/8,9,13

जनमत का उन्हें पूर्ण समर्थन प्राप्त था। भरत के प्रति वह विश्वस्त थे उन्होंने निश्छलतापूर्वक कैकेयी को वर देने में तत्परता दिखाई इससे पता लगता है कि वे कैकेयी के साथ छल नहीं कर रहे थे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम इतना अवश्य कह सकते है कि काम में लगभग असत्य पुरुष युवा पत्नी के प्रेम में नवीनता लाने के लिये दशरथ आकस्मिक रूप से राम-अभिषेक की सूचना दे कैकेयी से नूतन रति की याचना कर मन ही मन प्रसन्न होने का अनुभव करना चाहते थे, जैसाकि वाल्मीकि में कोपभवन में प्रवेश करते समय दशरथ की मनःस्थिति का उल्लेख किया गया है-

अद्य रामाभिषको वै प्रसिद्ध इति जज्ञिवान्।
प्रियार्हो प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी।।[1]
स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः।
पाण्डुराभ्रमिवाकाशं राहुयुक्तं निशाकरः।।
स काम बल संयुक्तो रत्यर्थी मनुजाधिपः।
अपश्यन् दयितां भार्यां प्रपच्छ विषसाद च।।

दशरथ के चरित्र की व्याख्या करते हुये डा0 राम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है-"दशरथ का चरित्र तम से रज और रज से सत् की ओर बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है, अतः यह भी आदर्श चरित्र है। कैकेयी से अधिक उन्हें राम प्रिय थे अतः राम के लिये उन्होंने कैकेयी का सदैव के लिये परित्याग कर दिया, राम से अधिक उन्हें सत्य प्रिय था अतः सत्य के लिये उन्होंने राम का परित्याग कर दिया। उन्होंने अपना बलिदान राम के लिये नहीं वरन् सत्य के लिये किया, वह चाहते तो राम को रोक सकते थे परन्तु तब सत्य चला जाता, उन्होंने राम को नहीं रोका प्राणों का जाने दिया और सत्य की रक्षा की यही उनका आदर्श है।"[2]

जानकी जीवनम् में दशरथ का पुत्र प्रेम और कामुकता का ही उल्लेख है, उनके चरित्रगत विशेषताओं का विवरण अप्राप्त है।

3. भरत

रामकथा में पूर्णतया पूत आदर्श का प्रतीक यदि कोई पात्र है तो वह भरत है। प्रो0 दिनेशचन्द्र सेन ने कहा है कि-"भरत का चरित्र सवसे अधिक निर्दोष है।"[3] भरत

---

(1) वा.रा.2/10/10,11,17 (2) वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन-डा0 राम प्रकाश अग्रवाल पृष्ठ-170
(3) रामायणी कथा-प्रो0 दिनेशचन्द्र सेन पृष्ठ-135

शुद्ध अन्तःकरणवादी पात्र है। वाल्मीकि रामायण में जन्म के समय उनका परिचय इस प्रकार दिया है–

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षात् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वेः समुदितो गुणैः।।[1]

बाल्यकाल से वह राम के साथ रहे, विवाहोपरान्त वह ननिहाल गये इसके बाद ही उनके चरित्र का विकास न भूतो न भविष्यति के रूप में हुआ। राम वनगमन के समय भरत के चरित्र के सम्बन्ध में अनेक मान्यतायें सामने आयी हैं। दशरथ की दृष्टि में वह धार्मिक है, तो कौशल्या उन्हें सत्यप्रतिज्ञ कहती है। निषाद भी उनके प्रति शंका करता है वस्तुतः वाल्मीकि ने इन सारे मनोभावों को बताकर दशरथ के चरित्र को आदर्श रूप में उपस्थित करने की पूर्व पीठिका प्रस्तुत की है। मामा के यहाँ से लौटकर भरत राम के बिना राज्य लेना स्वीकार ही नहीं करते वह माँ से कहते हैं–

यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च।
नृशंसे पाप संकल्पे क्षुद्रे दुष्कृतकारिणा।।[2]
किं नु दुःखमलीकं वा मयि रामे च पश्यसि।
न कथं चिदृते रामाद् भरतो राज्ययावसेत।।

भरत के चरित्र में भ्रातृ प्रेम–केन्द्र में है इसीलिये वे अपनी माँ पर कटुक्तियाँ करते हैं, उसे पापदर्शिनी, कुलघातिनी कहकर उसकी हत्या करने की बात भी वह कहते हैं। वे कैकेयी को धिक्कारते हुये कहते हैं–

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्ट चारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।।[3]

यह आक्रोश इतना तीव्रतर है कि मातृ–भर्त्सना में अमर्यादा का प्रवेश हो गया है। विश्लेषण करके देखें तो एक ओर यह भरत की दुर्बलता दिखाई देगी तो दूसरी ओर उनकी भ्रातृ–भक्ति की चरम पराकाष्ठा भी। माँ के लिये इस प्रकार के शब्द वहुत अच्छे नहीं कहे जा सकते हैं–

भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्थ विनाशनात्।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तान सलोकताम्।।[4]

---

(1) वाल्मीकि रामायण 1/18/13 (2) वही 2/12/60-61 (3) वा.रा.2/78/22 (4) वा.रा.2/74/4-6

यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं धोरेण कर्मणा।

सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम्।।

त्वत्कृते में पिता वृत्तोरामश्चारण्यमाश्रितः।

आयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः।।

भरत कौशल्या के समक्ष अपने हृदय की निष्कपटता व्यक्त करने के लिये अनेक प्रकार की सौगन्ध खाते हैं।

एव माश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात् ह।

विहीनां पति पुत्राभ्यां कौशल्यां पार्थिवात्मजः।।[1]

तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानम्।

भरतं शोक संतप्तं कौशल्या वाक्यम् ब्रवीत।।

इस प्रकार भरत शोक सागर में डूबते भ्रातृ प्रेम कारण उतराते कर्त्तव्य नौका पर सुदृढ़ रूपेण आरुढ़ होकर पुत्रोचित अन्त्येष्टि संस्कार आदि से निवृत्त होकर नीति पथ पर अग्रसर होते हैं। वे राम को मनाने के लिये प्रजाजनों, नागरिकों के साथ चित्रकूट पहुँचते हैं–

आगतो भरत्स्ततो विनतोऽश्रुसिक्तः संगतः गुरुपौरजानपदैश्च सर्वेण।

प्रार्थयां स चकार वंशपरम्पराया रक्षणाय निवेद्यतातमहाप्रयाणम्।।[2]

भरत का चरित्र सोने से अधिक उत्तम वर्ग का है, सुवर्ण को एक बार ही अग्नि में पड़कर अपनी परीक्षा देनी पड़ती है जबकि भरत को यह परीक्षा तीन वार देनी पड़ी निषाद, भरद्वाज, और भाई लक्ष्मण। तीनों परीक्षाओं में उन्हें व्यंग्य बाण सहने पड़े कलंक कालिमा के कारागार में डाल उन्हें धुएँ से भी दम घोंट कर मारने का प्रयास हुआ किन्तु भ्रातृत्व प्रेम के प्रति अनन्य निष्ठा से वे सकुशल निर्दोष होकर ग्रहण के पश्चात मोक्ष प्राप्त ज्योत्स्ना की तरह निष्कलंक निकल आये। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है निपाद राज भरत के प्रति अपनी शंका प्रस्तुत करते हुये कहता है–

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणाः।

इयं ते महती सेना शंका जनयतीव मे।।[3]

सतत्, सतर्क, सचेष्ट निषाद राज भरत को सरल, स्निग्ध निष्कपटं रूप में पाते हैं।

---

(1) वही 2/75/59-60 (2) जानकी जीवनम् 11/35 (3) वाल्मीकि रामायण 2/25/7

भरत का दूसरा रूप ग्लानि एवं दैन्य का है। मनोवैज्ञानिकों ने वताया है कि जो कर्म हम सम्पादित भी न करें किन्तु परिस्थितिवशात येन केन प्रकारेण यदि हमारा उससे सम्बन्ध बन गया है तो जनसामान्य हमें बुरा समझता होगा इस कल्पना से मन में जो लज्जा का भाव उत्पन्न होता है वही ग्लानि है। भरत के आचरण को देखकर पुरवासियों सहित सबकी शंका निर्मूल सिद्ध हुई जबकि भरत के मन में सात्विक ग्लानि में परिवर्तित होकर उसे सर्वश्रेष्ठ चरित्र रूप में उपस्थित करती है। ग्लानि पीड़ित हृदय लिये भरत चित्रकूट में राम के समक्ष जिस दैन्य एवं अरन्तुद भावना को व्यक्त करते हैं वह भावोदधि की श्रेष्ठ लहर ही नहीं वरन् उससे निकला हुआ हीरक मणि है जिसकी प्रभा से चित्रकूट का सारा प्रदेश उज्ज्वल हो गया, धर्म की ज्योति ऐसी फूटी कि जड़ चेतन भी उस आभा से प्रकाशित हो उठा है।

डा0 विद्या मिश्रा ने लिखा है, "भरत के रूप में प्रेमबिन्दु में आगाध सिन्धु का दर्शन हमें चित्रकूट सभा में होता है जहाँ अटल एवं अचल बुद्धि युक्त महान् व्यक्ति भी उस सिन्धु की सरल, स्निग्ध, वचन वीचियाँ में निमग्न होने में अपना परम कल्याण मानकर उसी में आत्मविभोर ही उठते हैं। धर्मनिष्ठ, कर्तव्य परायण भरत का चरित्र सर्वत्र खरा उतरा है।"[1]

4. लक्ष्मण

कथा, व्यवहार, धर्म, दर्शन और नीति की दृष्टि से लक्ष्मण और राम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। राम आदर्श, धार्मिक धीरोदात्त नायक है तो लक्ष्मण धीरोद्धत नायक के प्रतिरूप कहे जा सकते हैं। लक्ष्मण के बिना राम के चरित्र की आदर्शमयता, उदात्तता, कर्तव्यपरायणता अधूरी प्रतीत होती है। लक्ष्मण राम के अनन्य सहचर, विश्वस्त सेवक रूप में चित्रित हुये हैं। यहाँ हम उनके वाह्य सौन्दर्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

कुछ आलोचकों ने उनमें उग्रता को केन्द्रीय तत्व मानकर उन्हें द्वितीय कोटि का या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उच्चांहम का प्रतीक माना है।

लक्ष्मण का सौन्दर्य

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण के अलंकृत सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

(1) वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ-430

बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो वर्धनः।
ते यदा ज्ञान सम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः।।[1]
ह्री मन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः।।
तेषामेव प्रभावाणां सर्वेषां दीप्ततेजसाम्।।
पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा।।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासांगिक नहीं होगा कि रूप सौन्दर्य में राम-लक्ष्मण समान थे उनके सौन्दर्य का वर्णन वनवास प्रसंग में पंचवटी प्रसंग तथा युद्धकाण्ड में अनेक बार हुआ है। सीता स्वयं लक्ष्मण के सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहती है कि,''अनुराग, रूप, सद्गुण की दृष्टि से लक्ष्मण राम के अनुरूप हैं, देह कान्ति में वह सुवर्ण छवि वाले हैं-

भ्राता चास्य च वेमात्रः सौमित्रिरमित प्रभः।[2]
अनुरागेण, रूपेण गुणैश्चापि तथाविधिः।।
स सुवर्णच्छवि श्रीमान् रामः श्यामो महायशः।।

जानकी जीवनम् में भी लक्ष्मण की देहकान्ति, आंगिक सौष्ठव का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

नवनीलबलाहप्रभं शरदभ्रद्युतिदारकद्वयम्।
हृतचित्तमनंगमन्दिरं स दृशोः प्राघुणिकी चकार तत्।।[3]

लक्ष्मण का शील-स्वभाव एवं शक्ति

भक्ति के आचार्यों ने ब्रह्म में अनन्त सौन्दर्य-शील और शक्ति का उल्लेख किया है। देहधारी मानव के लिये शान्त शक्ति और सौन्दर्य उसके चरित्र के उत्तम निदर्शन माने जा सकते हैं। वस्तुतः शील, स्वभाव और शक्ति तीनों ऐसे आन्तरिक गुण हैं जिनसे परिचालित होकर व्यक्ति आचरण और व्यवहार में अच्छा-बुरा बनता है। सीता ने लक्ष्मण के सम्वन्ध में जिन गुणों की चर्चा हनुमान से ही है उसमें शक्ति, शील, सौन्दर्य सम्मिलित तो हैं ही और सबसे वड़ी बात तो यह है कि यह कथन उस स्त्री का जिसने लक्ष्मण को वहुत निकट से देखा है क्योंकि लक्ष्मण उनके सुख : दुःख का अनुगामी रहा है-

स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रियायाश्च वरांगनाः।।[4]

---

(1) वाल्मीकि रामायण 1/18/28,34,35 (2) वही 5/35/22,23/2 (3) जा.जी.31/35 (4) वा.रा.5.38/54-61

ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम्

पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च।।

अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः

आनुकूल्येन धमत्मिा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम्।।

अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन् वने

सिंह स्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शन।।

पितृवद वर्तते रामे भातृवन्यां समाचरत्।

ह्रियमाणां तदावीरों न तु मां वेद लक्षणः।।

वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवांशक्तो न बहुभाषिता।

राजपुत्र प्रिय श्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्थ में।।

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः।

नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुदृहति वीर्यवान्।।

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनु स्मरत्।

स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम।।

लक्ष्मण के शील और शक्ति के कथात्मक निदर्शन आलोच्य दोनों काव्यों में अनेक स्थलों में मिलते हैं। पंचवटी प्रसंग में शूर्पणखा प्रणय निवेदन अस्वीकार करना और युद्ध काण्ड में उनकी शक्ति, युद्ध लाभव, अस्त्र संचालन दक्षता स्थान-स्थान में वर्णित है। वस्तुतः लक्ष्मण के चरित्र के केन्द्रीयभूत दो तत्व सामने आते हैं-भ्रातृ प्रेम और स्वभावगत उग्रता। आलोचकों ने स्वभावगत उग्रता को उनका मूल तत्व-मानकर उन्हें द्वितीय कोटि का चरित्र नायक बताया है मेरी दृष्टि में यह लक्ष्मण के साथ न्याय नहीं है। मनोवैज्ञानिक सम्मत धारणा यह तभी सही होती जब लक्ष्मण राज्य प्राप्त करने के लिये स्वयं लालायित रहते लक्ष्मण की उग्रता के मूल में राज्य प्राप्ति की लालसा नहीं थी भाई के साथ होने वाला अन्याय है अतः लक्ष्मण चरित्र के केन्द्र में भ्रातृभाव को रखकर इन प्रसंगों का विश्लेषण संक्षेप में किया जायेगा। राम का यौवराज्याभिषेक में सर्वाधिक प्रसन्नता लक्ष्मण को थी किन्तु यह अधिक देर टिकी नहीं जैसे ही वनवास की सूचना मिली लक्ष्मण का विवेक उनके हाथ से छूट गया और फिर मनोवैज्ञानिक की धारणा यह कहती है कि,"व्यक्ति का वाक्य संयम ऐसे अवसर पर छूट जाता

है।'' लक्ष्मण ने पिता दशरथ को कामार्त, विषयी, विवेकशून्य कहकर भर्त्सना की है-

विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः स मन्मथः।।[1]
नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम्।
येन निर्वास्यते राष्ट्रात् वनवासाय राघवः।।
तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः।
पुत्रः को हृदये कुर्याद् राजवृत्तमनुस्मरन्।।
यावेदव न जानाति कश्चिदर्शमियं नरः।
तावदेव मया सार्धमात्यस्यं कुरू शासनम्।।
निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये।।

लक्ष्मण की इन उक्ति में उनकी सदासयता का मर्म छिपा है। वह कौशल्या के समक्ष कहते हैं कि उनका राम पर हार्दिक अनुराग है यदि राम वन में जलती हुई आग में प्रवेश करेंगे तो वह उनसे पहले आग में जायेंगे। पुरूषार्थवादी लक्ष्मण कैकेयी की शर्त न होने पर भी अटूट भ्रातृ भक्ति के कारण माँ, पत्नि, राज्य सुख, वैभव का परित्याग कर राम के अनुगामी बने। वनवास प्रकरण में अनेक बार उनकी वचन प्रगल्भता दिखाई पड़ती है। मारीच प्रसंग में मैथिली के आक्षेपों से आहत होकर राम-सीता से अपनी कर्तव्य निष्ठा को प्रमाणित करते हुये कहते हैं-

देवि भूमिसुतेऽन्यथाऽलमिह प्रकल्प्य रक्षणेऽस्मि नियोजितस्तव सोऽहमर्सेः।
दण्डके प्रचरन्ति घोर निशाचरास्ते युक्तमस्ति न हातुमत्रविसाकृतंत्वाम्।।[2]

वाल्मीकि रामायण में शुश्रूषमाण सेवक लक्ष्मण का जो भव्य उदात्त आदर्श चित्र प्रस्तुत किया गया है वह जानकी जीवनम् में अनुपलब्ध है फिर भी सीता हरण, सीता-शोध और युद्ध प्रकरणों में इसकी किंचित पूर्ति जानकी जीवनम् में की गयी है। लक्ष्मण आशुकोपी भी हैं तो राम के सानिध्य में आशुतोषी भी इसीलिये राम ने हँसी में ही सही शूर्पणखा को लक्ष्मण के पास भेजा था। सीता हरण प्रसंग में लक्ष्मण का क्रोध अपने भास्वर रूप में प्रकट हुआ

(1) वा.रा.2/21/3,4,7,8,10 (2) जा.जी.11/81

है। उनके शील का सर्वोत्तम निदर्शन सुग्रीव मैत्री के सन्दर्भ में दिखाई देता है जहाँ सीता के नूपुरो की पहचानने की बात कहकर लक्ष्मण ने भाभी भक्ति का सनुज्जवल रूप प्रस्तुत किया है। कामभिभूत सुग्रीव को जागृत करने के लिये लक्ष्मण का क्रोध मनोविज्ञान की दृष्टि में प्रभविष्णु बन पड़ा है।

आलोच्य दोनों काव्यों में उनकी युद्धकला उनकी दक्षता, नेतृत्व का उल्लेख समान रूप से हुआ है। वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण का अन्त अत्यन्त कारुणिक ढंग से हुआ है जहाँ राम ने उनका परित्याग किया है।

निष्कर्ष यह है कि जानकी जीवन में लक्ष्मण के चरित्र के सभी रूप वर्णित अवश्य हैं किन्तु उसका आधार कथा है जबकि वाल्मीकि रामायण में कथा, कथन और कर्तृत्व की दृष्टि से उनके चरित्र का चित्रांकन हुआ है वह आदर्श भाई, कलाप्रिय, गृहनिर्माता, भाभी के अनन्य भक्त, सत्य प्रिय, श्रेष्ठ शुश्रूषक शुश्रूषमाण अग्र सेवक के रूप में चित्रित हैं। उनका चरित्र यथार्थ और भ्रातृ भक्ति के केन्द्रीयभूत रूप में अभिव्यक्त हुआ है इसीलिये प्रो0 दिनेश चन्द्र ने लिखा है कि,“लक्ष्मण का चरित्र स्वतन्त्र चेता व्यक्तित्व सम्पन्न पात्र का है।”[1]

5. शत्रुघ्न

सम्पूर्ण कथा में शत्रुघ्न चरित्र का स्वयं कोई अस्तित्व नहीं है यद्यपि ये राम परिवार के एक अंग, एक सदस्य के रूप में चित्रित किये गये हैं उन्हें भरत का अनुचर कहा गया है। वाल्मीकि रामायण में अन्य प्रसंगों के सन्दर्भ में शत्रुघ्न की चर्चा है, लवणासुर वध एवं मधुपुरी बसाने के सन्दर्भ में उनकी पराक्रम शीलता, कार्यपटुता, दक्षता का उल्लेख है।

वाल्मीकि के अनुसार शत्रुघ्न लक्ष्मण के सहोदर उन्हीं के समान तेजस्वी, शक्तिशाली और पराक्रमी हैं। राम वनवास प्रसंग में भरत के साथ लौटने पर शत्रुघ्न का क्रोध इस रूप में मुखरित हुआ है–

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्व सम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्।।[2]
वलवान् वीर्य सम्पन्नो लक्ष्मणो नाम मोऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्।।

(1) रामायणी कथा प्रो0 दिनेशचन्द्र जैन पृष्ठ–150 (2) वाल्मीकि रामायण 2/78/2-4

पूर्वमेव तु विग्रहाः समवेक्ष्य नयानयौ।
उत्पथं यः व्समारूढ़ो नार्या राजा वंशंगतः।।

तात्पर्य यह है कि शत्रुघ्न लक्ष्मण की निवीर्यता पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं इस क्रोध ाग्नि में आहुति स्वरुपा मंथरा आ जाती है। वाल्मीकि ने शत्रुघ्न की वीरता, अस्त्र संचालन नैपुण्य लवणासुर वध के समय वर्णित किया है-

एकेषुपातेन भयं निपात्य
लोकत्रयस्यास्थ रघुप्रवीरः।[1]
विनिर्षभावुन्तमचापवाण-
स्तमः प्रगुद्येव सहस्ररश्मिः।।

विवाह के समय शत्रुघ्न का उल्लेख किया है कि उनका विवाह श्रुतकीर्ति से हुआ है जिसे प्राप्त कर वे आह्लादित हुये-

श्रुतकीर्ति माण्डवीमूर्मिलां ब्यूहुस्ततः क्रमेण।
शत्रुघ्न कैकेयी नन्दनः सौमित्रिश्च करेण।।[2]

तात्पर्य यह है कि सीमित व्यक्तित्व रूप में चित्रित शत्रुघ्न भ्रातृप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा और विलक्षण पराक्रम शीलता के प्रतीक हैं वह भरतयुग्म के एक अंश हैं।

6. हनुमान

रामकथा में हनुमान का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने बल, बुद्धि और अद्भुत कृत्यों के कारण हनुमान ज्ञानियों में अग्रगण्य और राम के अनन्य अप्रतिम सेवक ही नही बने मध्यकाल में वह शिव के अवतार और आगे चलकर रामभक्तों के आराध्य वन गये। इस प्रकार उनके विकास की कथा प्रकृति प्रतीकों से लेकर अवतारवाद की अवधारणा से परिपूर्ण है। वह सुग्रीव के सहायक, राम-सुग्रीव की मित्रता के कारक बने हैं।

समुद्रोल्लंघन, सुरसा, लंकिनी आदि बाधाएँ पारकर सीता-शोध, राम का संदेश प्रेषण, वाटिका विध्वंस, रावण-प्रबोध, लंका-दहन, सीता-सन्देश लेकर राम के पास आते हैं। लक्ष्मण मूर्च्छा के समय संजीवनी आनयन और युद्ध के समय आलौकिक कृत्यों का निष्पादन वह करते हैं। उन्होंने ही अयोध्या जाकर राम के आने की पूर्व सूचना भरत को दी और इस प्रकार राम के राज्यारोहण के पश्चात् वह आदर्श रामभक्त रूप में पूजित हुये। उन्हें कपि कुंजर, केशरी किशोर, और पवनपुत्र भी कहा जाता है। यहाँ हम उनके चरित्रगत केन्द्रीय तत्वों का

(1) वही 7/65/39 (2) जा.जी.21/67

उल्लेख एतद् विषयक साम्य-वैषम्य निरूपति करेंगे। रामायण में उनके गुणों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः।।[1]

वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में उनकी उत्पत्ति सूर्य, राहु, ऐरावत् पर आक्रमण, इन्द्र के वज्र के प्रहार से हनु का छोटा होना, विभिन्न देवताओं का वरदान, ऋषियों के शाप से बल की विस्मृति इत्यादि घटनाएँ विन्यस्त हैं। रामकथा में हनुमान का प्रवेश किष्किन्धा काण्ड से होता है, उनके चरित्र के केन्द्रीय रूपों में शक्ति, वुद्धि, सेवा भक्ति प्रमुख है।

हनुमान की शक्ति—रामायण में मुहुर्त भर में समुद्रोल्लंघन,[2] अशोक वाटिका विध्वंस,[3] लंका दहन,[4] हनुमान-रावण युद्ध,[5] कुम्भकर्ण के प्रवल अस्त्रों को केवल हस्त बल चूर-चूर कर डालना,[6] देवान्तक[7] त्रिशिरा,[8] निकुम्भ,[9] आदि प्रमुख राक्षस सेनानियों को वध करना आदि प्रसंग उनके आलौकिक शक्ति के परिचायक हैं। इसी कारण राम[10]-सीता[11] ही उनके शौर्य की प्रशंसा नहीं करते अपितु वानरगण[12] भी उनके आलौकिक शक्तिमयत्ता की प्रशंसा करते हैं। सीता कहती है-

श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परम धार्मिकः।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्।।[13]
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्य विनीत्त्वं नसंशमः।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वध्येव शोभनाः।।

समुद्रोल्लंघन के समय उनके प्रभा भास्कर रूप का प्रभविष्णु वर्णन वाल्मीकि ने किया है-

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्यापिवानलौ।।[14]
पिंगे पिंगाक्षमुख्यस्य वृहती परिमण्डले।
चाक्षुसी संप्रकाशेते चन्द्र सूर्याविव स्थितौ।।
लांगूलचक्रो हनुमाच्छुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः।
व्यारोचन महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्कर।।

---

(1) वा.रा.7/35/3 (2) वही 5/1/137 (3) वही 5/45 (4) वही 5/45,55 (5) वही 6/59 53,69 (6) 6/67/63 (7) वही 6/70/23,26 (8) 6/70/49 (9) 6/77/12,24 (10) 6/1/11 (11) 5 36/8,6 113/24,26 (12) दधिमुख 5/17/12-24 अंगद 5/87/46 जम्बवान 6/74/44 (13) वा.रा.7/13/27,28 (14) वही 5 1/56,57,62

अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने हनुमान के बल विक्रम की चर्चा लंका दहन की पृष्ठभूमि में इस प्रकार किया है-

पथि पथि पृथुचर्चाऽश्रूयतासौ नगर्यां बहलबलनिधिनां मारुतीनां नितान्तमा।
भयविकलपिशाचाः स्वापसौख्यं न जग्मुर्गतवति कपिनाथेऽप्याहितानर्थशंका।।[1]

बुद्धिबल— मनोविज्ञान क्षेत्र में यह धारणा बद्धमूल है कि प्रकृति के संसर्ग में रहने वाले व्यक्ति में अद्‌भुत शक्ति वल होता है तथा उनमें अन्तश्चेतना का विकास अपूर्व ढंग से दिखाई पड़ता है। हनुमान इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है वह शारीरिक शक्ति सम्पन्न होने के साथ ही साथ मानसिक दृढ़ता के श्रेष्ठतम् निदर्शन हैं, राम-लक्ष्मण को आता देख विप्रवेशधारी हनुमान का वाग् विलास एतद्‌विषय की सूचना देता है। किसी के गूढ़ रहस्यों के जानने हेतु उसकी प्रशंसा करना सर्वोत्तम साधन है। भिक्षु हनुमान राम-लक्ष्मण से कहते हुये अपने बुद्धि बल का परिचय देते हैं-

सिंह विप्रेक्षितौ वीरौ महाबल पराक्रमौ।
शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रु नाशनौ।।[2]
श्रीमन्तौ रूप सम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठ विक्रमौ।
हस्तिहस्तोपम भुजौ धृतिमन्तौ नरर्षभौ।।

इसी तरह विद्रोही अंगद को अपने वाचिक सांत्वना से प्रभावित कर हनुमान ने अपनी राजनीति दूरदर्शिता का परिचय दिया है।[3] सुरसा प्रसंग, रावण प्रबोधन आदि ऐसे स्थल हैं जहाँ हनुमान की भेदनीति सफल होती दिखाई देती है। शारीरिक बल और विनम्रता के मिश्रण से जो व्यावहारिक ज्योति जागृति हुई है उसका परिणाम लंका दहन है। राम के पास सीता संदेश कम से कम शब्दों में कहना हनुमान जैसे वाग्मी के लिये ही उचित था जिसमें विपत्ति सागर में डूबती सीता के उद्धार की चर्चा है-

त्वेदकशरणा प्रभो! त्वदनुलीनश्चिन्तान्विति,
स्त्वदङ्‌घ्रियुग वारिजे हृदि निरन्तरं विभ्रती।[4]
श्लथा कुमुदिनीव सा धननिरूद्धचन्द्रातपा,
कथं कथमपि ध्रुवं श्रयति जीनितं जानकी।।

हनुमान के दौत्य कर्म के पीछे वाक् चातुर्थ है। सुग्रीव के लिये राम-लक्ष्मण से भेंट,

---

(1) जा.जी.13/74 (2) वा.रा.4/3/9,10 (3) वही 4/54 (4) जा.जी.14/8

राम के लिये रावण से संवाद, लक्ष्मण के लिये भरत एवं सीता के लिये राम के समक्ष जिन वचनों का प्रयोग हनुमान ने किया है वे उन्हें ज्ञानियों में अग्रगण्य सिद्ध करते हैं। उनकी कूटनीति के कारण ही विभीषण का रामपक्ष में आगमन एक नये विजयी श्री का सन्देश था। इस प्रकार दोनों काव्यों में हनुमान के दौत्य कार्य में वचन विदग्धता, विपत्ति के समय दूरदर्शिता से सबको धैर्य बंधाना हनुमान की मानसिक दृढ़ता, योग्यता का परिचायक है।

हनुमान की सेवा भावना

अवतारवाद के विकास के कारण हनुमान चरित्र में अनन्यता का आरोप हुआ है और वह राम-सीता के ऐसे भक्त सिद्ध हुये हैं जिनके हृदय में आराध्य का निवास वर्णित है। वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में हनुमान के इस देवत्व रूप की अपेक्षा उनके मानवीय रूप की अधिक प्रतिष्ठा है। वह सुग्रीव के सचिव रहे और धीरे-धीरे वह राम के अनन्य सेवक हो गये। राम उनकी सेवाधर्म की प्रशंसा करते हुये कहते हैं-

कृतं हनूमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणी तले।।[1]
यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्तृा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तद्नुरागेण तमाहुः पुरूषोत्तम्।।
यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपते प्रियम्।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्यध्यमं नरम्।।
तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषिता।।

हनुमान के प्रचण्ड प्राक्रम और सेवाभाव से अभिभूत जानकी अपना आशीर्वाद देते हुए कहती है-

बलं वलीयोऽक्षतमस्तु विक्रमोऽक्लमो न ते वैक्लवमेतुमारूते।
प्रवर्धतां राम यशोऽतिमं यशो मदश्रुशुक्लीकृतमेव तेऽनघ।।[2]

तात्पर्य यह है कि सीता अन्वेषण से लकर रावण वध, राम के अयोध्या आगमन एवं राज्यारोहण के पश्चात अनन्यभाव से उनके सेवक बन जाने वाले हनुमान में अप्रतिम शक्ति, साहस, पराक्रमशीलता, दूरदर्शिता, वक्तृत्व, प्रत्युत्पन्न मटित्व जैसे गुण पद-पद पर मिलते हैं।

(1) वा.रा.6/1/2,8,9,10 (2) जा.जी.15/11

विशाल रूप के साथ अणु रूप में परिवर्तित करने वाली गरिमा और लधिमा शक्ति सम्पन्न हनुमान का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त विस्मयकारी और यशस्वी रहा है। उन्होंने अपने सेवाभाव से राम को वशीभूत ही नहीं किया अपितु सेवाधर्म के साक्षात प्रतीक बन गये। उनके मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा दोनों काव्यों में समान रूप से हुई है। विस्तृत चरित्र चित्रण उसकी पृष्ठभूमि में कथा का विशान फलक वाल्मीकि रामायण में प्रस्तुत हुआ है जबकि जानकी जीवनम् में उन्हें पात्र एवं तन्निविष्ठ कुछ गुणों की चर्चा मात्र की गयी है। वह पात्र रूप में ही प्रस्तुत हुये हैं जबकि वाल्मीकि रामायण में उन्हें व्यक्तित्व सम्पन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है क्योंकि वाल्मीकि रामायण में इस हेतु त्रिआयामीय परिस्थिति का उल्लेख है, उनके बाह्य सौन्दर्य विकराल, पर्वताकार, भयंकर रूप, छोटे सरल चपल कोमल भावुक रूप के साथ अनेक सद्गुणों का चित्रांकन सामाजिक, राजनीतिक सुखद दुःखद परिस्थितियों के मध्य हुआ है।

7. विश्वामित्र

राम के हितैषी ऋषिगणों में विश्वामित्र का अप्रतिम स्थान है यद्यपि राम के जीवन में विश्वामित्र का आगमन कुछ ही समय के लिये होता है तथापि वह अपनी चमक, क्रियाशीलता, हितचिन्तन से राम के जीवन को ऐसा संवार जाते हैं जिसकी गूंज बड़ी देर तक सुनाई देती है और उसका परिणाम राम के विवाह के रूप में दिखाई देती है।

पूर्व चरित्र—वाल्मीकि रामायण में गाधि उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में विश्वामित्र की तपस्या, वशिष्ठ एवं कामधेनु प्रसंग में गौ का अपहरण, युद्ध, पराजय, महादेव की तपस्या, वर प्राप्ति, वशिष्ठ से पुनः युद्ध, ब्रह्मदण्ड के समय क्षत्रियत्व की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता, विश्वामित्र का संकल्प, ब्राह्मणत्व प्राप्ति हेतु घोर तप, त्रिशंकु का स्वर्ग प्रेषण, शुनःशेप की रक्षा, महर्षि पद की प्राप्ति, मेनका द्वारा तपोभंग, ब्रह्माशाप, पुनः तप और अन्त में जिस ब्राह्मणत्व की प्राप्ति इन्हें प्राप्त होती है इससे वह राजर्षि जैसे श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त कर सके।[1]

विश्वामित्र के चरित्र को निम्न शीर्षकों में बाँटकर उसका मूल्यांकन किया जा सकता है-

दूरदर्शी ऋषि—विश्वामित्र कठोर व्रत पालन करने वाले ऋषि थे। उन्हें राक्षसों के अत्याचार और आर्य सभ्यता के विनाश की कल्पना पहले से हो गयी अतः वह राम-लक्ष्मण के माध्यम से इस राक्षसी सृष्टि का संहार चाहते थे। इसमें उन्हें किसी बात का सन्देह नहीं था-

(1) वाल्मीकि रामायण 1/24-64

न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान्।
रामस्या राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः।।[1]

जानकी जीवनम् में भी कहा गया है–

प्राप्तस्तथापि यदहं ननु सत्यसन्धां
स्यात्तस्य कोऽपि सुमहान स्पृहणीय हेतुः।[2]
जाती प्रसून विकला यदि माधवे स्था-
न्निश्चप्रचं विजयते गिरिशामि शापः।।

और वह उसमें सफल भी हुये।

युद्धास्त्र के ज्ञाता–विश्वामित्र तपस्वी ऋषि ही नही वरन् वह अस्त्र-शस्त्र संचालन में दक्ष भी थे, क्योंकि उनका अतीत क्षत्रिय वंश से सम्वद्ध है। अनेक युद्धों में उन्होंने विजय श्री को वरण किया है। अनुपलब्ध अस्त्रों को उत्पन्न करने वाले थे। वशिष्ठ ने कहा है–

तानि चास्त्राणि वेत्येष यथावत् कुशिकात्मजः।
अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित्।।[3]

दिव्यास्त्र प्रयोग प्रावीण्य का उल्लेख जानकी जीवनम् में भी हुआ है–

एषोऽस्ति गाधितनयस्स्फुरदूर्ध्वरिता
दिव्यास्त्रयोग कुशलोऽनभिभूततेजाः।[4]
एनं विधाय गुरू गौरव भूरि धाम्ना।
प्रीतं प्रभो! तव सुतौ निशितौ भवेताम्।।

उन्होंने राम-लक्ष्मण को बला, अतिबला दिव्यशक्तियों के साथ विष्णु चक्र, दण्डचक्र, उत्तम ब्रह्मास्त्र, मोदिकी और शिखरी गदायें आदि दी।[5]

राम के सहायक–अपने संरक्षण, नेतृत्व में राम-लक्ष्मण को ले जाकर विश्वामित्र ने राक्षसों को भयभीत कर सकुशल यज्ञ कर्म सम्पादित किया। राम-लक्ष्मण को मिथिला में आयोजित स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये ले जाते हैं। विश्वामित्र की ही सहायता से राम शंकर के अविजित धनुष को भंग करते हैं और इस प्रकार उनके कारण दशरथ परिवार पूर्णता को प्राप्त हुआ। जानकी जीवनम् में इस सहायता को इस प्रकार चित्रित

---

(1) वा.रा.1/19/12 (2) जानकी जीवनम् 4/17 (3) वा.रा.1/21/18 (4) वही 4/30 (5) वा.रा.1/27,28

किया गया है-

वेदेतिहासबहुशास्त्रपुराणवृत्तैः,

काव्योपभेदरतिशास्त्रकलादिभिश्च।[1]

रात्रौ रघोः परिवृद्धितयस्य मेघां,

विद्योतयन् कुशिक कीर्तिधरस्तुतोष।

वात्सल्य रूप—राम-लक्ष्मण के प्रति विश्वामित्र का वात्सल्य एक गुरु का वात्सल्य है जिसमें अनुशासन की कठोरता है तो मंगल की मृदु कामना भी। जानकी जीवनम् में इस भाव को मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया गया है-

अथ क्षणान्तरमेव वाग्भिस्सुधामयीभिस्ततवत्सभावः।

मुनीश्वरीऽसावभिधाय किंचित्संचस्करे दाशरथि विनीताम्।।[2]

अयं समुतिष्ठं विहाय तन्द्रिं पराक्रमिन् राघव रामभद्र।

घटी क्षणानां समुपैति दूर्णमास्यश्लथच्वं नितरां गमस्त्वम्।।

सारांश यह है कि आलोच्य काव्यों में विश्वामित्र के ज्ञानी, दूरदर्शी, शस्त्रवेत्ता, और वात्सल्य रूप को समान रूप से चित्रित कि गया है। वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र के पूर्व जीवन की झांकी प्रस्तुत कर उन्हें महत् चरित्र सम्पन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है यद्यपि यह शैली कथा की दृष्टि से अनुपयोगी और रस व्याधात उत्पन्न करने वाली है। दोनों काव्यों में विश्वामित्र के यथार्थ और आदर्श रूप को प्रस्तुत किया गया है। राम के भावी जीवन से विश्वामित्र का लोप विस्मयकारक है।

8. जनक

रामकथा में जनक का उल्लेख राम विवाह प्रसंग में हुआ है। वाल्मीकि रामायण में जनक तेजस्वी, धर्मात्मा, श्रेष्ठ, सत्यवान, रूप में चित्रित है-

मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनः।[3]

राजेन्द्र मिश्र ने जनक चरित्र की अनेक विशेषताओं का उल्लेख कर उनके पितृत्त्व स्वरूप को एक नया रूप दिया है। वह मैथिल वंश में उत्पन्न सीरध्वज कहलाते थे-

कुल प्रसूतो ननु मैथिलानां शुशोच सीरध्वज पुण्यनामा।[4]

---

(1) जा.जी.4/37 (2) वही 7/16,17 (3) वा.रा.1/13/21/2 (4) जानकी जीवनम् 1/5/2

वह श्रेष्ठ प्रजापलक थे अकालग्रस्त होने पर वह स्वयं अपने पापों के विषय में चिन्तित होते हैं-

प्रजाजनो भूप कृतानि भुड्.क्ते श्रुतम्मयेति श्रुतिसार वाक्यम्।
खलीन हीनाश्वविरूद्ध वीरः पतत्यधो रोहणकोविदोऽपि।।[1]

भयानक दुर्भिक्ष में उन्होंने पृथ्वी को जोतने का कार्य सम्पन्न किया इससे उन्हें कमनीय कन्या सीता की प्राप्ति हुई यहाँ उनके पितृत्व रूप की मंगल भव्य और उदात्त झांकी अंकित हुई है। सीता का लालन-पालन उनके इसी गुण का निदर्शन है-

अथैकदा चारूतरप्रभातके प्रसेदिवांसौ पितरावुपगता।
प्रचुम्ब्य पृष्टा जनकेन सस्मितं क आवयोस्तेऽतितरान्नुः रोचते।।[2]

जनक ज्ञानी, निमि वंश भूषण, विनम्र, कर्त्तव्य परायण राजा के रूप में दोनों काव्यों में चित्रित हैं। राम सहित विश्वामित्र की अभ्यर्थना सीता विवाह के समय निदर्शन समधी दशरथ और बारातियों की तत्परता पूर्वक अभ्यर्थना उनके चरित्र के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। विश्वामित्र से वह कहते हैं-

भवद्ड्.घ्रर जोऽतिलिप्सवे ननुमह्यं भवदीय दर्शनम्।
पुरूषार्थ चतुष्टयादपि प्रतिमानधिकमेति साम्प्रतम्।।[3]

सीता के विवाह के सन्दर्भ में वह विश्वामित्र से कहते हैं-

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने।
सुतामयोनिजां सीता दद्यां दशरथेरहम्।।[4]

उनके पितृत्व रूप की चरम सीमा उस समय दिखाई देती है जव स्वयंवर भूमि में सभी विश्रुत वीर धनुष उठाने में असफल हो जाते हैं। पश्चाताप, अपराध बोध, ग्लानि से जनक का हृदय शोकाप्लावित हो उठा, जानकी जीवनम् में लिखा है-

तत्प्रत्ययेनैव विनोदितोऽहं चकार लक्ष्मी मयि भोः प्रतिज्ञाय।
फलन्ति में सम्प्रति दुर्विपाकाः कुप्यानिकस्मै प्रवणीय कोऽहम।।[5]
न योजितो ज्ञातमिदं विधात्रा सीता विवाहस्तदल श्रमेण।
शठोऽहमेवास्मि सुतापकारी कृतेदृशी येन नता प्रतिज्ञा।।

---

(1) वही 1/7 (2) वही 2/30 (3) वही 5/27 (4) वाल्मीकि रामायण 1/66 26 (5) जानकी जीवनम् 7/51,52

राम द्वारा धनुष भंग के बाद जनक की उदारता और उनकी वत्सलता का चित्रांकन दोनों कवियों ने समान रूप से किया है। वह सीता से विदा के समय अपने हर्ष-विषाद समन्वित भावदशा का उल्लेख इस प्रकार करते हैं-

धनं भवत्येव सुताऽन्यदीयं पिताऽवितामात्रमसौनु तस्याः।
समर्प्य जातेऽधिकृतेऽद्यतां त्वां विभाति निर्मक्षिकमेवमच्छम्।।[1]

तात्पर्य यह है कि जनक प्रजा पालक राजा, वात्सल्यमय पिता, ज्ञानी विदेह रूप में चित्रित है। वाल्मीकि रामायण में उनके वंश और कर्तृत्व की प्रशंसा है तो जानकी जीवन में उनकी भावनाओं की प्रतिष्ठा भी है। राजेन्द्र मिश्र ने जनक की वालसुलभ क्रीडाओं से अभिभूत हृदय की निश्छल मार्मिक अभिव्यक्ति की है जबकि वाल्मीकि रामायण में उनका क्षत्रियत्व रूप अधिक मुखर है।

९. सुग्रीव

कथा विश्लेषण करते समय सुग्रीव की कथा को प्रासंगिक कथा कहा गया है। इस प्रासंगिक कथा के सुग्रीव नायक हैं। बालि को छोटा भाई सुग्रीव बालि के साथ मायावी से लड़ने जाता है किन्तु बालि वध की आशंका से वह कायरों की भांति भागकर सत्ता हस्तगत कर लेता है, विजयी बालि सुग्रीव के साथ क्रूरता का व्यवहार कर उसे देश से निकाल देता है। राम से मित्रता कर सग्रीव वानर प्रेषण कर सीता का पता लगाता है। विभीषण के शरण के समय सुग्रीव उसका विरोध अवश्य करता है इस प्रकार राम-रावण युद्ध में सेनापति सुग्रीव कुशल सेनानी योद्धा के रूप में दिखाई देता है। सुग्रीव में भ्रातृत्व प्रेम, सच्चा मित्र, कर्तव्य दक्ष, व्यवहार कुशल, नीति निपुण किन्तु इन्द्रिय परायण विलासी व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। राम-लक्ष्मण को आते देख राजनीतिज्ञ परायण सुग्रीव सोचता है-

अरयश्च मनुष्येणा विज्ञयाश्छद्मचारिणः।
विश्वस्तानानविश्वस्त्राश्छिद्रषेु प्रहरन्त्यपि।।[2]
कृत्येषु वालि मेघावी राजानो बहुदर्शिनः।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः।।

सुग्रीव के कुछ दोषों की चर्चा करते हुये प्रायोपवेसन के समय अंगद ने कहा कि सुग्रीव

(2) वही 8/68 (1) वा.रा.4/2/22,23

भ्रातृवध का दोषी एवं विलासिता के कारण राम के प्रति भी निष्ठावान नहीं रहा-

स्थैर्यमात्ममनः शौचमानृंशस्यथार्जवम्।
विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते।।[1]
भ्रातु ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवितों महिषीं प्रियाम्।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः।।
कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा दुरात्मना।
युद्धायाभिनियुक्ते विलस्यपिहितं मुखम्।।
सत्यात् पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः।
विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत।।

सम्भवतः रामकथा के समीक्षकों ने इस परोक्ष कथन को केन्द्र में रखकर सुग्रीव के चरित्र को अधम कोटि का कहा है जबकि वास्तविकता दूसरी है। सुग्रीव वीर, भ्रातृ प्रेमी था किन्तु मायावी एवं बालि प्रकरण के कारण बालि की क्रूरता से वह भयभीत होकर कापुरूष बन गया था वह स्वयं कहता है-

पितर्युपरते तस्मिंज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिमिः।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परम सम्मतः।।[2]
राज्यं प्रशासनस्तस्य पितृपैतामहं महत्।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेण्यवत् स्थितः।।
स सु निर्धूय सर्वान् नो निर्जगाय महावलः।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो बालिना सह।।

दोनो काव्यों में मित्रता अग्नि को साक्षी मानकर की गई है जानकी जीवन में लिखा है यह मित्रता दोनों के सुख के लिये थी-

कृत्यानुसाक्ष्ये सह तेन मैत्री नियोजिता मारुतिना सुखाय।[3]

उसकी मित्रता की प्रशंसा राम ने भी की है-

कर्तव्यं यद वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया।।[4]

---

(1) वही 4/56/2-5 (2) वा.रा.4/9/2-3-8 (3) जा.जी.13/16/2 (4) वा.रा.4/7/17,18

एष च प्रकृतिस्योऽहमनुनीतस्त्वया सखे।

दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः।।

सुग्रीव अप्रतिम सेनानायक, संगठन कर्ता, युद्ध विशारद् शूरवीर है। सीता-खोज हेतु वानरों का चतुर्दिक प्रेषण, सेतुवन्ध के समय उनकी तत्परता, राक्षसों से युद्ध के समय उसका नायकत्व सराहनीय रहा है। सुग्रीव के तेज का परिचय शुक ने रावण से इस प्रकार दिया है-

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम्।

सर्वशाखा मृगेन्द्राणां भर्तारमभितौजसम।।[1]

तेजसा यशसा बुद्धया बलेनाभिजनेन च।

यः कपीनतिबभ्राज हिमवानिव पर्वतः।।

सुग्रीव युद्ध प्रारम्भ से पूर्व ही उत्साह के अतिरेक में रावण पर टूट पड़ता है। वह स्वयं राम से इस तरह तत्परता और क्रोध का कारण बताता है-

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम्।

भर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रमयात्मनः।।[2]

सारांश यह है कि आलोच्य काव्यों में सुग्रीव का परिचय समान कथाभूमि पर दिया गया है। वाल्मीकि ने सुग्रीव के इतिवृत्त के साथ उसकी मित्रता वीर समिति स्थापना एवं संचालन तथा श्रेष्ठ रण विशारद के रूप में किया है जबकि जानकी जीवन में उसका उल्लेख मात्र है वस्तुतः जानकी जीवन में सुग्रीव की प्रासंगिक कथा का अभाव है अतः चरित्र चित्रण को महत्ता नहीं मिली। जबकि वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव प्रासंगिक कथा का नायक है। वह वानर जाति का प्रतिनिधि है यद्यपि उसमें अतिशय विलासिता कामुकता, इन्द्रियपरायणता का अभाव नहीं है फिर भी उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष इसमें निहित है कि उसकी सहायता से ही राम कृतकार्य हो सके।

10. वशिष्ठ

वशिष्ठ राम परिवार के कथा सहायक पात्रों के अन्तर्गत है, वह ऋषि वर्ग के पात्र है। वाल्मीकि रामायण में उन्हें नीति विशारद, प्रमुख मन्त्री, कुलउपाध्याय एवं पुरोहित कहा गया है। वह ब्रह्म ज्ञानी, तपस्वी राजर्षि कहे गये हैं।[3]

---

(1) वा.रा.6/23.28,29 (2) वा.रा.6/41/9 (3) वा.रा.2/44/4-16

राजा दशरथ के निमन्त्रण पर वह उन्हें अपना परामर्श देते थे। राजा के विरूद्ध भी उन्होंने तीन बार परामर्श दिया विश्वामित्र के आगमन पर, काल पुरूष-राम के गुप्त संवाद में लक्ष्मण के त्याग के अवसर पर एवं सीता निर्वासन प्रसंग पर विश्वामित्र आगमन पर वह दशरथ को समझाते हैं तथा राजा को कर्तव्य मार्ग का बोध कराते हैं-

एषोऽस्ति गाधितनयस्स्फुरदूर्ध्वरिता।
दिव्यास्त्रयोगकुशलोऽनभिभूतेजसाः।।[1]
एवं विधाय गुरू गौरव भूमि धाम्ना।
प्रीतं प्रभो! तव सुतौ निशितौ भवेताम्।।
एवं वशिष्ठ वचसा व्यपनीतमोहः,
सत्त्वोदयं ह्यपुगतो ननु कोशलेन्द्रः।
पुत्रौ प्रगाढ़मुपगूह्य कृत प्रणामौ,
प्रादात्स्वयं कुशिकनन्दपूत पाणौ।।

राम के विवाह की सूचना सुन वशिष्ठ वात्सल्य के कारण रोमांच का अनुभव करने लगे-

अरुन्धती जानिरपि प्रहृष्टो गुण व्रजं तं रघुनन्दनस्य।
प्रकल्प्य रोमांचपरीतकायः क्षणं हृषीकाशुवशं जगाम।।[2]

वनवास प्रकरण पर वल्कल धारिणी सीता को देख वह अभिभूत हो कैकेयी को फटकारते है-

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति।।[3]

चित्रकूट प्रसंग में वह करूणाभिभूत हो राम से लौटने का आग्रह करते हैं। वशिष्ठ का तेजोदृप्त विवेक युक्त रूप सीता निर्वासन के समय दिखाई पड़ता है। जानकी जीवनम् में इस प्रसंग पर कहा गया है कि वशिष्ठ ने सभी नगर वासियों के समक्ष सीता चरित्र की महत्ता उनके सतीत्त्व पर विवेक सम्मत विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह समस्त प्रजाजनों के समक्ष कहते हैं-

---

(1) वा.रा.1/7/6-8 (2) जानकी जीवनम् 8/6 (3) वा.रा.2/37/29

किमस्ति राजर्षिरिह क्षमायामन्योऽपि सीरध्वजतुल्यशीलः।
यस्यात्मजेयं खलु पट्टराज्ञी रामप्रियाऽस्माकमधीश्वरी च।।[1]

वह अपने को रजक के समान मल धोने वाला कहकर प्रजा के समक्ष उसके निर्णय को चुनौती देते हैं-

प्रक्षालितं वस्त्रमलं त्वया भो मया स्वबुद्धिर्विमलीकृतेयम्।
क आवयोः श्रेष्टतः प्रशस्त प्रश्नो ह्ययं निर्णयनीय एव।।[2]

और वह सबको सचेष्ट करते हुये अपने धर्म व्यवस्थापक उपदेशक रूप में कहते हैं-

परन्तु नेदं भविता दुरन्तं पापं वशिष्ठे मयि विद्यमाने।
नाहं भविष्यामि कृतावमानः सद्धर्मलुप्ते नगरे रघूणाम्।।[3]
प्रवच्म्यतो राघवमप्युदारं तत्त्वं खलीकृत्य मनोऽनुरागम्।
वयस्तपोवंशगुरुत्वदृष्ट्या क्षमोऽस्मि सम्यक्तमिहोदेष्तु मा।।

वह निष्कलंक सीता के सन्दर्भ में कहते है कि उसने अपने सतीत्व की परीक्षा लक्ष्मण के समक्ष दी है वे इस सभा को सचेष्ट भी कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि आने वाला युग इस अनर्थकारी कृत्य के लिये उन्हें भी दोषी कहे-

मृतो वशिष्ठः किमु धर्मसिन्धुर्यर्स्यस्यादनर्थोऽयमभूद्दुरन्तः।
मैवं वन्दन्त्वेष्यति कालखण्डे लोका इति प्राग् विहितः प्रयासः।।[4]

और इस प्रकार उनके ही सत्प्रयासों से अयोध्या की जनता एक क्रूर, कुत्सित कार्य करने से बच गये।

सारांश यह है कि अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ गृहस्थ आश्रम में दीक्षित वशिष्ठ ज्ञानी, कर्त्तव्यनिष्ठ, विवेक शील मन्त्री और पुरोहित रूप में दोनों काव्यों में चित्रित हुये हैं। वह नीति कुशल, व्यवहार कुशल ऋषि कहे गये हैं।

11. रावण

रामकथा के पात्रों को गुणानुसार श्रेणीबद्ध करते हुये रावण को तामसी गुण वाला पात्र कहा गया है, वस्तुतः रावण ऐसा प्रतिनायक है जो किसी भी संस्कृति या इतिहास में महानायक रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है वह राजसी मनोवृत्तियों का प्रतीक है तो मनोविज्ञान

(1) वही 18/50 (2) वही 18/63 (3) वही 18/65-66 (4) जा.जी.18/82

के क्षेत्र में 'इगो' नामक प्रवत्ति का चरम निदर्शन भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से वह असुर संस्कृति का संस्थापक और सम्पूर्ण विश्व को अपनी शक्ति, नीति कुशलता, प्रशासनिक दृष्टि से सूत्रबद्धकर चक्रवर्ती, विश्वविजेता रूप में प्रस्तुत करना चाहता था। उसका प्रयास किसी सीमा तक सफल भी कहा जा सकता है। किन्तु कतिपय दुर्गुणों के कारण उसे प्रतिनायक बनना पड़ा। एक बात अवश्य दृष्टव्य है कि सम्भवतः वाल्मीकि भी रावण को केन्द्र में रखकर महानायक रूप में उसकी कथा विन्यस्त करना चाहते थे क्योंकि रामायण का पूर्व नाम 'पौलस्त्यवध' था। यहाँ हम रावण के बाह्य सौन्दर्य, शक्ति और आन्तरिक गुणों के साथ उसके विभिन्न वर्गीय रूपों का उल्लेख कर उसकी महत्ता निरूपित करेंगे।

बाह्य सौन्दर्य

वाल्मीकि रामायण में रावण को पुलस्त्य का पुत्र और ब्रह्मा का पौत्र कहा गया है। कहीं उसे दसशीश और बीस भुजा वाला तो कहीं एक शीश, द्विभुज कहा गया है–

दशग्रीवो विंशतिभुजो दर्शनीय परिच्छदः।
त्रिदशारिर्मुनीरन्द्रहनो दशरशीर्षइवाद्रिरात्।।[1]

ताम्भां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसैश्वरः।
शशुभेऽचलसंकाशः शृंगभ्यामिव मन्दराः।।[2]

इसके शारीरिक सौन्दर्य चित्रांकन में सुस्पष्ट स्वस्थ्य शरीर, दृढ़ स्कन्ध और उन्नत ललाट आदि का उल्लेख वाल्मीकि ने किया है। सीता-हरण के समय उसके कामरूप धारी सौन्दर्य का चित्रांकन किया गया है–

अर्कं तुधां शरैस्तीस्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम्।
कामरूपेण उन्मते पश्च मा कामरूपिणम्।।[3]

हनुमान के लंका प्रवेश के समय रावण के बाह्य सौन्दर्य का चित्रांकन कवि ने इस प्रकार किया है–

तस्मिंजीभूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वल कुण्डलम्।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजत वाससम्।।[4]

लोहितेनानुलिप्तांगं चन्दनेन सुगन्धिना।
संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम्।।

---

(1) वा.रा.3/35/9 (2) वही 5/22/27 (3) वही 3.49/4 (4) वही 5/10/7-9

व्रतभाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।

स वृक्ष वन गुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम्।।

जानकी जीवनम् में सीता से प्रेम निवेदन के लिये जाते समय वस्त्रावेष्टित सांलकृत रावण का बाह्य सौनदर्य इस प्रकार निरूपित किया गया है–

रविकोटिसमप्रभैर्युतो ह्यवतंसैर्विविधांगसंगतैः।

धृतचारूदुकूलकंचुकः परिणद्धाऽमितरत्नसंचयः।।[1]

वस्तुतः वाल्मीकि ने रावण के विशालकाय शरीर में मुग्ध होकर मन्दर पर्वत के समान उपमान प्रस्तुत किया है। सुपुष्ट भुजाएँ, उंगलियों आदि का सूक्ष्म वर्णन किया है। ऐसे आलौकिक सौन्दर्य को देख यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा देव कन्यायें विमोहित होती रही तो इसमें अत्युक्ति नहीं–

पीनौ समसुजातांसौ संगतौ बलसंयुतौ।

सुलक्षणनखांगष्ठौ स्वंगुलीयकलक्षितौ।।[2]

संहतौ परिधाकारौ वृतौ करिकरोमपौ।

विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पंचशीर्षा विवोरगौ।।

तभी हनुमान को कहना पड़ा–

अहो! रूपमहो धैर्य महोसत्त्वमहो द्युतिः।

अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षण युक्तता।।[3]

इस प्रकार वाल्मीकि ने रावण के बाह्य सौन्दर्य, अंगिक अनुपात, अंगराग, वस्त्राभूषण सहित जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है वह कामोद्दीपक तो था ही उसके प्रति वाल्मीकि का आकर्षक प्रदर्शित हुआ है।

रावण की शक्ति सामर्थ्य और तपश्चर्या

रावण मिश्रित जातीय रक्त का परिणाम है उसमें एक ओर सौन्दर्य है तो दूसरी ओर शक्ति का आधार स्रोत जिसे उसने अपनी तपश्चर्या से उद्दीप्त किया है। अपने भाई वैश्रवण के वैभव को देख महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर उसने दससहस्र वर्ष तक कठोर तपश्चर्या किया, उपवास और मस्तक काटकर हवन किया–

---

(1) जा.जी.12/49 (2) वा.रा.5/22/17-18 (3) वही 5/49/17

दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः।
पूर्वे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः।।[1]

और उसने ब्रह्मा से वरदान माँगा-

नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे।[2]

इस शक्ति का उपयोग उसने महत् कार्य में किया। तपस्या उद्भूत वलार्जन से उसने दिग्विजय की अपने चाचा कुबेर, यक्षों, कैलाश पर्वत को भुजाओं से उठाना, यमकिंकरों को पराभूत करना, अयोध्या नरेश अनरण्य, कालकेयों सहित पाताल लोक में अपना अधिपत्य स्थापित किया कुछ उदाहरण द्रष्ट्व्य हैं-

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रभुखेः पुरा।
भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः।।[3]
तेन विज्ञाप्यते सोऽयं साम्प्रतं विश्रवात्मज।
तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः।।
ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भय पीडिताः।
व्यक्तप्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा।।[4]
चालनात् पर्वतस्यैवगणा देवस्यकम्पिताः।
चलाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम्।।[5]
ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु।
रणे तस्मिन् निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः।।[6]
स राजा पतितो भूमौ विह्वलः प्रविलेपितः।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा।।[7]
ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयै रधिष्ठितम्।
गत्त्वा तु कालकेयांश्च हत्त्वा तत्र वलोत्कटान्।।[8]

जानकी जीवनम् में भी रावण अपने पराक्रम के आतंककारी प्रभाव का वर्णन स्वयं करते हुए कहता है-

वासवोऽपि नमत्यधीननरस्त्रिसन्ध्यं नो कलापचयं विधुस्तनुते कदाचित्।
भास्करो न तपत्यलं पवनो न वात्यां चेष्टते प्रभविष्णुतामहमुद् वहामि।।[9]

---

(1) वा.रा.7/10/10 (2) वही 7/10/16/2 (3) वही 7/11/29,30 (4) 7/14/30 (5) वही 7/17/26 (6) 7/21/45 (7) 7/19/23 (8) 7/23/17 (9) जा.जी.11/92

रावण का शील

मनोवैज्ञानिकों ने शील का स्वरूप निरूपण करते हुये बताया है कि "मनुष्य के जीवनव्यापी आचरण और स्वभाव से शील मनोभाव देखा जाता है।" इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण के रावण पर दृष्टि निक्षेप करें तो पता लगेगा कि उसके शील मनोविकास के मूल में दो वृत्तियाँ दिखाई देती हैं-कामुकता और अहंकार रावण ने अपने पराक्रम से विश्व विजय किया परिणाम स्वरूप देव, गन्धर्व, राजस, मनुष्यों की सुन्दरी स्त्रियों का वरण किया, अपहरण भी किया किन्तु उसकी कामुकता का हनुमान द्वारा सीता शोध के समय अनेक कमिनियों से घिरे रावण का आचरण यह द्योषित करता है कि ये विलासिनी स्त्रियाँ स्वतः रावण के रूप सौन्दर्य, शक्ति, बल, तेज, पराक्रम से अभिभूत थी। अपवाद स्वरूप वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में वेदवती एवं रम्भा से रावण के बलात्कार एवं शाप की कथा दिखाई देती है जो कि परिस्थिति की उद्दामता अधिक प्रतीत होती है इस प्रसंग की कुछ समीक्षा प्रस्तुत कर शेष कामुकता की चर्चा आगे की जायेगी-

ततो वेदवती कुद्धा केशान् हस्तेन साच्छिनत्।
असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छिन्नांस्तदाकरोत्।।[1]
सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम्।
उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा।।

इसी की पुष्टि जानकी जीवनम् में भी हुई है-

अहं निधनकारणं शठ! भवामि ते निश्चितं,
ज्वलन्त्यधिचितं पुरा यदपि वेदवत्याहमाम्।[2]
शशाप परिधर्षिता तपसि वर्तमाना मया,
तदप्यगति साम्प्रतं जनकजामिषेणाद्भुतम्।।

वाल्मीकि में दिग्विजय अभियान से लौटते समय रावण ने नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, यक्षों, गन्धर्वो, दानवों की कन्याओं का अपहरण किया-

एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः।
यक्ष दानवकन्याश्च विमाने सोऽहमरोपयत्।।[3]

---

(1) वा.रा.7/17/28,29 (2) जा.जी.18/54 (3) वा.रा.7/24/3

यहाँ मनोविकारवेत्ताओं की यह उक्ति स्मरण रखें कि रावण को पैतृक परम्परा में उच्च कुल का होने पर भी हीन, निम्न कुल का माना गया अतः अपनी गौरवग्रन्थियों को सन्तुष्ट करने के लिये ही उसने स्त्रियों का अपहरण किया अतः उसे हम श्रेष्ठ शीलवान व्यक्ति न कहकर खड्गशील युक्त व्यक्तित्व का प्रतीक मान लें तो निश्चय ही रावण चरित्र की एक नयी व्याख्या सामने आ सकती है।

रजोगुण एवं तमोगुण प्रधान व्यक्ति के शील में अहंकार उसका कारक तत्व तो होता ही है ऐसे वह वीर पुरूष का आभूषण भी है। वाल्मीकि ने अनेक घटनाओं के माध्यम से रावण के अहंकार का वर्णन किया है–हनुमान, अंगद, माल्यवान, मन्दोदरी, मारीच, प्रहस्त आदि परिजनों के प्रबोधन पर भी रवण ने अपना महत्व प्रदर्शन या अहंकार प्रदर्शन का परित्याग नहीं किया। वह अपने तेज, बल, पद, प्रतिष्ठा की प्रशंसा करते हुये कहता है–

मम संजातरोषस्य मुखं दृष्टैव मैथिलि।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः।।[1]
यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारूतो वाति शंकितः।
तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भायात् सम्पद्यते दिकि।।
निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः।
भवन्ति यत्र तत्राहं तिष्ठामि च चरामि च।।

इसी प्रसंग में जानकी जीवन में रावण कहता है–

वासवोऽपि नमत्यधीन नरस्त्रिसन्ध्यं नो कलापचयं विधुस्तनुते कदाचित्।
भास्करो न तपत्यलं पवनो नो वात्यां चेष्टते प्रभविष्णुतामहमुद्वहामि।।[2]

राम–रावण युद्ध के समय रावण अपने महद् अहंकार का प्रदर्शन करते हुये मेघमन्द स्वर में कहता है–

रक्षासामद्य शूराणां निहितानां चमूमुखे।
त्वां निहत्य रणश्लाघिन् करोमि तरसासमम्।।[3]
निष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव।
एवमुक्त्वा स निक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः।।

---

(1) वा.रा.3/48/7–9 (2) जा.जी.11/95 (3) वा.रा.6/102/57,58

सारांश यह है कि रावण के शील के सम्बन्ध में सुनकर रामकथा के भक्त, पाठक, रसिक एक बार सतर्क और चौंक अवश्य जायेंगे क्योंकि शील की सामाजिक अवधारणा सत्त्वगुण में ही अवस्थित मानी गयी है जबकि 'फ्रायड' लिबिडो ग्रन्थि की विशेपता बताते हुये मनुष्य के सम्पूर्ण कार्यो में इस गुण की व्याख्या बताई है। अपनी शक्ति, तपश्चर्या, ज्ञान से अर्जित रावण जिस विशाल साम्राज्य का स्वामी था वह राजस और तामस गुणों का जीवन्त प्रतिरूप था ऐसे पात्र से सत्त्व गुणोपेत शील की अपेक्षा नहीं हो सकती। वह शीलवान अवश्य है किन्तु महत्व प्रदर्शन और अहंकार से युक्त शील का समर्थक है।

श्रेष्ठ राजा एवं युद्ध विशारद

रावण का विशिष्ट रूप राजा रूप है जिसमें उसकी राजनीतिक, अनुशासन, प्रशासन व्यवस्था सन्निहित है। पौराणिक और राजनीति शास्त्र सम्मत मान्यताओ के अनुरूप वह चक्रवर्ती राजा है, दिग्विजय कर समस्त क्षेत्र को अधीनस्थ ही नहीं किया स्वर्ण नगरी लंका को राजधानी बनाकर प्रजा एवं परिजनों को रहने के लिये स्थान दिया उसकी धन सम्पन्नता, राज्य निर्माण की कला, मन्त्रि मण्डल की व्यवस्था, कोष, दुर्ग, भूमि, प्रजा आदि सप्त तत्वों की वाल्मीकि ने अत्यन्त उदारमना होकर प्रशंसा की है कुछ उदाहरण द्रष्ट्व्य है-

दिग्विजय—वाल्मीकि ने उत्तर काण्ड में रावण विजित प्रथ्वी, स्वर्ग पाताल लोकों का वर्णन किया है, इस प्रकार रावण एक विशाल साम्राज्य का चक्रवर्ती राजा बना। उसने अपनी राजधानी लंका को बनाया जो सब प्रकार से सुरक्षित है जिसका वैभव असीम है-

लंका नामपुरी रम्या निर्मिता विश्व कर्मणा।
राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती।।[1]
तत्र त्वं वस भद्रं ते लंकायो नात्र संशयः।
हेमप्राकारपरिखा यन्त्रशास्त्रसमावृता।।

रावण की प्रजापालन व्यवस्था का चरम निदर्शन रूप उस समय दिखाई पड़ता है जब हनुमान सीता-शोध के समय सामान्य घरों में भी असीमित धन, वैभव, सौन्दर्य और स्वास्थ्य देखते हैं।

नाना विधानान् रुचिराभिधानान्,
ददर्श तस्यां पुरियातुधानान्।[2]

(1) वा.रा.7/3/27,28 (2) वा.रा.5/5/15

ननन्द दृष्ट्वा स च तान् सुरूपान्,

नानागुणानात्मगुणानुरूपवान्।।

विद्योतमानान् स च तान् सुरूपवान,

ददर्श कोश्चिच्च पुरर्विरूपान्।।

लंका नगरी की सम्पन्नता का बहुविधि वर्णन वाल्मीकि ने किया है। अभेद्य दुर्ग होने का प्रमाण तो हनुमान के लंका प्रवेश के समय पकड़े जाने पर होता है। यह नगरी स्वर्ग से भी सुन्दर कही गयी है–

स्वर्गोऽसयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत्।

सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः।।[1]

देश, कोष, राजा, प्रजा के बाद राजनीति में मन्त्री मण्डल, सचिव आमात्य वर्ग का स्थान आता है। जानकी जीवन में रावण के आमात्य की चर्चा अनेक स्थान में की गयी है। प्रहस्त, मात्यवान, विभीषण आदि रावण के वैयक्तिक सचिव थे। वाल्मीकि ने लिखा है कि उसके मन्त्री निर्भीकता पूर्वक परामर्श देते थे।

श्रेष्ठ प्रजापालक–वास्तविक अर्थो में रावण को "आसुमद्रक्षि क्षितीपा" कहा जा सकता है क्योंकि लंका और भारत के दक्षिणी भू-भाग को उसने अधिकार में कर रखा था। खर-दूषण आदि से लेकर लंका तक उसका शासनसूत्र सुव्यवस्थित था। सिंहनी लंकिनी की कथा से यह विदित होता है कि उसको अपने गुप्तचरों पर पूर्ण विश्वास था। शुक-सारण प्रसंग से भी गुप्तचर व्यवस्था का पता चलता है इस प्रकार राजा, भूमि, जन, कोष, दुर्ग सेना आदि का वाल्मीकि रामायण में राजनीतिक दृष्टि से वर्णन मिलता है। गुप्तचर शार्दूल राम के विषय में सूचित करता है–

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्।

जातोद्वेगोऽभवत् किचिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत्।।[2]

वह अपनी सेना का एकमात्र सेनानायक है उसकी व्यूह सूचना सैन्य संचालन दक्षता, राम-रावण युद्ध में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। वह एक श्रेष्ठ आदर्श राजा था जिसने अपनी प्रजा के हितचिन्तन का विशेष ध्यान रखा है, अपने निर्णयों में मन्त्रिमण्डल से सहायता

---

(1) वही 5/9/30 (2) वही 6/30/2

लेता था जिसमें भाई, पुत्र, प्रमुख बलशाली योद्धा सम्मिलित थे।

पतिरूप— रावण प्रचण्ड योद्धा, स्वरूपवान, अतुलित शक्ति वाला है उसके पति रूप की व्याख्या मृत्यु के पश्चात मन्दोदरी करती है यद्यपि विलासिता हेतु उसने शताधिक कामिनियों को अपने महल में रक्षित या विवाहित बनाकर रखा था। पटरानी मन्दोदरी अपने पति की साधना, संयम और उसकी कामुकता का सगर्व उल्लेख करती है–

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभवनं त्वया।
स्मरद्भिरिव तद् वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः।।[1]

उसके पराक्रम पर गर्व करती हुयी मन्दोदरी कहती है–

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्याद्वगदं महत्।[2]
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शंकरस्य च।
दृप्तानां निग्रहीतारभाविष्कृत पराक्रमय।।

पितारूप—रावण का परिवार अत्यन्त विशाल था अतः सामाजिक वर्गीय रूप में पिता का रूप अत्यन्त गरिमामय है। मेघनाद, अक्षकुमार, प्रहस्त उसके श्रेष्ठ पुत्र थे, पुत्र की अवहेलना भी सीता-हरण के परिप्रेक्ष्य में दिखाई पड़ती है जबकि मृत्यु पर रावण का शोक अत्यन्त अरन्तुद और हृदयद्रावक है–

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल।
तित्त्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः।।[3]

भाई रूप—कुम्भकर्ण, खर–दूषण, विभीषण, रावण के ऐसे भाई हैं जिसमें से विभीषण को छोड़कर दोनों ने रावण के लिये अपने प्राणों का त्याग किया है जबकि विभीषण ने उसे सत् परामर्श ही दिया है। खर–दूषण के वध के प्रतिशोध में सीता–हरण और कुम्भकर्ण के वध पर रावण का विलाप द्रष्ट्व्य है–

श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च।।[4]

प्रतिनायक रूप में—वाल्मीकि रामायण मूल रूप से पौलस्त्य रावण को केन्द्रबिन्दु बनाकर लिखी गयी होगी जो विकसित होकर नायक से प्रतिनायक के रूप में

---

(1) वा.रा.6/111/15 (2) वही 6/111/48,49/2 (3) वही 6/92/5 (4) वही 6/67/6

रूपान्तरित हुआ बात यह है कि रावण का महत कर्म, कठोर तपश्चर्या, शक्ति सम्पन्नता से जिस अद्भुत पराक्रम का प्राकट्य हुआ अपनी नीतिमत्ता, दूरदर्शी से रावण ने यक्ष, गन्धर्व, देव, दानव मानव सभी का पराभव किया था और वह दक्षिण से लकर मध्य भारत तक एकमात्र अप्रतिहत योद्धा और राजा था इसीलिये उसी का नाम विश्रुत हुआ हैं। उसका वध करने के कारण राम नायक और रावण श्रेष्ठ, आदर्श प्रतिनायक रूप में स्थापित हुआ। आलोच्य काव्यों ने वाल्मीकि में उसके जन्म, वंश विस्तार और क्रिया कलापों का इतिवृत्त अत्यन्त विस्तार रूप में हैं जबकि जानकी जीवन में उसका उल्लेख कथा या घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है दोनों काव्यों में वह सफल प्रतिनायक है उसके बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रांकन समान रूप से किया गया है। अन्तर यह है कि वाल्मीकि में वह अपने विशद और भव्य रूप में चित्रित है जबकि जानकी जीवनम् में घटनाओं के आग्रह के कारण उसके आन्तरिक गुणों की व्यंजना मात्र हुई है। वाल्मीकि के रावण की दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने उसके सामाजिक वर्गीय-पिता, पति, पुत्र, भाई, मित्र इत्यादि रूपों को यथा सम्भव यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है वह एक स्वार्जित शक्ति सम्पन्न परिवार का अप्रतिम मुखिया रहा है जबकि जानकी जीवन में उसके इन पारिवारिक सामाजिक रूपों की चर्चा कम हो गयी है। रावण के चरित्र की तीसरी विशेषता उसकी दुर्दर्ष शक्ति सम्पन्नता है वह श्रेष्ठ प्रजा पालक, रणविशारद, सेनापति, योद्धा, दूरदर्शी और अपने आश्रिता धरित्री का एकमात्र रक्षक था।

उसके आन्तरिक गुणों में कामान्धता को छोड़ दिया जाये तो वह नैतिक नियमों की पराक्रष्ठा तक जा पहुँचता है। जानकी जीवनम् और वाल्मीकि रामायण दोनों में समान रूप से सीता प्रणय के प्रति वाचिक प्रणय निवेदन वर्णित है तथा युद्ध में माया रूपों का आश्रय लेकर मनोवैज्ञानिक ढंग से सीता एवं वानरों का मनोबल तोड़ने पर विश्वास रखने वाला था। अहंकार, गर्व, अहंन्यता ऐसे दुर्गुण थे जिसके कारण वह अपने प्रतिपक्षी को तुच्छ समझता था और उसका मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि रावण का आन्तरिक, बाह्य व्यक्तित्व बर्हिमुखी है वह इगो ग्रन्थि का प्रतीक है, जिसमें सम्पूर्ण दुनिया में अपने अस्तित्व की रक्षा का भाव प्रमुख होता है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य काव्यों में रावण के महान आदर्श और यथार्थ रूप का

समन्वय घटनाओं, कथापरिस्थिति अन्य पात्रों की उक्तियों के माध्यम से किया गया है। जानकी जीवनम् में उसका चरित्र कथाश्रित है। प्रत्यक्ष कथन या परिस्थितियों से उसके चरित्र का चित्रांकन कम ही हुआ है।

12. विभीषण

रावण का अनुज विभीषण का चरित्र अत्यन्त विवादास्पद है। वाल्मीकि रामायण में उसकी उत्पत्ति के समय उसे धर्मात्मा कहा गया है–

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः।
स्वाध्यायनियताधार उवास विजितेन्द्रियः।।[1]

विभीषण ने उग्र तपस्चर्या की और परिणाम स्वरूप ब्रह्मा ने उसे स्थिर धर्म बुद्धि का वरदान दिया–

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येषावश्रमेषु च।।[2]
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये।
एष मे परमोदारो परः परमेको यतः।।
धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति।।
यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाश्वन्।
ना धर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते।।

इसी कारण रावण के अपकृत्यों का उसने कभी समर्थन नहीं किया। दिग्विजय के बाद रावण द्वारा अपहृता विवाहिता स्त्रियों की दीन दशा देख विभीषण निर्भय होकर उसे समझाता है कि हे राजन! यह आचरण धन, यश और कुल का नाश करने वाले हैं यही पाप है–

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थ कुलनाशनैः।
घर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसै।।[3]

सीता हरण के पश्चात उसकी शोध हेतु आगत हनुमान की हत्या पर विभीषण समझाते हुये कहते हैं–

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र,
प्रसीद मे वाक्यमिदं श्रृणष्व।[4]

---

(1) वा.रा.7/10/39 (2) वही 7/10/31,32,33,34 (3) वही 7/25/18 (4) 5/52/5,8

वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा,

दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः।।

राजन् धर्म विरूद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम्।

तव चा सदृश वीर कपेरस्य प्रमापणम्।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्म विशारदः।

परावरज्ञो भूतानां त्वमेष परमार्थवित्।।

गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः।

ततः शास्त्रविपश्चित्वं श्रम एव हि केवलम्।।

सीता उद्धार हेतु वानरी सेना संयुक्त आगत राम को देख विभीषण ने रावण को अनेक बार समझाने का प्रयास किया कि रावण के युद्ध करने का नैतिक आधार क्या है? राम ने रावण का या उसके राज्य पर ऐसा कौन सा अपकार किया है? जिससे उसकी पत्नी अपहृत की गई है। बलवान तथा परम धार्मिक राम से वैर अकारथ एवं निरर्थक हैं–

गवां पयांसि स्कन्ननि विमदा वरकुंजराः।

दीन यश्वाः प्रहेषन्ते नवग्रासाभिनन्दिनः।।[1]

वायसाः संघराः क्रूरा व्याहरन्ति समन्नतः।

समवेताश्च दृश्यन्ते वियानाग्रेसु संधशः।।

दूसरी बार एकान्त में समझाते हुये विभीषण ने रावण के समक्ष राज्य में आने वाली भयंकर विनाश लीला का संकेत किया। एवं तीसरी बार सभामध्य रावण के तामसी हट की निन्दा और कुल रक्षा करने का आह्वान किया फलतः उसकी सदीक्षा को अवहेलना पूर्वक रावण ने अस्वीकार कर उसे अपमानित किया। धिकृत विभीषण रावण का परित्याग कर राम की शरण में पहुँचता है और युद्ध के समय एक सच्चे ईमानदार मित्र की तरह राम की सहायता समय–समय पर करता है। मायामयी मृत्यु प्राप्त सीता को देख वह राम को प्रबोध देकर मेघनाथ को मारने के लिये लक्ष्मण को प्रोत्साहित करता है–

अलं विलपनैः प्रभो! वितथकृत्यमेतद्रिपो–

श्चरा इदमवादिषुः श्रयति जानकी जीवनम्।[2]

---

(1) वाल्मीकि रामायण 7/10/17,19 (2) जा.जी.14/65

विहाय करूणां ततो व्यसन कारिणं रावणिं,

निकुम्भिला सुरालये जहि नृपेन्द्र। मायाविनम्।।

विभीषण रावण के गुप्तचरों की पहचान ही नहीं बताता सेना और राज्य के रहस्यों को ही नहीं बताता, रावण के योद्धा उनकी शक्ति का परिचय ही नहीं देता, अपितु राम को माया युद्धों से सावधान करता है। इन्द्रजित और रावण के संकल्पित यज्ञ विध्वंसो का परामर्श देकर रावण वध का वास्तविक रहस्य भी बताता है और अवसर आने पर स्वयं युद्ध भी करता है-

ते शराः शिखि संस्पर्शा निपतन्तः समाहिताः।

राक्षसान् द्रावयामासुर्वज्राणीव महागिरीन्।।[1]

विभीषण स्थानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः।

चिच्छिपुः समरे वीरान् राक्षसान् राक्षसो तयाः।।

इस प्रकार विभीषण जन्मना कुलीन था। संस्कृति, आचार-व्यवहार से राक्षस संस्कृति का पोषक था किन्तु धर्मनिष्ठ और सत्यनिष्ठा अविवादित है। वह युद्धकुशल, नीति परायण, दूरदर्शी, राम भक्त है जिसके कृत्यों को लेकर समीक्षकों में काफी विवाद है। कुछ की मान्यता है कि वह लंकाधिप बनना चाहता है उसने भ्रातृद्रोह, कुल द्रोह, राष्ट्र-द्रोह किया है अतः इन लाछनों का संक्षेप में विश्लेषण, उत्तर, प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया जा रहा है।

रामकथा में तीन भ्रातृ युग्म दिखाई देते हैं। राम और भरत, वालि और सुग्रीव, एवं रावण और विभीषण राम और भरत भ्रातृ भावना का आदर्श रूप हैं शेष दोनों युग्म सत्ता प्राप्ति हेतु दूसरे के वध के कारण बनते हैं। सुग्रीव बालि के मरने के वाद पश्चाताप करता है अतः वह मध्यम कोटि का या राजस भ्रातृ प्रेम का प्रतीक है। विभीषण राम की शरण में जाते ही राम को लंका के सम्पूर्ण भेद बता देता है। इसके पूर्व राम ने उसे राज्य का आश्वासन दिया था अतः रामकथाकारों ने उसे भ्रातृद्रोही एवं देशद्रोही वताया है। इसी प्रकार मेघनाथ और रावण के यज्ञ करने पर विभीषण उसके रहस्य का उद्घाटन कर उसके वध का कारण बनता है। यद्यपि वाल्मीकि रामायण में मेघनाद के वध के कारण वात्सल्य प्रेम छलकता दिखाई पड़ता है।

इन आक्षेपों का विश्लेषण करते समय यह बात प्रत्यक्ष दिखाई देती है कि यदि

---

(1) वाल्मीकि रामायण 6/89/4,5

विभीषण कुलद्रोही या देशद्रोही होता तो रावण नीति विशारद होने के कारण उसे बन्दीगृह में डाल सकता था, दूसरी बात यज्ञ विध्वंस के विषय में निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि यह कार्य उसे मित्र धर्म के पालन हेतु करना ही चाहिये था। बात यह है कि सीता हरण के बाद विभीषण ने यह समझ लिया था कि अन्त में रावण की हार होगी और वह उससे तटस्थ नहीं रह सकता था। रावण को सत्ताच्युत कर स्वयं गद्दी पर बैठ नहीं सकता था अतः राम की शरण के अतिरिक्त उसके सामने अन्य कोई उपाय नहीं था, क्योंकि मंत्री होने के नाते उसने सत्य का प्रकाशन और रावण की अदूरदर्शिता का उद्घाटन अकेले या सभा में कई बार कर चुका था। जानकी जीवनम् में इन पक्षों को उपेक्षित किया गया है। अतः वहाँ विभीषण पात्र के रूप में ही उल्लिखित है जबकि वाल्मीकि रामायण में वह यथार्थवादी चरित्र सम्पन्न व्यक्तित्व का प्रतीक बनकर आया है। वस्तुतः विभीषण जन्मतः क्रूरकर्मा राक्षसकुल से था। शील, धर्म, स्वभाव की रक्षा हेतु अपने हितैषी रावण का परित्याग कर अपने राष्ट्र का रक्षक ही बना।

13. कुम्भकर्ण

रामकथा में कुम्भकर्ण भ्रातृवर्ग का प्रतीक है, उसके विशालकाय शरीर एवं तेजस्वी रूप का चित्रांकन वाल्मीकि ने किया है-

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम्।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं यथा।।[1]
कोऽसौ पर्वतसंकाशः किरीट हरिलोचनः।
लंकायां दृश्यते वीरः स विद्युतुदिवतोयदः।।

उसकी दीर्घ निद्रा और उसके पुष्कल भोजन का विवरण वाल्मीकि रामायण में दिया गया है। कुम्भकर्ण राजनीति विशारद है वह कहता है कि रावण का यह आचरण शास्त्रानुसार नहीं है क्योंकि नीतिज्ञ पुरूष कि धर्म, अर्थ, काम का सेवन उपयुक्त समय में ही श्रेयष्कर होता है देशकाल विहीन कर्म दुःख के कारक होते हैं वह रावण से कहता है-

यो हि शत्रुभवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति।
अवाप्रोतिहि सोऽनर्थान स्थानाच्च व्यवरोप्यते।।[2]

---

(1) वा.रा.6/61/2,5 (2) वा.रा.6/63/20-21

यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।

तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु।।

पराक्रम में कुम्भकर्ण नारायण और इन्द्र के समान है वही एक ऐसा महारथी है जिसने हनुमान, नील, अंगद, सुग्रीव, लक्ष्मण, राम सभी के साथ युद्ध कर अपनी अप्रतिम वीरता प्रमाणित की है।[1]

जानकी जीवनम् में कुम्भकर्ण द्वारा यह कहलाया गया है कि दशानन को वानर और मनुष्यों से भय होगा और रावण ने दोनों की उपेक्षा की है-

दशास्याभवितां भयं तव नरादयो वानरात्।

यतो हिं समुपेक्षितौ जडमते! त्वया द्वाविमौ।।[2]

कुम्भकर्ण के चरित्र, कार्य व्यवहार का मूल्यांकन करते हुये डा0 राजूरकर ने लिखा है,"रामकथा का कुम्भकर्ण एक ऐसा पात्र है जो अपने में सर्वाधिक मिथ बन गया है। आकार-प्रकार, व्यवहार, आहार, निद्राप्रिय और प्रचण्डतम योद्धा के रूप में इसकी जोड़ का कोई भी पात्र भारतीय कथा साहित्य में नहीं मिलता है। युद्ध भूमि में यह जितना प्रचण्ड दुर्दर्ष और काल सदृश है व्यक्तिगत जीवन में उतना ही एकान्तप्रिय और शान्तप्रिय है।"[3]

दार्शनिक दृष्टि से हम कुम्भकर्ण को अन्नयय कोष का प्रतिनिधि कवि मान सकते हैं।

14. मारीच

रामकथा में मारीच का चरित्र महत्वपूर्ण है। वह पुरूष पात्र के अन्तर्गत गौण है। वह राम की बलवत्ता, शक्ति-सामर्थ्य का ज्ञाता है, क्योंकि विश्वामित्र के यज्ञविध्वंस में राम के वाणों की तीक्ष्णता का अनुभव सबसे पहले उसे ही होता है। सीता हरण के समय यह कंचनमृग वन रावण का सहयोगी बनता है और राम के बाणों से मृत्यु प्राप्त होने के पूर्व लक्ष्मण और सीता का नामोच्चारण करता है। ताट्का का पुत्र सुवाहु का भाई मारीच विश्वामित्र के यज्ञ में रक्त की वर्षा करता है जिसे राम अपने शस्त्र से सौ योजन दूर फेंक देते हैं-

स तेन परमास्त्रेण मानवेन समाहतः।

सम्पूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागर सम्प्लवे।।[4]

---

(1) वही 6/67 (2) जा.जी.14/55 (3) रामकथा के पात्र डा0भ0र0रजूरकर पृष्ठ सं0-396 (4) वा.रा.1/30/18

जानकी जीवन में मारीच को कुशल कार्य सिद्ध बताया है। रावण के हाथों अपनी मृत्यु देखकर उसने राम के हाथों सद्गति पाने का निश्चय किया-

> भीक्ष्य दारूणमन्त्रितं दशकन्धरस्य दुर्निवारमय प्रतर्क्य वधं विरोधे।
> मारिचो रघु वीरसायकलक्ष्यभूतं स्वावसानमपि ध्रुवं ध्यमृताय येने।।[2]

1. सीता

राम और सीता एक ही सिक्के के दो फलक हैं, एक के अभाव में दूसरे का कोई महत्व नही है। रामचरित्र में जितनी गम्भीरता, उदात्तमयता और चरित्रिक गुणों का सम्पुंजन है उसकी प्रकाशिका सीता ही है क्योंकि पति के गुणों का निकष पत्नी से अतिरिक्त दूसरा भला कैसे हो सकता है। सम्पूर्ण रामकथा साहित्य में यदि राम चरित्र सम्पन्न महापुरूष, अवतारी और ब्रह्म रूप में चित्रित है तो सीता भी असाधारण, पतिव्रत सम्पन्न नारी लक्ष्मी या विष्णु की पत्नी के अवतारी रूप में विकसित होकर परब्रह्म की आद्या शक्ति रूप में प्रतिष्ठित हुई है। जिन समीक्षकों ने रामकथा का विकास कृषि प्रतीकों से स्वीकार किया है, सीता विकास की सम्भावनाएँ अधिक सार्थक प्रतीत होती हैं उनका लांगल पद्धति से भूमिजा होना वनवास, हरण और पुनः प्रथ्वी में प्रवेश इसी तथ्य का संकेत करते हैं।

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् भिन्न दृष्टि सम्पन्न काव्य हैं। वाल्मीकि रामायण की सीता यथार्थ आदर्श के समन्वय से युक्त असाधारण स्त्री नायिका के रूप में प्रतिष्ठित है। दोनों काव्यों में सीता के पातिव्रत, सहनशीलता, आलौकिकता, असाधारण सतीत्व आदि का वर्णन समान रूप से हुआ है किन्तु चरित्रगत विभिन्नता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यहाँ हम सीता के पूर्व जीवन के साथ ही उनके बाह्य सौन्दर्य, आन्तरिक सौन्दर्य, उनमें व्यक्त नैतिक मूल्य का त्रिआयामी रूप प्रस्तुत करेंगे।

सीता का पूर्व चरित्र

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में भूमिजा सीता की चर्चा समान रूप से है। सीता के बाल्यकाल की चर्चा वाल्मीकि में नहीं है किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान सम्मत चरित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से डा0 राजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य जानकी जीवनम् में

---

(2) जा.जी.11/68

जनक की वात्सल्य विषयक रति को तृप्त करने के लिये सीता के बाल्यकालीन सौन्दर्य आदि का बहुविध वर्णन किया है–

बाल लीला–भयानक अकाल एवं भूमिकर्षण के कारण प्रोद्भूत सीता का शिशु सौन्दर्य इस प्रकार वर्णित किया है–

प्रफुल्लपद्मस्यमधुव्रताक्षी मनोज्ञचारुस्मितशोभिवक्त्रा।
सुशलयस्था बलिदीपिकेव प्रभोर्ध्वचक्रं परितः किरन्ती।।[1]
कलेव चान्द्री स्फुट चारु शोभा ज्वलद्धुताशप्रतियातनेव।
लतेव मालेव धरासुतेव प्रमोहविद्धं विदधेजनं सा।।

मनोविज्ञानवेत्ता मैक्डुअल की मान्यता है कि "वात्सल्य मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में से एक है।"[2]

इस दृष्टि से डा0 मिश्र ने जानकी जीवन में सीता के शिशु बाल सौन्दर्य तद्जनित क्रीड़ाओं तथा आश्रय जनक के मनोभावों का हृदयावर्धक वर्णन किया है। उनका मंजीर विभूषित चरणों से नर्तन, चन्द्रविम्ब की याचना, उनके विलाश और बिब्बोक आदि का चित्रांकन जानकी जीवनम् के द्वितीय सर्ग में विस्तार से किया गया है इस प्रकार अभिराज मिश्र ने क्रमशः वृद्धिमगत सीता सौन्दर्य उनके द्वारा किये गये हरितालिका इत्यादि व्रत रखने की चर्चा की है कवि ने इसी परिप्रेक्ष्य में सीता के पौगण्ड किशोरी सौन्दर्य तद्जनित वयः सन्धि का रसपेशल वर्णन किया है।

वयः सन्धिगत सौन्दर्य वर्णन–वाल्मीकि ने सीता का पुत्रीवत् पालन किया था अतः वाल्मीकि रामायण में युवती विवाहिता सीता के सौन्दर्य का अंकन यत्र तत्र किया है जबकि जानकी जीवनम् में सीता के वयः सन्धि, यौवनागम और पूर्ण वयस्का सौन्दर्य का चित्रांकन हुआ है, जिसमें वक्ष अपांग, नितम्व, कटि, नेत्र, नासिका, ग्रीवांश, आदि का समानुपातिक विकासित रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है–

अथाधुनाऽपांगयुगप्रचारणं विलोलकर्णान्तमतर्कितं वभौ।
कपोल वाली युगलेऽपि पाटलं प्रभिन्नकोषं समदृश्यताधुना।।[3]

---

(1) जा.जी.1/42-43 (2) शिक्षा मनोविज्ञान (3) जा.जी.3/2,7,8

रतिप्रवीणङ्.कुर युग्न सन्निभौ पयोधरौवक्षसि वीक्ष्य वर्धितौ।
विदूर कन्दर्प कथा व्यथालसा दुरन्तवैलक्ष्यमवाप जानकी।।
नितम्बगुर्वीविनतांस सौष्ठवा सुमध्यमा चारू चकोर लोचना।
वशागतिश्चन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वज कन्यका न कम्।।

डा0 मिश्र ने इसी परिप्रेक्ष्य में परकीया, मुग्धा नायिका सीता के रत्यंकुरण की अभिव्यंजना विभिन्न क्रिया व्यापारों के माध्यम ये सीता सौन्दर्य का वर्णन किया है-

प्रवृद्धगात्राऽप्यनुविद्धशैशवा गभीरभावाऽप्यविचार्य जल्पिनी।
बभौ द्वयोर्यैवन वाल्य योरियं बिनोद खेला स्थलिकेव कामिनी।।[1]
इयं लता हन्त न चूतसंमिश्रताऽस्त्यतो विधास्थेपरिरब्धर्मतृकाम्।
सखीजने चेति विजल्प निस्सृते सदृष्टि शेष न चचाल मानिनी।।
मनोगतं तत्सदकाण्डताण्डवं व्यपहनुवानैव कुटुम्बिमण्डलात्।
निगीर्ण निर्यच्छितिधूमऽम्वरा पतिंवरा साऽग्निशिखेव सम्वभौ।।

प्रेयसी रूप या पूर्वराग—अलंकृत महाकाव्यों का प्रणयन नायिका भेद के लक्षणानुधावन के रूप में होता है। सीता विवाह के पूर्व राम से उनका अनुराग परवर्ती धारणा है इसीलिये जानकी जीवनम् में इस अवसर पर युवती सीता का अपूर्व रूप सौन्दर्य, राम का प्रत्यक्ष दर्शन तद्जन्य पूर्वराग का मादक चित्रण कवि ने किया है। राम ने सीता के सौन्दर्य का दर्शन कुछ इस रूप में किया है-

तरणितापविपन्नकलेवरं विदधती पदहंसकशिंजितैः।
चटुललीचन चारूविलोकनैवरूपवनं पवन्ननु कुर्वती।।[2]
स्मितपयोदवतत्प्रणयाम्बुभिर्नवीकृत कानन देवता।
गतिमयी व शिखावलमालिका हृदिनुतस्य रूचिं व्यघात्।।
विकचपाटलपुष्पकदम्बकं ह्युपरिसारित कंकपाणिना।
मुकुलजालमुपेक्ष्य विचिन्वती वरतनूरतनूपुरका वभौ।।

विवाहिता सौन्दर्य— वाल्मीकि ने सीता के सौन्दर्य का भास्वर रूप में

(1) जा.जी.3/17,27,42 (2) जा.जी.6/4,5,6

चित्रांकन किया है। सीता देवांगना सा जिसका रूप साक्षात् मूर्तिमती लक्ष्मी सी प्रतीत होती है देवकन्या, गन्धर्व कन्या, नागकन्या अथवा अप्सराओं का रूप उसके सामने तिरस्कृत है। विशाल नेत्र तप्त काचंन वर्णाभ सीता अत्यन्त मनोरम रूप में चित्रित की गई है-

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वेदेवा सुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमना श्रणु।।[1]
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा।
श्यामा समविभक्तंगी स्त्री रत्नं रत्नभूषिता।।
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी।
देवतेव वनास्यास्य राजते श्रीरिवा परा।।[2]
तप्तकांचन वर्णाभा रक्तंगनखी शुभा।
सीता नाभ वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा।।

राजेन्द्र मिश्र ने सालंकारा सीता सौन्दर्य की दीप्ति का जो वर्णन किया है उसके सामने वन्यसुषमा में प्रातः कालीन का प्रकाश भी लघु प्रतीत होता है-

विभूषणान्येवयूनि धृत्वा निवीतगूढा वधुकानुरूपा।
अनन्तविच्छिन्तितति दधाना विदेहजाऽभासत देवनेव।।[3]
प्रभातमार्तण्डरूचिप्रलीना हिमाचल कीरिव वेषरम्या।
प्रसूनपुत्र्जोपहितेव वाही रराज रोचिष्णुरसौ वधूती।।

कहना नहीं होगा कि आलोच्य कवियों ने सीता सौन्दर्य का नख-शिख सौन्दर्य पद्धति पर चित्रांकन तो नहीं किया किन्तु आंगिक विशेषण, शोभा, लावण्य, दीप्ति, विब्बोक, कुट्टमित, मुट्टमित दीप्ति आदि का वर्णन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किया है। राजेन्द्र मिश्र ने वयः सन्धि, कैशोर्य और युवती रूप के साथ मुग्धा नायिका सीता के सौन्दर्य का वहुविध वर्णन किया है जबकि वाल्मीकि ने सीता सौन्दर्य वर्णन में संयम से काम लिया है।

प्रेमिका रूप- वाल्मीकि रामायण में सीता के दाम्पत्य प्रेम का प्रादुर्भाव साहचर्य जनित रूप में वर्णित है जहाँ सीता विवाहोपरान्त राम के साथ अयोध्या एवं वनवास समय में गार्हस्थ जीवन व्यतीत करती है। परवर्ती रामकाव्यों में पूर्वराग अवस्था के विकास

(1) वा.रा.3/31/29,30 (2) वही 3/34/16,17 (3) जा.जी.8/53,54

होने पर कवियों ने कृष्ण कथा के साथ ही रामकथा में पूर्वराग रूप का आर्विभाव किया है। राजेन्द्र मिश्र ने प्रसन्न राधव, क्षलित रामायण आदि के अनुकरण पर सीता-राम के पूर्वराग जनित श्रृंगार का बहुविधि वर्णन किया है। विवाहपूर्व सीता पितृाज्ञा से गौरीपूजन हेतु मंदिर जाती है, जहाँ वाटिका दर्शन एवं पुष्प चयन हेतु आगत राम के रूप को देख स्तब्ध हो जाती है। कवि ने प्रथम दर्शन जनित आवेग, जड़ता, आश्चर्य, उद्दाम काम भाव का वर्णन कर राम-सीता के मध्य वाचिक प्रणयालाप का वर्णन किया है-

पदनखाग्र समुद्धतरेषुभिर्निजमनोजरूजामपलायिनी।
लघुमुर्हुमितं समयं तदा युगमिवानुवभूवविदेहजा।।[1]
न च ससार पुरो न च प्रष्ठतो न खलु दक्षिणतो न च वामतः।
उपरि नैव ददर्शन वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवाजानि जानकी।।
चिबुकमुन्नययत्यथ राघवे पुलकजाततनूरुहचेतने।
वृत्तिनिलीन सखीजन मण्डलैः स्फुटमहासि जितंन्विति वादिभिः।।

आदर्श पत्नी रूप—सीता के शुचिपूत, पवित्र, मेध्य, उज्ज्वल रूप के मूल में उनका अटल पातिव्रत धर्म है। विवाह के पश्चात अयोध्या निवास, वन-गमन, सीता-हरण, अशोक वाटिका, अग्नि परीक्षा, पुनः निर्वासन और पृथ्वी-प्रवेश उनके इस रूप के लिये कसौटी सिद्ध हुआ है। सीता की मान्यता है कि इस लोक और परलोक में नारी की गति उसका पति ही है-

भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरूपर्पभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तत्यमित्यपि।।[2]

सीता के माता-पिता, सास कौशल्या, अनसुया आदि गुरूजनों ने अपने शिक्षोपदेश से इसी धारणा को दृढ़ किया है "प्रियेषु सौभाग्य फलेषु चारूकाम" में पत्नी का रूप सौंदर्न्य उतना कारक नहीं जितना कि उसकी अटल पति भक्ति है। सीता रूप गर्विता तो नहीं किन्तु पति गर्वान्विता है, वह उसके प्राण है वह सुख, दुःखानुगामिनी है और इसी में उसे गौरव है-

पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम।
काममेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम्।।[3]

---

(1) जा.जी.6/56,57,59 (2) वा.रा.2/27/5 (3) वा.रा.2/29/6,16,17,18

शुद्धात्मन् प्रेम भावाद्धि भविष्यामि विकल्मसा।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम्।।
प्रत्यभावे हि कल्याणः संगमो में सदा त्वया।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्यणानां यशस्विनाम्।।
इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा।।
द्युमत्सेन सुतं वीरं सत्यवत्तमनुव्रताम्।
सावित्रीमिव मां विद्धित्वमात्मवशवर्तिनीम्।।[1]

राजेन्द्र मिश्र ने सीता के कुछ क्रिया-कलापों का उल्लेख कर उनके इस रूप की व्यंजना इस प्रकार की है-

प्रातरेव समुत्थाय कृतपादाभिवन्दना।
प्राणेश्वरस्य श्वश्रूणां श्वसुरस्थापि धीमतः।।[2]
कल्पवर्तं विनिर्माय भोजयामास साग्रहम्।
सर्वान् कुटुम्बिनो बाला सर्वकल्याणशंसिनी।।

सीता राम के आदर्श गाढ़स्थिक रूप का चित्रांकन वाल्मीकि रामायण में अरण्य काण्ड में हुआ है, जहाँ सीता राम के साथ वानस्पतिक वैभव कुंजर की वक्रक्रीडा, झरनों का मधुर गुंजार सुनकर आह्लादित होती है।

तात्पर्य यह है कि दोनों कवियों ने परिस्थितिवशात् अथवा घटना की कल्पना कर सीता के आदर्श पत्नी रूप को चित्रित किया है। यह चित्रांकन जानकी जीवनम् में अप्रत्यक्ष शैली और वाल्मीकि रामायण में प्रत्यक्ष शैली के रूप में किया गया है। इसी सतीत्व, पतिव्रता धर्म का निष्ठापूर्वक निर्वहन से ऐसा प्रेम प्रसाद निर्मित हुआ है जो वियोग के झंझावात में स्थिर रह सका है। सीता हरण और राज्याभिषेक के पश्चात उनका निर्वासन, सीता का विवर प्रवेश इसी के श्रेष्ठतम् निदर्शन हैं। कौशल्या, सुमन्त्र, लक्ष्मण, अनसुया आदि पात्रों के माध यम से सीता की अनन्यता अपने भव्यतम रूप में चित्रित हुई है।

---

(1) वही 2/30/6 (2) जा.जी.9/65,66

नैतिक गुण सम्पन्न

रामकथा भारतीय जीवन की जनगाथा, लोकगाथा है, चरित्र की महत् प्रतिष्ठ है, इसनें नारी चरित्र के जितने उज्ज्वल पक्ष हो सकते हैं उनके आदर्श रूप का चित्रांकन हुआ है। नारी चरित्र में नैतिक मूल्यों की व्यंजना भी दोनों कवियों ने समान रूप से किया है। वाल्मीकि रामायण में सीता को नारी सुलभ लज्जा से समन्वित सुशीलता, मृदुता रूप में चित्रित किया है। सुव्रता, सुधर्माचारिणी रागद्वेष से रहित जितेन्द्रिन्य, परमतेजस्विनी, दृढ़ साहसी, निर्भीक हृदय, एवं गौरव शील रूपों का उल्लेख कवियों ने किया है कुछ उदाहरण द्रष्ट्व्य है–

1. **लज्जाशीला–** ईषत्स लज्जमानांतामध्यारोपयत्।[1]

2. **सुशीलता–** स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारयेत्वा तु पल्वम शिक्षये।
न कथंचन सा कार्या गृहीत धनुषात्वया।।[2]

3. **दृढसंकल्पवती–** रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन।
सीताया वचनं श्रुत्वा परूषं रोमहर्षणम्।।[3]
न मानुषी राक्षसस्य माया भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वान करिष्यामि वो वचः।।[4]

4. **तेजस्विता–** यन्नेत्र दीप्ताग्निमयाऽभिभूतश्शशाक नो स्प्रष्टुमसौ दिशास्यः।[5]

इस प्रकार सीता चरित्र में भारतीय नारी के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा, गुणों के उल्लेख या कथा के माध्यम से दोनों कवियों ने किया है। धर्म का प्राणपण से पालन करने वाली सीता जाज्वल्यमान साक्षात् ध्रुव नक्षत्र है उनसे असाधारण पातिवृत्य धर्म, त्याग, शील, अभय, शान्ति, क्षमा, आर्जव, कर्त्तव्य परायणता, सेवा तत्परता, संयम, सद्व्यवहार, शौर्य, सहस की शतसः किरणे विकीर्ण होती हैं।

5. **आलौकिकता–** वाल्मीकि रामायण में राम ऐतिहासिक महापुरूष के साथ ही साथ विष्णु के अंश कहे गये हैं।

इसी से औपुनिषाद ब्रह्म का विकास परवर्ती काव्यों में दिखाया गया उसी प्रकार सीता भी अंशावतारी रूप में चित्रित है। यह आलौकिकता उनके जन्म की कथा एवं वेदवती के शाप कथा में से परिलक्षित होती है। भूमिजा सीता की कथा वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम्

---

(1) वा.रा.2/53/16/2 (2) वही 3/9/24 (3) वही 3/56/23 (4) वही 4/25/3 (5) जा.जी.18/54/2

में समान रूप से हुई है इसी प्रकार वेदवती की कथा में उन्हें अवतारी या लक्ष्मी के रूप में चित्रित किया गया है–

शठतोऽहं वेदवत्या च यथा सा धर्षिता पुरा।
सेयं सीता महाभागा जाता जनक नन्दिनी।।[1]
अयोनिजां क्षेत्र कृषि प्रजातामन्यामपि त्वं श्रुतवा नसिप्राक्?
कन्यामुदारां गुणरूपयुक्तां सीता सदृक्षीं यदि तद् वदेथाः।।[2]
अहं निधन कारणं शठ! भवामि ते निश्चितं।
ज्वलन्त्यधिचितं पुरा यदपि वेदवत्याहमाम।।[3]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने सीता चरित्र को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते–करते उसे आदर्श के महत्तम रूप तक ले गये तो राजेन्द्र मिश्र ने संस्कृत के श्रृंगार प्रधान अलंकृत काव्यों के अनुरूप श्रृंगार प्रिया रमणी रूप में सीता का विकास करते–करते श्रेष्ठ आदर्श आलौकिक तत्व सम्पन्ना रूप का चित्रांकन भारतीय गृहस्थ धर्म की पृष्ठभूमि के रूप में किया है। सीता चरित्र की महत्ता निरूपित करते हुये श्री निवास शास्त्री ने लिखा है–

She is unap prachable-All the Womany Attra Ctions, Deauly, Tenderness of nearly, comp assion of the Exteme Typs, Eidelety, Wisd on of the Truest Type, Courage, Endurance all These Find a harmonious Abode.[4]

2. सुमित्रा

प्रसिद्ध रामकथा वेत्ता वी0 शास्त्री ने सुमित्रा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुये लिखा है कि–"वाल्मीकि रामायण की कौशल्या राम के मातृत्व से गौरवान्वित है परन्तु सुमित्रा अपने आदर्श नारीत्व से, उसका चारित्रिक स्तर कौशल्या से बहुत ऊँचा है रामायण के समस्त पात्रों में वही राम के चरित्र मर्म को सबसे अधिक समझती हैं। इस महाकाव्य की सर्वोत्तम सूक्तियाँ और श्रेष्ठतम उद्‌गार उसी के मुख और हृदय से प्रस्फुटित हुये हैं।"[5]

रामकथा में सुमित्रा का चरित्र संक्षिप्त, सारगर्भित, मार्मिक रूप में चित्रित है उसकी चरित्रगत विशेषताओं का उल्लेख करते हुये कहा गया है "वह स्वभाव की निश्छल उसमें

(1) वा.रा.6/60/10,11 (2) जा.जी.18.52 (3) वही 14/54 (4) लेक्चर्स ऑन रामायण पृ0–129 (5) लेक्चरर्स आन रामायण, वी0शास्त्री पृष्ठ सं0–427

असीम त्याग भाव और धर्म निष्ठता की गरिमा संजोये हुये है।"[1]

सम्पूर्ण रामकथा में सुमित्रा ही एकमात्र ऐसा चरित्र है जो आदर्श के यूटोपिया रूप को प्रतिबिम्बित करती है, जिसका तात्पर्य यह है कि शुद्ध, श्रेष्ठ, आदर्श रूप में सुमित्रा का चरित्र ही प्रस्तुत हुआ है जिसमें दौर्बल्य के एक भी लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। यह विशुद्ध एकांगी आदर्शवाद युक्त चरित्र है इसीलिये रामकथा के मर्मज्ञ आलोचकों को यह यथार्थ की भूमि में अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

सुमित्रा के चरित्र में चार तत्व दिखाई देते हैं-आदर्श पत्नी, आदर्श सपत्नी, आदर्श माता, आदर्श विमाता। इन्हीं रूपों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है-

आदर्श पत्नी– सुमित्रा दशरथ की पत्नी है यद्यपि कैकेयी की आसक्ति के कारण उसे पति का सामीप्य, सानिध्य और प्रेम अप्राप्त है, इस उपेक्षा को धैर्यपूर्वक सहन करती है जबकि कौशल्या को यह उपेक्षा असह्य है। दशरथ मृत्यु के समय अपने हृदय की अरन्तुद दशा व्यक्त करती है-

कौशल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रश्म तेत तुर्धरधीतले।।[2]

आदर्श सपत्नी–कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा परस्पर सपत्नियाँ हैं। कौशल्या और कैकेयी में सापत्न्य द्वेष चित्रित है वन गमन के समय कौशल्या कैकेयी के प्रति कटूक्तियाँ करती हैं किन्तु सुमित्रा का हृदय निश्छल रहा उसने कौशल्या का सदैव सम्मान किया ज्येष्ठा सपत्नी के रूप में उसका आदर किया और पुत्र वन गमन के समय में भी उसने अपने धैर्य की परीक्षा दी-

आदर्श माता– पायस विभाजन के अनुसार सुमित्रा ने लक्ष्मण-शत्रुघ्न युग्म को जन्म दिया और उनका मातृत्व फलीभूत हुआ। सुमित्रा का एक पुत्र लक्ष्मण राम का और दूसरा पुत्र शत्रुघ्न भरत का अनुवर्ती बना। इस प्रकार सुमित्रा के मातृत्व में सुख और दुःख अपने चरम रूप में एक ही साथ दिखाई पड़ता है। राम-वनगमन के समय उनका आदर्श रूप इस प्रकार व्यक्त हुआ है वह लक्ष्मण से कहती हैं कि-"राम को दशरथ और सीता को मुझे मानकर हे पुत्र! तुम सुखपूर्वक जंगल जाओ।"

---

(1) राम कथा के पात्र-म0ह0रजूरकर पृष्ठ सं0-433 (2) वा.रा.2/65/22

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।

अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्।।[1]

आदर्श विमाता—सुमित्रा आदर्श विमाता है।वनवास प्रकरण में उनका तेजोदृप्त विवेकशील एवं धर्मनिष्ठ रूप दिखाई देता है वे राम के उत्तम गुणों की प्रशंसा करती हैं-

य श्रीः शौर्यं च रामस्य या च कल्याणसत्त्वता।

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।।[2]

श्रियाः श्रीश्च भवेद्ग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमाः।

दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।

तस्य के ह्यगुण देवि वने वाप्यथवा पुरे।।

कहना नहीं होगा कि दशरथ परिवार में कैकेयी निकृष्ट नारी, कौशल्या मध्यम कोटि की नारी है तो सुमित्रा आदर्श उत्तम कोटि की नारी है यही उसका सर्वाधिक महत्व है।

3. कैकेयी

महाराज दशरथ की कनिष्ठा पत्नी कैकेयी मूलतः वृद्धस्थ तरुणी आर्या का जीवन्त उदाहरण है। अपने पूर्ण जीवन में वह दशरथ की प्राणप्रिया उसके केलिबिलास की सामग्री ही नही अपितु वीर क्षत्राणी रूप में वाल्मीकि रामायण में चित्रित है। प्राच्छन्न रूप से विवाह के समय उसका पुत्र ही युवराज एवं राजा बनेगा यह शर्त केकेय नरेश और दशरथ के बीच थी तथा मंथरा उसकी हितचिन्तिका रूप में नियुक्त होकर अयोध्या आयी थी।

वाल्मीकि के अनुसार कैकेयी के मन में एक तरफ रूपगर्विता और अहं का भाव था तो दूसरी तरफ पुत्र जन्म के पूर्व पायस विभाजन में प्राप्त अंश से उसके आन्तरिक सन्तुष्टि का वाल्मीकि ने बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

सुन्दरी पत्नी कैकेयी के अहं की तुष्टि इस बात में थी कि दशरथ उसका दास ही नहीं वरन् दासानुदास है और स्त्रैण्य की सीमा का स्पर्श करता हुआ पति था। अतः यह स्वाभाविक ही है कि राम के राज्याभिषेक की स्वीकृति उससे ली जाती जवकि इसकी सूचना उसे मंथरा से मिलती है जो उसे आगानी कूटनीति का स्वरूप, कौशल्या की चतुरता एवं भरत की यन्त्रणा की कल्पना कर वह स्वत्व प्राप्त करने के लिये कोपभवन में जाकर राम

(1) वा.रा.2/40/9 (2) वही 2/44/1,4,16

वनवास का कारण बनती है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री स्वाभाव सुलभ विशेषतः आर्तकामी, वृद्धकी, तरूणभार्या होने के कारण अभिमान आदि अवगुण होने के बावजूद राम-वनवास का निमित्त बनती है। यह उसका स्वभावगत दोष नही। उसके चरित्र की विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

कैकेयी के आचरण में वात्सल्य का प्रचुर अंश दिखाई देता है। अपने पुत्र की हित कामना उनके दुराग्रह की प्रेरणा थी, फिर भी यह कहना कठिन है कि उस अवसर पर कैकेयी का आचरण सर्वथा वात्सल्य प्रेरित था। वात्सल्य ने कैकेयी को दुराग्रह के लिए प्रेरित अवश्य किया था किन्तु वात्सल्य से कहीं अधिक बलवती प्रेरणा कैकेयी की अहं चेतना थी जो अपने तिरस्कार की आशंका के रूप में कैकेयी को आत्मरक्षा के लिये प्रेरित कर रही थी।

कैकेयी के हृदय में जो बात घर कर गयी थी वह यह थी कि राम के राजा होने पर उस पर संकट आ जायेगा अब तक उसने जिस प्रकार कौशल्या का तिरस्कार किया है उसी प्रकार अब वह तिरस्कार की पात्र बन जायेगी। कौशल्या को राजमाता के पद पर देखना उसके लिये असहाय है-

एकाहमपि पश्येयं यद्यहं राममातरम्।
अंजलि प्रतिगृह्णन्तीं श्रेमो ननु मृतिर्मम।।[1]

वैधत्व का दुःख भी अहं चेतना में कहीं खो गया जान पड़ता है। भरत के अयोध्या पहुँचने पर वह दशरथ की मृत्यु का समाचार इस प्रकार देती है मानो किसी सामान्य बात की चर्चा कर रही हो-

या गतिः सर्वभूतानां तां गति ते पिता गतः।
राजा महात्मा तेजस्वी यायूजूकः सतां गतिः।।[2]

अपने आग्रह की सफलता के समक्ष दशरथ की मृत्यु का प्रसंग उसे नगण्य जान पड़ता है-

तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद् धीरमप्रियम्।
अजानन्तं प्रजानन्ती राज्य लोभेन मोहिता।।[3]

यदि राम के निर्वासन को छोड़कर कैकेयी के व्यक्तित्व पर विचार किया जाय तो वहाँ

---

(1) वा.रा.2/12/48 (2) वही 2/62/15 (3) वही 2/62/14

उसका चरित्र दूसरे छोर पर दिखाई देता है। देवासुर संग्राम में राजा दशरथ की रक्षा के प्रसंग में तथा भड़काने का प्रयत्न करती हुई मंथरा के समक्ष राम के प्रति वात्सल्य प्रकाशन के सन्दर्भ में कैकेयी के चरित्र का दूसरा ही पक्ष उभरता जान पड़ता है उस पक्ष में कहीं कालिमा का नाम ही नही है-

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम् शुश्रूषते वहु।।[1]

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं यथा भ्रातृं स्तुराघवः।।[2]

अन्ततः कैकेयी के व्यक्तित्व का समझने के लिये भरत द्वारा कथित थोड़े से शब्द पर्याप्त है-

क्रोधनामकृतप्रज्ञां दृप्तां सुभग मानिनीम्।
ऐश्वर्य कामां कैकेयीम नार्यामार्य रुपिणीम्।।[3]
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्च्याम्।
यतोमूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः।।

इसी प्रकार जानकी जीवन में उसकी दुःचिन्ता का वर्णन कवि ने किया है। वह राम के राज्याभिषेक से खुश है किन्तु उसे ऐसा लगता है कि राजा दशरथ ने उससे सलाह न लेकर उससे छल किया है और उस पर विपत्ति आने वाली है-

न किं रामभद्रे ममास्ति प्रगाढं परं प्रेम पूतं दृढं निर्विकारम्?।
अहं प्रत्यभायोन्मुखी ना भविष्यं तदीयाभिषेको यदिख्यापितः स्यात्।।[4]
यदीयाननेन्दुं चकोरीव नित्यं निपीयैव ये धन्यमासीत्प्रसूत्वम्।
तमेवात्यजं जीवितं जीवितानां कथं नाभिषिक्तं मुदाऽलोकयिष्यम्।।[5]

कैकेयी को जो बात ज्यादा पीड़ा दे रही थी वह यह थी कि राम के राजा बन जाने पर वह दूध में मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दी जायेगी-

मनोध्वंसिनी बुद्धिरासज्जिरायां गता सावि हस्तद्वये पट्ट राज्ञयाः।
यदीयस्सुतो यौवराज्यं भुनक्ति प्रभो! क्षीरमक्षीव दूरीकृताऽहम्।।[6]

---

(1) वही 2/8/18 (2) वही 2/8/19 (3) वही 2/92/26-27 (4) जानकी जीवनम् 10 44 (5) वही 10/45 (6) 10/58

पाश्चात्य मनोविश्लेषकों फ्रायड, युंग आदि ने दड, इगो के संघर्ष को आन्तरिक संघर्ष बताकर व्यक्तित्व के बाह्य क्रिया-कलापों के कारकों कहा है। अभिराज मिश्र ने इस तथ्य को हृदयांगय कर कैकेयी के मन में उत्पन्न स्वतिस्कार जन्य दुःचिन्ता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। कहना नहीं होगा कि कैकेयी रूपगर्विता, असाधारण सुन्दरी, दशरथ की प्राणप्रिय, वीर क्षत्राणी, युद्ध क्षेत्र में दशरथ के प्राणों की रक्षा करने वाली, कैकेयी मनोविज्ञान के क्षेत्र में इगो का प्रतीक बनकर आयी है अन्ततः उसे वैधन्य जैसे दुःख का सामना करना पड़ा।

4. कौशल्या

दशरथ की पटरानी कौशल्या पति के साथ अश्वमेघ यज्ञ में दीक्षित होकर हर्वि भाग का आधा अंश प्राप्त कर बारह मास गर्भ धारण के बाद राम जैसे तपस्वी पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार वह देवमाता अदिति के समान सुशोभित हुई–

कौशल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामितेजसा।
यथा वरेण देवनामदितिर्वज्रपाणिन।।

उनके चरित्र की दो विशेषताएँ उल्लिखित हैं–दशरथ पत्नी और राम-माता। दशरथ पत्नी के रूप में उनकी झांकी बहुत स्पष्ट नहीं है वह पट्टमहिषी, सुन्दरी और सहधर्मिणी के रूप में चित्रित है। राम-माता के रूप में उनका चारित्रिक सौन्दर्य भव्य एवं उदात्त रूप में दोनों काव्यों में चित्रित हुआ है।

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के जाने की सूचना सुनकर राम-माता कौशल्या मूर्च्छित हो जाती हैं। सद्यः प्रसूतः गौ की तरह उनके मातृत्व का उल्लेख जानकी जीवनम् में इस प्रकार है–

रामे गतेऽपहृतनूतननन्दनैवं, गृष्टिः पयोभरतिरोहितमेदिनीका।
क्रीडत्सरोवरवटयूथविराव तुल्यै, दर्म्भारवैरिव पुरीपुनराजुहाव।।[1]

पुत्र विषयक उत्कर्ष हेतु हर माता धार्मिक सदानुष्ठानरत रहती है कौशल्या भी इसका अपवाद नहीं राम युवराज सूचना प्राप्त कर वह जनार्दन का ध्यान करती है–

प्राणायमेन पुरूषं ध्यायमाना जनार्दनम्।[2]

---

(1) जा.जी.4/35 (2) वा.रा.2/4/33/2

अन्यत्र वह विष्णु पूजा, अग्नि होत्र, और तर्पण यज्ञ करती हुई चित्रित की गयी है-

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रत परायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला।।[1]

किन्तु भाग्यवासात उनके जीवन में राम-वनगमन दारूण वज्रपात हुआ इस अवसर पर कौशल्या विचलित हो उठती है क्योंकि उनकी लालसाओं, महत्वाकांक्षाओं पर कुठाराघात होता है। मर्माहत कौशल्या का धैर्य छूट जाता है वे राम से कहती हैं कि उनके परदेश चले जाने पर अपनी सौतों से तिरस्कृत होकर हृदय विदीर्ण करने वाले वाक्यों को सुनेगी उनका यह हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता-

अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः।।[2]
अत्यन्तं निगृहीतास्मि भुर्तुर्नित्यमसम्मता।
परिवारेण कैकेय्या समा वात्यथवापरा।।
ममैव नूनं मरणं न विद्यते,
न चावकाशोऽस्तियमक्षमेयम।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति,
प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव।।

वाल्मीकि रामायण में इस अवसर पर उनकी आन्तरिक मनोव्यथा का निदर्शन यथार्थ रूप में किया है। कौशल्या शोकाकुल होकर संज्ञाशून्य हो जाती हैं[3] वह भाग्य को अपने लिये विपत्ति कारक मानकर उसके कारण रूप कैकेयी[4], भरत[5] और स्वयं पति दशरथ[6] को मानती हैं। इस सापत्न्य द्वेष के कारण उन्हें यावज्जीवन दुःख सहज करना पड़ा था और इस महादुःख के कारण कौशल्या पतिदोष अन्वेषण में भी प्रवृत्त दिखाई देती हैं। राम के वन चले जाने पर भरतागमन पर कौशल्या का क्रोध इस प्रकार वर्णित है-

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तकण्टकम्।
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।।[7]

---

(1) वही 2/10/15 (2) वा.रा.2/20/40,42,50 (3) वही 2/21/5 (4) वही 2/21/22 (5) वही 2/75 11-77 (6) वही 2/61/26 (7) वा.रा.2/75/11-13

प्रस्थाप्य चीर वसनं पुत्र मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी।।
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः।।

उक्त विवेचन का अर्थ यह नही है कि रामायण की दृष्टि में कौशल्या का चरित्र अपेक्षकृत निम्न है बल्कि कौशल्या में मानवोचित दुर्बलताएँ दिखाकर उच्चतर मातृत्व रूप की झांकी अंकित करना ही उनका लक्ष्य रहा है। मानवीय गुणों के साथ कौशल्या पतिव्रत्य धर्म की सम्यक ज्ञाता, नारी के विविध रूपों की व्याख्याता और मातृत्व के चरम विकास की धरित्री है। उनके सास स्वरूप की भी मंगलमयी झांकी अंकित है वह सीता को लेकर बहुत चिन्तित दिखाई देती हैं।

निष्कर्ष यह है कि दोनों काव्यों में कौशल्या के पत्नी रूप में झांकी समान रूप से चित्रित है। मातृत्व रूप का चित्रांकन जानकी जीवनम् में कम वाल्मीकि रामायण में यथार्थवाद की भित्ति पर हुआ है। कौशल्या के चरित्र में पुत्र प्रेम अपने गरिमामय रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वाल्मीकि रामायण में उनके मानवीय रूप का यथातथ्य चित्रांकन है। सम्भवतः कवि की दृष्टि यह रही है कि कौशल्या का वास्तविक और आदर्श रूप राम जैसे पुत्र की माता होने में है। उनकी करुणा, सहानुभूति धैर्य भरत के प्रबोधन के समय दिखाई पड़ती है यही उनका आदर्श रूप है।

5. मंथरा

महाकाव्य के विस्तृत कथानक में कुछ पात्र केवल कथा सन्धियों में किंचित काल के लिये आर्विभूत होकर सदा के लिये तिरोहित हो जाते हैं। मंथरा उन्हीं में से एक है।

मंथरा के रूप में वाल्मीकि दास-वर्ग की मनोरचना को बड़े सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से अंकित किया है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि-"बड़े आदमियों के सेवक भी उनके साथ तादात्म्य की अनुभूति द्वारा अपने आप में महत्ता का आरोप कर अपने अहं को संतुष्ट करते हैं।"[1]

मंथरा ने अपने आपको कैकेयी के [illegible] इसी तरह सम्बन्धित कर लिया था। राम

(1) एन इन्ट्रोडक्शन टू साइक्लाजी-[illegible]

के राज्याभिषेक से उसे जो संकट दिखलाई देता है उसमें बहुत कुछ अपनी प्रभाव हानि की आशंका थी।

पात्रों के वर्गीकरण करते समय मंथरा को यथार्थवादी पात्र कहा गया है। भरत और कैकेयी की हित साधिका होने पर भी उस पर लांछन लगाया है। वाल्मीकि ने मंथरा के विषय में जो कुछ भी कहा है वह धात्री, हित चिन्तिका का रूप परिलक्षित होता है। धाय से राज्याभिपेक सुनकर मंथरा अंगारों में लोटने लगी वह कैकेयी को मूढ़ कहकर सम्बोधित करती है-

सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी।
शयानमेव कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत्।।[1]
उतिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वायभिवर्तते।
उपपल्तमद्योधेन नात्मानमव बुध्यसे।।[2]

राजेन्द्र मिश्र ने मंथरा की कायिक दशा का एवं अनुभावों का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है-

पदास्कन्दिता कालसर्पीव रोषाच्छवसन्ती द्रुतं लोहिप्रेक्षणाऽसौ।
स्मितैर्नन्दिता भूपपत्न्या सहेलं विपृष्टा कथं मन्थरे खिद्यसे त्वम्।।[3]

वाल्मीकि की दृष्टि में मंथरा वाक्य विशारदा और कैकेयी की हितसाधिका है-

सास्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोक समन्विता।
दह्यमानालेनेव त्वद्धितार्थभिदागता।।[4]
तव दुःखेन कैकेयि मम दुःखं महद् भवेद।[5]
त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदिह न संशयः।

वह राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति के अनुसार कैकेयी के हृदय में विष वपन करती है क्योंकि वह कैकेयी के मायके से आयी हुई उसने अपने सटीक व्याजोक्ति से कैकेयी के हृदय को परिवर्तित कर दिया। राजेन्द्र मिश्र ने दूध की मक्खी का उदाहरण प्रस्तुत कर जीवित कैकेयी की दुर्दशा का सजीव चित्रांकन किया है-

सा एवाधुना क्षीरमक्षीमिव त्वां क्षिपत्येव,
दूरे ततः स्तम्भितास्मि।[6]

स्मरणीय है कि दूध में मक्खी तैरती जीवित अवश्य रहती है किन्तु मृत्युतुल्य और

(1) जा.जी.10/13 (2) वही 10/14 (3) जा.जी.10/32 (4) वा.रा.2/62 (5) वही 2/22 6 जा.जी.10/39/2

उपेक्षित होकर उसे लोग बाहर फेंक देते हैं। जो रानी दशरथ की प्राणप्रिय, जिसके भ्रकुटि निक्षेप से दशरथ आशंकित हो जाते थे, अपमानिता होने पर उसकी कैसी दशा होगी। राजेन्द्र मिश्र ने कैकेयी की इसी दशा का उल्लेख कर उसे वर याचना हेतु प्रस्तुत किया है।

कहना नहीं होगा कि दोनों कवियों ने मंथरा की मूल प्रवृत्ति का और उसके व्यवहार का एक जैसा वर्णन किया है। वाल्मीकि में मंथरा द्वारा कैकेयी को कटु शब्दों से सम्बोधित किया गया है जबकि राजेन्द्र मिश्र की मंथरा कान्तासम्मित वाक्य की प्रतीक है।

6. शूर्पणखा

रामकथा में शूर्पणखा सन्धि स्थलीय पात्र है जिस प्रकार मंथरा वनवास का कारण बनी उसी तरह शूर्पणखा युद्ध का कारण बनी। वाल्मीकि की शूर्पणखा में दो पक्ष प्रमुख रूप से चित्रित हुये हैं, वह वासनाभिभूत, स्वैर्णी का प्रतीक है एवं राजनीति विशारदा है। उसके सौन्दर्य का चित्रांकन करते हुये वाल्मीकि ने शूर्पणखा को कमलवर्णिनी, विशाललोचने वरोरूहे इत्यादि विशेषणों से युक्त किया है। वह पहले राम से तत्पश्चात विफल मनोरथ होने पर लक्ष्मण से रतियाचना करती है। सीता को खाने की बात कहती है तभी लक्ष्मण तलवार से उसके नाक-कान काटकर उसे विरुपति कर देते हैं। अपना परिचय देती हुई वह कहती है-

साब्रवीद् वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता।
श्रूयतां राम तत्वार्थ वक्ष्यामि वचनं मम्।।[1]
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अरण्यं विचारामीदयेका सर्व भयंकारा।
रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोतमागतः।।

जानकी जीवनम् में भी उसके स्वैर्णी रूप का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

याचनामयि कान्त! पूरय में रतिज्ञः कामिनीहृदयार्तिनाशपरो भवत्वम्।
पादपद्य सर्पया सुखमपर्यन्ती त्वत्कृते भवतिऽन्विता सततं समृद्धया।।[2]

दोनों कवियों ने इसे कामरुपा कह मनुष्य की आन्तरिक प्रचण्ड दुर्दमनीय कामभाव और उसका कारुणिक अन्त समान रूप से दिखाया है। वाल्मीकि ने उसे युवावस्था में ही विधवा बताया है। शूर्पणखा खर-प्रदूषण के पास जाकर प्रतिहिंसा के कारण उसे उकसाती है

(1) वा.रा.3/17/19,21 (2) जा.जी.11/49

और इस कथा को युद्ध तक पहुँचा देती है।

7. त्रिजटा

त्रिजटा लंका मे अशोक वन-वाटिका की मुख्य रक्षिका है। सीता हरण के पश्चात रावण का प्रणय-निवेदन जब निष्फल हो गया तब वह त्रिजटा पर अपनी सफलता का भार सौंपता है।

वाल्मीकि रामायण में त्रिजटा अपने स्वप्न में राक्षसों के विनाश को देखती है। इस प्रकार आसुरी परिवेश में रहने पर भी त्रिजटा राम के पक्ष के प्रति सहानुभूति रखने वाली सात्विक वृत्ति की प्रतीक है। वह राजनीति परायण चतुरा नारी है। वाल्मीकि ने त्रिजटा को सूक्ष्मदर्शिणी कहकर उसके निरीक्षण कला की प्रशंसा की है-

अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपक्षये।
विरूपमपि चांगेषु सुसूक्ष्मपि लक्षणम्।।[1]

जानकी जीवन में त्रिजटा सीता से सहानुभूति रखती हुई कहती है-

ननु राक्षसवंशजाऽप्यहं तव दैन्यं विपदं विभावये।
त्वमसि प्रियजीवितान्तर शुभचारित्र्य प्रियार्पिता।।[2]

त्रिजटा सीता को आत्मोत्सर्ग से विरत करती है, कहना नहीं होगा कि त्रिजटा सन्नारियों के सतीत्व को पहचानने वाली राक्षस कुलोद्भव ऐसी नारी है जिसने अपने कार्य और व्यवहार से सीता को धैर्य वंधाया तथा युद्ध के समय रावण की माया के कारण दिखाये गये मृत राम के रहस्य को उद्घटित कर सीता को नव-जीवन प्रदान किया।

---

(1) वा.रा.4/27/48 (2) जा.जी.2/34

पात्रों का वर्गीय रूप

पिछले पृष्ठों में गौण पात्रों के अन्तर्गत राम के स्वजन जिसमें शत्रुघ्न, सुमन्त्र, निषादराज, जटायु, सम्पाति, भरद्वाज तथा रावण के सहायकों में मारीच, माल्यवान, खर, प्रहस्त तथा स्त्रीपात्रों में अनुसुया, स्वयंप्रभा, सुनयना, त्रिजटा कथानिष्ठ पात्र होते हुये भी विशिष्ठ चरित्र रखते हैं जिनके चरित्र चित्रण में प्रवन्ध विस्तारण का भय था और आलोच्य दोनों काव्यों में इनकी भूमिका भी सामान्य रूप से रही है इसीलिये इनको अलग स्थल नहीं दिया गया यहाँ पारिवारिक दृष्टि से उसके वर्गीय रूपों की चर्चा की जा रही है।

रामकथा में राम, रावण तथा विश्वामित्र के परिवारों की विस्तृत चर्चा है राजा दशरथ उनकी तीन प्रमुख रानियों उनके चार पुत्र, रावण तीन भाई, अनेक पुत्र-पौत्र से, बालि और सुग्रीव दो भाइयों का परिवार है। दशरथ परिवार में कैकेयी के सापत्न्य दोष के कारण जहाँ परिवार टूटा वहीं भरत त्याग के कारण परिवार विकास को प्राप्त हुआ है। इसके विपरीत रावण परिवार में रावण की अनीति के कारण विनाश को प्राप्त हुआ। सामाजिक वर्गीय रूप में देखें तो दोनों काव्यों में पिता-पुत्र, भाई, मित्र, श्वसुर, जामाता इत्यादि एवं नारी रूपों में माँ, प्रेमिका, पत्नी, सास, वधु, सहेली आदि सामाजिक प्रतिरूप मिलते हैं। दशरथ अच्छे शासक तो हैं किन्तु श्रेष्ठ पति और पिता नहीं बन सके तरूणी भार्या के आवेग में वे अपने श्रेष्ठ पद से स्खलित हो गये। जनक अच्छे पिता, श्वसुर, सफल हुये हैं क्योंकि उनकी पुत्रियों ने दोनों कुलों को पवित्र किया है। रावण अच्छा पिता, भाई, किन्तु अक्षम पति सिद्ध होता दिखाई देता है क्योंकि परदारप्रियता जहाँ उसके अहंन्यता का प्रतीक था वहीं दूसरी ओर अनैतिक रूप से हरण मन्दोदरी पत्नी की अवज्ञा से असफल पति सिद्ध करता है। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मन्दोदरी आदर्श माँ रूप में चित्रित है। राम जैसा वीर कष्ट सहिष्णु, धैर्यवान भरत जैसा वीतरागी, निस्पृह, मेघनाद जैसा विश्वविजेता पुत्रों को जन्म देने वाली माताओं का गर्भ सार्थक और धन्य हुआ है। वधु रूप में सीता सहित चारों बहनें, सुलोचना (मेघनाद) आदि वधुओं ने अपनी सासों को प्रसन्न कर अपने धर्म का निर्वाह किया है जिसमें सीता का अन्यतम स्थान है। वह प्रेमिका (जानकी जीवनम्), श्रेष्ठ पत्नी पातिव्रत धर्म की प्रतीक, लव-कुश जैसे पुत्रों (वाल्मीकि रामायण) को जन्म देने वाली आदर्श महिला के रूप में चित्रित हुई है।

निष्कर्ष यह है कि वाल्मीकि ने देव, मानव, असुर, कोल, किरात, ऋषि, साधारण प्रजा वर्गों का उल्लेख अपनी रामायण में किया है इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण का अध्ययन अलग से किया जा सकता है क्योंकि सामाजिक वर्गीय उसके सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का विश्लेषण किसी भी शोध प्रबन्ध में नहीं हुआ। शोधकर्त्री ने इसे उल्लेख मात्र कर आगे के लिये संकेत मात्र किया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से आलोच्य दोनों कवियों में कुछ साम्य एवं वैषम्य दिखाई पड़ता है। वाल्मीकि रामायण में राम और रावण को विशेष महत्ता प्राप्त है जबकि जानकी जीवन में सीता को केन्द्र बिन्दु बनाया है। वाल्मीकि में पात्रों के कथानिष्ठ रूपों की रक्षा करते हुये उनके आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य का चित्रांकन प्रत्यक्ष या परोक्ष कथन के रूप में करने के साथ ही घटनाओं का भी विवरण दिया है जबकि जानकी जीवन में ऐसा नहीं हुआ। दोनों काव्यों में पात्रों के सात्विक, राजस और तामसिक गुणों का भी उल्लेख है। राम जैसा पात्र भी सीता निर्वासन का दोषी बताया गया है। पात्रों के चरित्र चित्रांकन में भावात्मकता को ही एक मात्र कसौटी नही माना गया, वे कोरे काल्पनिक पात्र नहीं लगते अपितु यथार्थ की कठोर भूमि पर अवस्थित हैं और उनके चिन्तन में मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का आश्रय लिया गया है। लक्षणानुधावन के रूप में हम यह कह सकते हैं कि दोनों कवियों धीरोदात्त, धीरोद्धत धीर ललित, धीर प्रशान्त जैसे प्रतिमानों के आधार पर चिरित्र चित्रांकन करते हुये प्रतिनायक प्रतिनायिका रूपों में भी उनका चित्रांकन किया गया है इस दृष्टि से सुग्रीव को पताका नायक और विभीषण को प्रकरी नायक माना जा सकता है। हनुमान अंगद, मेघनाद ऐसे पात्र हैं जिन्हें सर्वत्र महत्ता प्राप्त हुई है। तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि और राजेन्द्र मिश्र ने पात्रों के चरित्र चित्रण में एक ओर प्राक्तन प्रणाली का उपयोग किया है वहीं दूसरी ओर अधुनातन चरित्र चित्रण के प्रतिमानों का भी ग्रहण मिलता है, क्योंकि वाल्मीकि के सभी पात्र यथार्थ प्रधान हैं जिनका विकास युगीन आवश्यकताओं, सांस्कृतिक मूल्य बोधों के प्रतीक रूप में हुआ है जैसा कि हम अध्याय के प्रारम्भ में प्रतीकात्मकता की चर्चा करते समय लिख आये हैं। सचमुच दोनों कवियों में महाकाव्योचित जीवन्त पात्रों का चित्राकंन दोनों कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से की है और उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई है।

चतुर्थ अध्याय

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में रसाभिव्यंजन का स्वरूप

राजेश्वर ने लिखा है-अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति''। तात्पर्य यह है कि कवि प्रजापति ब्रह्मा की तरह स्वयंभू क्रान्तदृष्टा और रससिद्ध होता है, क्योंकि जिस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा अपनी सृष्टि का सवर्तोभाव नियामक कहलाता है और इस संसार में अन्नमय कोष से लेकर आनन्दमय कोष की प्राप्ति के लिये जीव कर्मरत रहता है। उसी प्रकार कवि भी अपनी कविता में आनन्दोपलब्धि के लिये उसके साधनों का प्रयोग, उपयोग अपनी नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना से करता है।

काव्य पुरूष की चर्चा करते हुये उसके जीवित होने के लक्षणों में आत्मा की खोज काव्य सम्प्रदाय की यात्रा कहलाती है। उपनिषदों में जिसे 'रसो वै सः' कहा गया है उसी की उपलब्धि ''वाक्यं रसात्मकं काव्यं' में आचार्य विश्वनाथ प्रभृति विद्वानों ने की है। इस प्रकार काव्य पुरूष की आत्मा रसरूप होकर कनक, कुण्डल, वीरता, शौर्य आदि उनके आन्तरिक एवं बाह्य गुणों की अभिव्यक्ति हेतु अलंकार, रीति, वक्रोक्ति इत्यादि का स्थान निरूपित किया गया है।

भारतीय प्राक्तन आचार्यों में भामह, दण्डी से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक सभी ने महाकाव्यों में एक अंगी रस-विशेष रूप से श्रृंगार एवं वीर का उल्लेखकर शेष रसों का वर्णन उसके लक्षणों में गिनाया है।

भरतमुनि से लेकर अद्यावधि साहित्य शास्त्रियों ने काव्यतन्याविष्ट रस की व्याख्या भले ही स्वदृष्टि या सम्प्रदायानुसार की हो किन्तु सर्वमान्य शाश्वत सत्य है कि विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होता है। काव्य में रसाभिव्यंजन लक्षणा अनुधावन के अनुरूप ही न होकर कोई रससिद्ध कवि अपने काव्यों में ऐसी परिस्थितियों घटनाओं का संयोजन, संगुम्फन इस प्रकार करता है कि सहृदय पाठक निमग्न हो जाता है, यही रस की सर्वाधिक महत्ता है।

रामकथा ऐसी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कथा है जिसमें रस के सभी अवयव परिस्थितियाँ सहज ही उपलब्ध हो जाती है। वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ तो क्रौंचवध के परिणामस्वरूप ऋषि के करूणाविगलित श्लोक से माना जाता है अतः प्रायः प्राक्तन आचार्यो

ने इस कथा के मूल अंगी रस के मूल में करूण रस की उद्भावना की है। जवकि आचार्य प्रणीत काव्यास्त्रीय ग्रन्थों में शृंगार और वीर रस को महत्ता प्राप्त है। वाल्मीकि ने रामायण से पूर्व पौलत्स्य वध की सूचना देकर इसे वीर पर्यवसित काव्य का रूप देना चाहा होगा जवकि नारद प्रश्न से इसकी पुष्टि नहीं होती है। 'चारित्र्येण चकोयुक्तः' के उत्तर में नारद ने जिस काव्य का वर्णन किया है उसमें शृंगार की प्रधानता दिखाई देती है। जिसका सहायक रस वीर सिद्ध हुआ है यहाँ हम अंगीरस की चर्चा और विश्लेषण अन्त में करेंगे क्योंकि जानकी जीवन की कथा शृंगार रस संवलित है और वाल्मीकि रामायण की रचना से उसका दृष्टिभेद भी हैं।

प्रस्तुत अध्याय में विभाव, अनुभाव, संचारी भाव से युक्त आचोल्य दोनों काव्यों की रस की दृष्टि से समीक्षा कर प्राप्त स्थलों, उदाहरणों का विश्लेषण करेंगे तदुपरान्त संचारी भावों के साथ ध्वनि सम्प्रदायानुसार भाव दर्शन, रस ध्वनि, भाव सन्धि, रसदोष जैसे साम्य वैषम्य की चर्चा की जायेगी यहाँ यह कह देना अप्रासांगिक न होगा कि भावनावान कवि विभाव, अनुभाव, संचारियों की संयोजना स्वतः ही नहीं करता अपितु घटनाओं, परिस्थितियों के संयोजन से उसका विधान करता है। विभिन्न रसों के लक्षणों, उदाहरणों में प्राप्त संचारी भावों, अनुभावों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

शृंगार रस

प्रेमियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँचकर जव अस्वाद योग्यता को प्राप्त करता है तब उसे शृंगार रस कहते हैं। स्थायी भाव-रति नायक नायिका, आलम्बन-सखी, सखा, दूत, चन्द्र, उपवन, एकान्त स्थल आदि उद्दीपन-आलिंगन, चुम्बन, रोमांच, श्वेद, कम्प आदि अनुभाव-उग्रता, मरण और जुगुप्सा को छोड़कर शेष लज्जा, हर्ष, चिन्ता, व्रीड़ा आदि संचारी भाव है।[1] आचार्यो ने इसके भेद किये हैं संयोग शृंगार, विप्रलम्भ या वियोग शृंगार।

रामकथा में संयोग शृंगार के अनेक स्थल हैं वाल्मीकि ने अयोग या पूर्वराग शृंगार के अनेक स्थल हैं वाल्मीकि ने अयोग या पूर्वराग शृंगार का वर्णन नहीं किया क्योंकि उस समय तक साहचर्य जनित दाम्पत्य प्रेम मंजीष्ठराग को प्राप्त होता था जवकि जानकी जीवनम् में विवाह पूर्व अयोग या पूर्वराग शृंगार की नूतन उद्भावनायें संस्कृत के ललित काव्यों से

(1) रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण-डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित पृष्ठ-55

प्रभावित होकर किया है। वाल्मीकि ने विवाहोपरान्त श्रृंगार की चर्चा की है अतः रस की क्रमानुसार दृष्टि से हम पहले पूर्वानुराग के रूप में जानकी जीवनम् के उन स्थलों की समीक्षा करेंगे जहाँ क्रमशः नायक, नायिका, राम-सीता के मन में रूपाकर्षण तद्जन्य औत्सुक्य, पुष्पवाटिका में भेंट, सखियों का परिहास, राम की चंचलता, सीता की व्रीडा का अत्यन्त रसपेशल, मांसल वर्णन हुआ है। सम्भवतः कवि की इस मान्यता में मनोवैज्ञानिक आधार कार्य करता है कि रूपशक्ति जन्य आकर्षण या मोह आगे चलकर जिस दाम्पत्य रीति की सृष्टि करता है वह भावना सुदृढ़ भित्ति का कार्य करती है। कवि ने धनुष भंग के पूर्व सीता की व्याकुलता, अयोध्या में पति पत्नि की विहार की लीलायें, वनवास प्रसंग में दाम्पत्य रीति की विविधा छटाओं का वर्णन कर वियोग श्रृंगार की मंजीष्ठ राग की अभिव्यंजना की है यहाँ कुछ उदाहरण के लिये स्थल दृष्टव्य हैं-

पूर्व राग-राजेन्द्र मिश्र ने प्राक्तन आचार्य प्रणीत मुग्धा और वयंः सन्धि की अवस्थाओं के कौशेय पट की चिताकर्षक रूप वर्णन के लिये सीता की अज्ञात यौवना, मुग्धा नायिका ज्ञात यौवना के कुछ चित्रों को आलम्बन रूप में उपस्थित किया है-

इतीव सीता शिशुतैकसाक्षिर्णी व्यतीव्य बालोचितकाल श्रृड्.खलाम्।
कुमारिकाम्य रतिप्रबोधिर्नी सृतिम्मनोजस्य शनैरवापिता।।[1]
अथाधुनाऽपांगयुगप्रचारणं विलोककर्णान्तमर्कितं वभौ।
कपोलपाली युगलेऽपि पाट्लं प्रभिन्न कोषं समदृश्यताधुना।।
रति प्रवीजड्.कुरयुग्मसन्निभौ पयोधरौ वद्धसि वीक्ष्य वर्धितौ।
विदूरकन्दर्पकथा व्यथालसा दुरन्तवैलक्ष्यमवाप जानकी।।
नितम्वगुर्वी विनतांस सौष्ठवा सुमध्यमा चारू चकोर लोचना।
वशागतिश्चन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वज कन्याका न कम्।।

इसी प्रकार वन, उपवन, तीर्थ, मन्दिर इत्यादि स्थानों में नायक-नायिका की भेंट कराने को कथानक रुढ़ि के रूप में मान्यता प्राप्त है। दशरूपककार धनंजय[2] ने अयोग श्रृंगार कहा है। वस्तुतः वियोग जनित पूर्वराग से इसको वैशिष्ट्य देते हुये अयोग श्रृंगार की चर्चा हुई है। जानकी जीवनम् में इस अवसर पर 'जयदेव कृत' 'प्रसन्न राघव' की पर्याप्त सहायता

(1) जा.जी.3/1,2,7,8 (2) दशरूपक-धनंजय 4/50

ली है यहाँ सीता–राम परस्पर आश्रय, आलम्बन। एकान्त स्थल, उपवन, सखियों द्वारा प्रोत्साहन–उद्दीपन विभाव हैं। राम–सीता के विभिन्न अनुभाव वर्णन में यह रतिभाव अपने शुचि, मेध्य और उज्ज्वल रूप में चित्रित है। सर्वप्रथम राम के सात्विक अनुभाव लक्ष्मण से अपनी प्रीति का प्राकट्य, औत्सुक्य, धृति, हर्ष आदि संचारी भावों से अयोग का चित्रांकन इस प्रकार हुआ है–

शुभग! किन्नु विलोक्य तनीयर्सी स्फुरति बाहुरयन्ममदक्षिणः।
शकुनंसूचितभाग्यमहोदयो भवति नैव वृद्येति निश्चितम्।।[1]
कथय वत्स! हृदि प्रणयोर्मिभिः क्रिमिवरिगंणमाशु विपीयते।
न खुल कच्चिदियं मुखचन्द्रिका भवति कारणमस्य यथोचितम्।।
किमु निपीय दृशैव सुवासिनीं जनकजामयि लक्ष्मण! साम्प्रतम्।
स्मृतमवान्तरसंगत बन्धनोऽयमहमद्य मनोभवमाश्रये।।

इसी मध्य सखी ने राम के कामविनिन्दक सौन्दर्य का ऐसा हृदयावर्जक वर्णन सीता से किया जिसके कारण आश्रय सीता में हर्ष, आवेग, रोमांच इत्यादि का वर्णन कवि ने पाश्चात्य काव्य शास्त्र में कथित रोमांच का चित्रांकन किया गया है। उद्दीपन रूप में भ्रमरों का मकरन्द पान तथा सीता की मोट्टायित भ्रूभंग विलास आदि क्रिया व्यापारों का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है–

सपदि को युवको न निबद्धयते चलदपांगतरंगितरिंगतौः।
मृग वधूभिरितीव कटाक्षकैस्सकृद लोकि समेक्षण जानकी।।[2]
कनकचम्पकगुल्मग्रहात्ततो रघुपतिस्स्वयमेव बाहेश्चरः।
जनकजामुखचन्द्रचकोरतां विशदयन्ददृशे सहसोन्मुखः।।
अथ रतीश कोट्यातिशायिनं पुरुषसिहमुदीक्ष्य नु सम्मुखम्।
व्यपगता शनकैस्सुद्वदावली नृपसुतामपहाय विलक्षिताम्।।

इसके बाद स्थिति वाचिक अनुभावों की आती है। लज्जा अनुभूत सीता के समक्ष राम का वाचिक प्रणय निवेदन अत्यन्त आकर्षक रूप में व्यंजित हुआ है–

---

(1) जा.जी.6/24,25,26 (2) वही 6/43,46,47

अयि विलोकय दशरार्थे शुभे! सकृदपि त्वयि जात मनोरथम्।
न खलु जातु जहाति विकम्मुदी नच शिखा शिखिनो विमुखायते।।[1]
यद्यवधि श्रुतिगोचरतां ययौ गुण गणोऽवनि नन्दिनि! तावकः।
त्वदनुलीन समग्रजिजीविषस्सुमुखि! राघव एष न राघवः।।

राम की वाचिक अभ्यर्थना सुन आश्रय सीता की जड़ता, व्रीडा आवेग, आदि भावों का वर्णन कर अन्त में कवि ने राम के स्पर्श से रोमांच तथा सखियों का हर्ष इस घटना व्यापार को एक नाटकीय रूप दे दिया है-

सदपि कोशलराज सुताननाज्जनकजा समवेत्य गुणस्तुतिम्।
ननु विपक्षुरपि त्रपयार्दिताऽजनि निवाग्जडिमानमुपेयुषी।।[2]
न च ससार पुरो न च पृष्ठ्तो न खलु दक्षिणतो न च वामतः।
उपरि नैव ददर्श न वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवार्जान जानकी।।
रघुवरोऽपि विलोक्य निमंजितां प्रणयिनीं स्मरभाव पयोनिधौ।
भवतु गच्छ न ते पयि पीऽये समभियन्त्र्य शनैरितिशं ययौ।।

यहाँ यह विश्लेषण करना अनिवार्य है कि राम-सीता दोनों के मन में उत्पन्न यह भाव रूपाकषर्ण या मोहजनित मात्र कामभाव है अथवा शास्त्र प्रोक्त रति स्थाई भाव हैं। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है-"रतिः मनोऽनुकूलेऽर्थेमनसः द्रवणायितं।"[3] अर्थात मन के अनुकूल अर्थ में उसके प्रेमाद्र या द्रवीभूत होने को रति कहा जाता है।

इस प्रकार मन की इस वृत्ति को घोर मांसलता या ऐन्द्रियकता से लेकर मंजीष्ठ अनन्य प्रेम या आध्यात्मिक प्रेम तक कहा जा सकता है। वस्तुतः मनोविज्ञानवेत्ता यह कहते हैं कि अयोग श्रृंगार अथवा प्रथम प्रेम की छवि व्यक्ति के मन में यावज्जीवन अंकित रहती है। इसीलिये काव्यशास्त्र में प्रथम दर्शन जनित अयोग श्रृंगार की चर्चा कालिदास के बाद से प्रारम्भ हो गई थी। सीता की व्याकुलता, अधैर्य, धनुषभंग में विलम्ब सतृष्ण नेत्रों से राम की सफलता की कामना, विवाह के पश्चात् राम-सीता के मधुर दाम्पत्य की झलकियाँ ही सीता को वनगमन के लिये उत्प्रेरित करती हैं। यद्यपि उक्त प्रसंग में शारीरिक मिलन की चर्चा नहीं है किन्तु मन की अनेक रोमंटिक भावनायें चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुतकर प्रेम की

(1) वही 6/51,52 (2) वही 6/55,57,58 (3) साहित्य दर्पण-विश्वनाथ-3 परिच्छेद

अनन्यता का दिग्दर्शन कराया है। इसमें श्रम, मद, धृति, चिन्ता, विबोध, औत्सुक्य, अवहित्था, हर्ष, व्रीडा और आवेग, जड़ता तथा चपलता संचारी भावों की छटा दर्शनीय है।

संयोग शृंगार

वाल्मीकि रामायण में दाम्पत्य भाव साहचर्य जनित रूप में व्यक्त हुआ है। कवि ने अत्यन्त सीमित स्थलों में ही आश्रय आलम्बन के अनुभाव या चेष्टाओं का वर्णन किया है। यद्यवि धनुर्भंग के अवसर पर शृंगार रस की उत्पत्ति हो सकती थी किन्तु वाल्मीकि ने इस स्थल की उपेक्षा की है अतः सर्वप्रथम शृंगार रस की निष्पत्ति साहचर्य जनित दोष का अवसर वाल्मीकि रामायण में प्राप्त हुआ है, यद्यपि यह शृंगार रस उपदेश या शान्त रस में पर्यवसित होता दिखाई देता है। आचार्य विश्वनाथ ने शृंगार और शान्त को विरोधी रस बताया है किन्तु वाल्मीकि ने अपने शब्द नैपुण्य और परिस्थिति निर्माण की दृष्टि से शृंगार रस की व्यंजना की है। आश्रय–सीता अटवी के एकान्त में अपने मनोनुकूल दाम्पत्य भावों की अभिलाषा पूर्ति हेतु राम से आग्रह करती है इस आग्रह में दृढ़ता कुछ त्याग और हर्ष का संयोग कवि ने उल्लिखित किया है–

> अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि।
> इच्छामि परतः शैलान् पल्वलानि संरासि च।।[1]
> द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीत त्वया नाथेन धीमता।
> हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः।।
> इच्छेयं सुखिनी द्रुष्टं त्वया वीरेण संगता।
> अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुश्रता।।
> सह त्वया विशालाक्ष रस्ये परमनन्दिनी।।

इसके विपरीत जानकी जीवन में अयोग शृंगार की चर्चा कर उसका समापन विवाहोपरान्त सीता राम की रति क्रीड़ा मिलन के अनेक परिस्थितियों की कल्पना कर संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्य का अनुगमन किया है। यहाँ आश्रम राम किसी न किसी वहाने से प्रिया सीता को एकान्त अवसर पर पाकर आलिंगनवद्ध कर अपने काम्य की प्राप्ति करते हैं। आश्रय आलम्बन की कायिक चेष्टाओं का वहुविध वर्णन राजेन्द्र मिश्र ने इसमें किया है। इनमें एक

(1) वा.रा.2/26/17,18,19

तरफ उपालम्भ है तो दूसरी ओर हर्ष, आवेग, मति, चंचलता, मदालस भाव की अभिव्यंजना से संयोग श्रृंगार अभिव्यंजित हुआ है-

सा बाला काम वृत्तानां रहस्यानु भवादवहिः।
अप्रगल्भाऽपि जीवेशं सपर्ययाऽरराधतेम्।।[1]
कदाचित्सान्ध्यबेलायां सा पश्चन्त्यात्मनश्छविम्।
आलिलिंग प्रियं भीत्या मणिस्तम्भेऽन्यशंकया।।

यत्र-तत्र आर्थी व्यंजना के माध्यम से रस ध्वनि के अन्तर्गत श्रृंगार रस की पुष्टि लेखक ने इस प्रकार की है-

नेदं मुग्धे! प्रयाचेऽहं किंचिदन्यद भीप्सितम्।
अन्य एव नु ते वाणा अन्यदेव शरासनम्।।[2]
वधोवागुरया बद्धा प्रियेणैवं निरुत्तरा।
यार्वात्स्तमितनेत्राभ्यां द्रष्टुकामाऽभवत्प्रियम्।।
कर्णामृतझरी कल्पं श्रुत्या प्रियतमोदितम्।
निर्व्याजममधुरं रम्यं स्मरभाविवर्धनम्।।
प्रभातकुन्दसंकोचा लोलवत्सतरीगतिः।
त्रपाभार निरुद्धाऽपि कान्तानुनय चंचलता।।

वनवास प्रसंग में वाल्मीकि ने आश्रय राम के मनोअभिलाषाओं को व्यंजित करते हुये कवि ने लिखा है कि प्रकृति के ये उद्दीपन विभाव के संभार हमें भी जल विहार के लिये प्रस्तावित कर रहे हैं, इस अवसर पर उद्दीपन विभाव राम के वाचिक अनुभाव उनकी अभिलाषा, उद्वेग, सीता के गुण कथन में दाम्पत्य रस इस प्रकार व्यंजित हुआ है-

निर्धूतान् वायुना पश्य विततान् पुष्प संचयान्।
पोप्लूयमानापरान् परय त्वं तनुमध्यये।।[3]
दर्शनं चित्रकूटस्थ मन्दाकिन्याश्च शोभने।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्।।

---

(1) जा.जी.9/44,45 (2) वही 9/56,57,61,62 (3) वा.रा.2/95/11,12,14

सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम्।

कमलान्यवमज्जन्तीं पुष्कराणि च भामिनी।।

संयोग श्रृंगार का एक दूसरा पक्ष भी वाल्मीकि ने अत्यन्त सीमित शब्दों में व्यक्त किया है यद्यपि यह अवसर वीर रस का है खर-दूषण वधोपरान्त आश्रय सीता आलम्वन राम का आलिंगन कर हृदय संपुट का समस्त अनुराग व्यंजित किया है। सीता का आवेग कायिक और सात्विक अनुभावों से हृदयस्थ रतिभाव अनायास ही प्रकट हो गया है। कवि ने वीर्यशुल्का सीता के अनुरूप ही यह आचरण दिखाया है, बात यह है कि चौदह सहस्र सेनाओं को पराभूत कर एकाकी राम को देख कौन ऐसी पत्नि होगी जो हर्ष, आवेग से आप्यायित न हो सके-

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तांर महर्षीणां सुखवहम्।

बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे।।

मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान् हतान्।

रामं चैवात्यद्यं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा।।

सीता हरण के पश्चात पूर्व स्मृतियों में राम द्वारा सीता के प्रेम की स्थिति का वर्णन है। इस स्थल में राम-आश्रय, सीता-आलम्बन के आंगिक स्थलों की याद स्मृति, आवेग, चांचल्य वाचिक एवं संचारी भावों से अप्रत्यक्ष रूप से संयोग श्रृंगार का वर्णन हुआ।

शंसस्व यदि वा दृष्टा विल्ब बिल्बोपयस्तनी।

कुकुमः कुकुभोरूं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम्।

जानकी जीवनम् में सीता हरण के पूर्व अनेक स्थलों में आश्रय, आलम्बन राम-सीता के कामकेलि क्रीड़ाओं का बहुविध वर्णन कवि ने किया है। पति के आलिंगनवद्ध सीता मिथुनरत्त जलपक्षियों के जलक्रीडाओं को देख जिस उद्दीपन विभाव का अनुभव करती है उसमें रोमांच, अश्रु, पुलक वाचिक अनुभावों के साथ आवेग, हर्ष, धृति, आदि संचारियों की चर्चा है। राम द्वारा उपहार में दी गई माला से सीता संचारियों की चर्चा है। राम द्वारा उपहार में दी गई माला से सीता का हर्ष, स्तम्भ, मरण इस प्रकार व्यक्त हुआ है-

स्फटिक हि शिलातले दयितांकतल्पे सा क्वचिज्जनशून्यनी वृत्ति चिन्तयाना।

कान्तहस्तकृतैः! प्रसाधन संविधानैर्लालिता मुदमापसंभमिना प्रियेण।।[1]

---

(1) जा.जी. 11/14,19

मानसं मम कान्त! पादसरोजमाध्वीभंगभूतमिंद क्वचिन्न गतं क्षणाय।

वेद्मि तत्कथमेष्यति प्रविहाय रात्रौ भामिह प्रियरक्षितां क्वचिदन्य वासम्।।

सांराश यह है कि वाल्मीकि रामायण में सीता राम की श्रृंगारिक चेष्टाएँ न के बराबर हैं जबकि जानकी जीवनम् में लक्षणानुधानन करते हुये अयोग श्रृंगार या पूर्व राग के साथ ही प्रगाढ़ आलिंगन, जलबिहार, विलास इत्यादि में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, हर्ष, औत्सुक्य, लज्जा, चपलता, व्रीड़ा इत्यादि कम्प, रोमांच आदि सात्विक अनुभावों से संयोग श्रृंगार की अभित्यंजना हुई है। दोनों काव्यों में यह अन्तर देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वाल्मीकि साहचर्य जनित दाम्पत्य प्रेम तथा घटनाओं के माध्यम से रस ध्वनि की व्यंजना कर विश्वास करते हैं। इसे हमें मर्यादित आदर्श संयोग श्रृंगार का प्रथम कवि कह सकते हैं। जबकि राजेन्द्र मिश्र के समक्ष संस्कृत का सम्पूर्ण काव्य शास्त्र तथा व्यावहारिक रूप में वृहत्रयी, लघुत्रयी तथा श्रृंगारिक नाटक सामने रहे हैं अतः परिस्थिति की अपेक्षा कवि ने सीता-राम के पूर्व राग में अज्ञात यौवना मुग्धा, ज्ञात यौवना तथा विवाहोपरान्त केलि विलास के कुछ मांसल चित्र अंकित किये हैं यद्यपि राम-सीता के जीवन में जिस मर्यादावाद का आवरण या लोक रक्षक का आरोपण है ऐसे श्रृंगारिक लीलाएँ काव्य ग्रन्थ में ही सीमित रह सकी हैं। रसिक काव्यशास्त्रविद इन्हें पढ़कर हर्षाभिभूत तो हो सकता है किन्तु जो रस पेशलता अगूढ़ व्यंजना में होती है उसका यहाँ नितान्त अभाव है।

वियोग श्रृंगार

साहित्याचार्य ने कहा है कि "न बिना विप्रलम्भेन श्रृंगारं पुष्टिमष्नुते" अर्थात बिना वियोग श्रृंगार के संयोग पुष्ट नहीं होता है। वस्तुतः संयोग श्रृंगार में ऐन्द्रिय पूर्ति की कामना निहित होती है जबकि वियोगाग्नि में तपकर प्रेमानुवर्ण खरा निकलता है इसीलिये आचार्यो ने दाम्पत्य रस को शुचि, पूत मेध्य और उज्ज्वल कहा है क्योंकि इसमें वियोग की प्रधानता रहती है। संयोग काल के आश्रय और आलम्बन जब वियोग में व्याकुल अपने हृदय की करूण मार्मिक व्यंजना करते हैं तो सहृदय अभिभूत हुये विना नहीं रहता। यह वियोग चार प्रकार का बताया गया है-

1. पूर्वराग 2. मान 3. प्रवास 4. करूण

रामकथा में सीता-हरण के बाद प्रवासजन्य विप्रलम्भ श्रृंगार की मर्मन्तुद वेदना की

व्यंजना है, जिसमें राम और सीता दोनों की वियोग दशाएँ-चिन्ता, अभिलाषा, उद्वेग, आधि, व्याधि, प्रलाप, मूर्च्छा इत्यादि में वर्णित है। साथ ही सीता-निर्वासन के समय करूण विप्रलम्भ की व्यंजना है। वाल्मीकि की कथा दुखान्त है अतः वहाँ पर करूण विप्रलम्व श्रृंगार करूण रस में पर्यवसित हो जाता है। जबकि जानकी जीवनम् में सुखान्त कथा होने के कारण सीता-निर्वासन की कथा करूण विप्रलम्भ के अन्तर्गत आती है। आलोच्य काव्यों में प्रवासजन्य वियोग श्रृंगार की कुछ झलकियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जाती हैं।

प्रायः काव्यों में नायिका भेद या नायिकाओं की विरह व्यंजना को हृदय द्रावक रूप में वर्णन किया जाता है क्योंकि सुन्दरी सुकुमार नायिका पति या प्रेमि वियुक्ता होकर जिस असह्य काम वेदना का अनुभव करती हैं वह रसिको को अत्यन्त हृदयावर्जक लगता है। जबकि वाल्मीकि ने राम के विरह का वर्णन अधिक मार्मिक ढंग से किया है। सीता-हरण के बाद शून्य आश्रम की देख राम का विलाप उनके हृदयस्य प्रेम की मार्मिक व्यंजना करता है-आश्रम राम, दम्पती सहित पशु पक्षियों की क्रीड़ा उद्दीपन विभाव प्रश्रवणगिरी को देख राम का शोक उदीप्त होता है। स्मृति, आवेग, राम का संकल्प, चंचलता इत्यादि भावनाओं से राम का वियोग पुष्ट हुआ है यहाँ उन्माद की अभिलाषा उनकी चिन्ता दृष्टव्य है-

कच्चित् क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वांग सुन्दरी।।[1]
रामा रम्ये वनोददेशे मया विरहिता त्वया।
कुद्धोऽब्रवीद् गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।।
तां द्वेमवर्णां हेमांगी सीतां दर्शय पर्वत।
यावत् सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम।।

राम के इस विरह में प्रकृति का उद्दीपन विभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि संयोग काल में जो स्थल मादक, मोहक, रस पेशल लगते हैं, वियोग में वह अग्नि के समान दाहक प्रतीत होने लगते हैं। ऐसे समय जड़ता, उन्माद, प्रलाप, मूर्च्छा, आवेग चांचल्यता का वर्णन वाल्मीकि ने अच्छे ढंग से किया है। ग्लानि स्मृति के उदाहरण देखिये-

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यु सकृत्कृतानि।[2]

---

(1) वा.रा.3/64 29/2,30,31 (2) वही 3/63/4,8

तत्राय यद्या पातितो विपाको

दुःखने दुखं महदं विरामि।।

तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य

सदोचिता बुत्तमचन्दनस्य।

वृत्तौ स्तनौ शोणितपंक दिग्धौ

नूनं प्रियाया मम नाभिपातः।।

काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में वियोग श्रृंगार वर्णन की परम्परा में षट् ऋतु वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राम का विषाद उनकी ग्लानि, शंका, उग्रता, प्रलाद आदि इसी वर्णन के अन्तर्गत दिखाई देता है-

प्रलाप- लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्

यत् तेन नित्यं विदितं भवेत् तत्।[1]

शंसस्व वायो कुलपालिनीं तां

मृता हृता वा पयि वर्वते वा।।

उन्माद- नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लव कोमलौ।

भक्षितौ त्रेपमानाग्रौ सह स्तोमरणांगदौ।।

आशंका- कन्त्यिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम।

उद्दीपन विभाव के रूप में वर्षा ऋतु रावण की अजेयता के प्रति शंका से राम का वियोग मार्मिक रूप से वर्णित है। तट तिरोहित करती हुई नदी का उपमान विधान अत्यन्त सटीक रूप में व्यक्त है-

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः।

नदी कूलमिव किल्न्नमवसीदामि लक्ष्मण।।[2]

शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः।

रावणश्च महांछत्रुरपारः प्रतिभाति में।।

निष्कर्ष यह है कि समान दाम्पत्य प्रेम में विश्वास रखने वाले वाल्मीकि ने राम के जिस विरह का वर्णन किया है वह मर्मस्पर्शी है, हृदयावर्जक हैं उसमें प्रिया पत्नि के प्रति

(1) वही 3/63/17 (2) वा.रा.4/28/58,59

अनन्यता है। प्रेम प्लावित मन की सहस्राधिक कोमल भावनायें हैं जिसे कवि ने इस रूप में वर्णित किया है कि आगे के काव्यशास्त्रीय आचार्यो को वियोग सम्वन्धी दशाओं के शास्त्रीय चिन्तन को आधार मिला है। इस विरह में अनन्यता है, समर्पण है और सवसे बड़ी बात दुर्दर्ष रावण से अपनी प्रिया का उद्धार करने की शारीरिक और मानसिक प्रेरणा मिलती है। यह वाल्मीकि की मौलिक विशेषता है।

सीता का विप्रलम्भ श्रृंगार

ऊपर कहा जा चुका है कि वाल्मीकि रामायण में साहचर्य जनित प्रेम की अवधारणा विकसित हुई है। राजनन्दिनी कोमलांगी, सुकुमारी सीता दाम्पत्य रति, प्रेम क्रीड़ाओं के लिये जिसे अधिक अवसर नहीं प्राप्त हुआ नंगे पैरों चलना पड़ा। कन्दमूल फल खाकर पति साहचर्य से तृप्त सीता का विश्व विजेता रावण द्वारा अपहृत कर लेना ऐसी हृदयद्रावक घटना है जिसमें सीता का हृदय यदि विदीर्ण नहीं हुआ तो निश्चय ही इसमें पति प्रेम प्राप्त करने की दुर्दर्ष कामना ही रही है। आलोच्य दोनों कवियों ने सीता के विप्रलम्भ श्रृंगार का अत्यन्त हृदयद्रावक वर्णन किया है। अपहृत सीता का विलाप, एकाकी अशोक वाटिका में राक्षसियों से परिवृत्त सुन्दरी सीता से रावण का उग्र निवेदन, राम की सूचना न मिलना सीता के विरह को अनेक अनुभावों, संचारी भावों से दोनों कवियों ने व्यक्त किया है यद्यपि उत्तर काण्ड में सीता का निर्वासन करूण विप्रलम्भ से विकासित होकर करूण रस में पर्यवसित हुआ है जबकि जानकी जीवन में इसे सुखान्त बनाकर करूण विप्रलम्भ को एक नाम आयाम दिया है।

यहाँ हम आलोच्य काव्यों में से सीता के विरह का सामान्य परिचय देकर काव्यशास्त्राधारित विशेषताओं के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। रावण द्वारा अपहृता सीता पति के गुण कथन, कैकेयी की योजना की सफलता, कर्णिकार वृक्षों से अपने अपहरण की सूचना राम को देने की प्रार्थना करती हैं। आश्रय सीता चिन्ता, अभिलाषा, उद्वेग, गुण कथन आदि से यह प्रलाप परिस्थिति जन्य के कारण अत्यन्त स्वाभाविक और प्रभविष्णु बन पड़ा है-

ननुनामाविनीतानां विनेतासि परंतप।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम्।।[1]

(1) वा.रा.3/50/16,29,30,36

हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी वान्धवैः सह।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः।।
आमन्त्रये जनस्थाने कर्णिकारंश्च पुष्पितान्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः।।
सा तदा करूणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायत लोचना।।

समान परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा कहे वाक्यों की तुलना करने पर उनके वैशिष्ट्य का पता लगता है। राजेन्द्र मिश्र ने इसी अपहरण के अवसर पर सीता के सात्विक, वाचिक अनुभावों के साथ ग्लानि, गर्व, आवेग, धृति और वैवर्ण्य का जो वर्णन किया है उसमें लक्षणानुधावन प्रतीत होता है जबकि वाल्मीकि के इन वचनों में स्वाभाविक निसर्गतः मनोभाव व्यंजित हुये हैं। अश्रु, विवेक, दैन्य से सीता का विरह वर्णन राजेन्द्र मिश्र ने इस प्रकार किया है- इसमें उन्माद, एवं प्रलाप अपने सहज, स्वाभाविक रूप में व्यंजित है-

मोक्तिकाश्रुप्रषन्ति नेत्र सरोरूहाभ्यां दण्डकेषु वृहन्तिपर्णचये गिरन्ती।
ब्याधहस्तगतेव वत्सतरी स्वनन्दी जानकी विललाप शून्य दिशीक्षमाणा।।[1]
क्वासि मां रघुनाथ! किन्न श्रृणोसि वाचं क्रन्दनं मम कान्तः भत्प्रणयावसक्तः।
एष मां विवशां हरत्यधमो दशास्यो राक्षसो गतपौरूष स्त्वपि वर्तमाने।।
प्राण बल्लभ! निर्विदिहसुतः क्षणार्ध नो भवानुषितोऽद्य यावदीप प्रसक्तः।
तत्कथं भवसि स्वयं विरहे बिना मां त्वां बिनाऽपयहमेव वा कथमाश्रीचष्य।।[2]
देवता विहगा लता स्तरवो नुगोरे! जानकी विपदं प्रवक्त समेत्य भूयम्।
राघवं दथितं परं हृदयेश्वरम्भे बोधयेध्वमिदं दशास्यनृशंस कर्म।।

अविजित लंका की अशोक वाटिका में रक्षिकाओं से परिवृत्त सीता की मलिनता, कृशता, पति की स्मृति, रावण का प्रणय निवेदन एक ओर उसकी विरह की कसौटी है तो दूसरी ओर पति की एकनिष्ठा की वाल्मीकि ने लिखा है कि-हनुमान ने जब सीता को वैवर्ण्य अवस्था में देखा तो उससे सीता की शारीरिक कृशता, अश्रु आदि की व्यंजना हुई है। मुख्य रूप से वाल्मीकि ने सात्विक अनुभावों का ऐसा स्वाभाविक चित्रांकन किया है कि इन स्थितियों का

(1) जा.जी.11/106,107 (2) वही 11/108,109

न तो अनुभावों में नाम दिया है न ही संचारी भावों के रूप में इनका उल्लेख है। दशरूपककार ने वैवर्ण्य की जिस रूपरेखा का सैद्धान्तिक विवेचन किया है सम्भवतः वाल्मीकि की सीता भक्ति के क्षेत्र में "रक्षयिति रति विश्वासः" की जीवन्त प्रतिमूर्ति सीता लगती है। कवि ने चन्द्रमा आहार रूप में पतिवस्त्र का मालिन्य, कमल रहित पुष्करिणी, मंगल ग्रह से आक्रान्त रोहिणी ऐसे मौलिक अप्रस्तुत योजना प्रयुक्त की है जिसे सीता विरह की साकार मूर्ति प्रतीत होती है–

ततां मलिन संवीतां राक्षसीभिः समावृताम्।।[1]
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुल्कपक्षादौ चन्द्ररेखामिववामलाम्।।
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रूचिर प्रभाम्।
पिनद्धां धूम जालेन शिखामिव विभावसोः।।
पीतनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा।
सपंकामनंलकारां विपह्नामिव पद्मिनीम्।।
पीडितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम्।
ग्रहेणांगरकेणेव पीडितामिव रोहिणीम्।।

राजेन्द्र मिश्र ने विरह के इन क्षणों को अलंकृत काव्यों में वर्णित विरह के समान ही जानकी जीवन में उट्टंकित किया है इसमें एक ओर पति की रति क्रीड़ाओं का स्मरण तो दूसरी ओर हृदय की करूण पुकार, अभिलाषा, दैन्य, ग्लानि आदि भावों से वियोग श्रृंगार अभिव्यंजित किया है। कवि ने बड़े कौशल से मरण की भी व्यंजना इस परिप्रेक्ष्य में की है जो विरह की चरम सीमा कहलाती है।

गुण कथन–सीता राम के पूर्वकालिक गुणों का स्मरण करती हुई अपने विरह की अभिव्यक्ति करती है–

सतिशौर्यपराक्रमोद्धुरे त्वयि सिंहे ननु सिंहिकाभिमाम्।
कुदृशा किल जम्बुकाधमः समपश्यतदियं विगर्हणा।।[2]

दैन्य–सीता राक्षसियों से घिरी हुई अपनी दीनता एवं उपेक्षा की बात कहती है–

(1) वा.रा.5/15/18/2,19,20,21,22 (2) जा.जी.12/23

करूणावरूणालय! त्वया किमुपेक्ष्ये त्वदेशष जीविता।

बत नाथ! न विग्रहः क्वचित् प्रजदाति प्रतियातना निजाम।।[1]

मरण—धनंजय और विश्वनाथ ने करूण रस और करूण विप्रलम्भ का अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से किया है यहाँ सीता का वियोग करूण रस में पर्यवसित नहीं हो पाया अतः करूण विप्रलम्भ माना जायेगा। राम की सामर्थ्य, उनकी विजिगीषु भावना, पूर्वकाल के दुर्दर्ष कृत्य उनके मन में आशा का संचार करते हैं–

सवला किल जीवित क्षयेऽप्यहमासं पुनरस्मि साम्प्रतम्।

अवलैव परन्तु रावण व्यपहारेष्व भवं कदर्थित।।[2]

मुखचन्द्रदिहा द्रक्षयैव हा व्यवसाये मरणस्य मानसम्।

असि बल्लभ! कालरातये प्रणयैस्ते शिशु बद्धिलालितम्।।

वाल्मीकि रामायण में रावण वध के पश्चात् प्रवासजन्य करूण विप्रलम्भ श्रृंगार का एक अन्य स्थल भी हैं जहाँ सीता को लोकोपवाद और रजक प्रसंग के कारण निर्वासित किया जाता है। सीता जो राम की प्राण बल्लभा रही प्रिया, सहचरी, सहधर्मिणी थी। वनवास के घोरतम संकटो में परछाई की तरह राम के साथ लगी रही। दुर्दर्ष रावण के राजमहिषी बनाने के प्रस्ताव का तिरस्कार किया और सतीत्व की अग्नि परीक्षा दी हो ऐसी निष्कलंक, असन्नप्रसवा सीता को अपमानित, निराद्रित कर अनन्तकाल तक के लिये वनवास दे दिया गया हो। उसकी निष्ठा उसका पतिव्रत धर्म, उसकी पति सेवा पर प्रश्न चिन्ह लगाकर कलंक कालिमा के कारागार में दम लुटने तक के लिये छोड़ दिया गया हो। इस परिस्थिति में सीता का विरह करूण रस में पर्यवसित होता है। क्योंकि इष्ट की हानि अनिष्ट की प्राप्ति दोनों दशाओं का वाल्मीकि ने चित्रण किया है यद्यपि रामकथा मर्मज्ञ विद्वानों ने इन स्थलों को प्रक्षिप्त माना है। प्रारम्भ में धैर्य, मति धृति से यह वियोग वर्णित है–

धैर्य— ममापि दयितो रागो जीवितादपि लक्ष्मण।

न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव।।[3]

इस अवसर पर मरण की कामना, प्रलय (मूर्च्छा) वाचिक अनुभाव, आवेग अपने करूणतम रूप में व्यक्त हुये हैं–

---

(1) वही 12/24 (2) जा.जी.12/25,26 (3) वा.रा.7/46/28

मरण— लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा।

परं विषादभागम्य वैदेही निपपात् ह।।[1]

स कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता।

आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःख परायणा।।

आवेग— सीता का आवेग उनकी गरिमा के ही अनुकूल है। पतिप्रेम जन्य अनन्यता एवं दृढ़ता तथा आवेग जैसे भावों को वाल्मीकि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव।

भक्तया च परया युक्ता हिता च तव निहपशः।।[2]

अहं व्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने।

यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः।।

मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमागति।

इसी परिप्रेक्ष्य में कवि ने राम के शोक संतप्त हृदय की मार्मिक व्यंजना की है। आश्रय–राम, निर्वासिता सीता–आलम्बन, लक्ष्मण से प्राप्त सीता सन्देश–उद्दीपन विभाव चिन्ता धृति मति, ग्लानि आदि संचारी भावों से राम का वियोग परिपुष्ट हुआ है–

तत्र तां च शुभाचारामाश्रमान्ते यशस्विनीय।

पुनरत्यागतो वीर पाद मूलमुपासितुम्।।[3]

शक्तस्त्वमात्मनाऽऽत्मानं विनेतुं मनसा मनः।

लोकान् सर्वांश्च काकुत्स्य किं पुनः शोकमात्मनः।।

यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवाद भयानृप।

सोऽपवादः पुरे राजन् भविष्यति न संशयः।।

तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि रामायण की कथा नैसर्गिक कथा है अतः इसमें वियोग श्रृंगार अधिक है।

संयोग श्रृंगार सीमित और मर्यादित तथा रस ध्वनि के रूप में व्यंजित है। क्योंकि विस्तृत वनस्थली कोमल, भंयकर, सुखद–दुःखद प्राकृतिक परिवेश में जहाँ कामकेलि या रति क्रीड़ाओं के अनेक सुखद अवसर उपलब्ध होते हैं वहीं विप्रलम्भ श्रृंगार में ये उद्दीपन का

(1) वा.रा.7/48/1,6 (2) वही 7/48/12,13 (3) वही 6/92/9,13,15

कार्य करते हैं जबकि जानकी जीवनम् की कथा वर्णनप्रधान विशिष्ट स्थलों का चयन कर कवि ने लक्षणानुधावन के रूप में परिस्थितियों का वर्णन किया है अतः संयोग श्रृंगार के रूप में सीता के पौगण्ड, किशोरी रूप के साथ मुग्धा, कामोद्भवा नायिका की वयः सन्धि का वर्णन कर मनोज विलास की कामनायें अयोग श्रृंगार में निर्निमेष देखना वाचिक अनुभाव, सखियों के मध्य हर्षोल्लास, विवाहोपरान्त प्रियतम द्वारा राजमहलों में विलासोचित श्रृंगारिक परिस्थितियों की कामना कर प्रिय प्रिया के आलिंगन परिरम्भण आदि के स्थलों का मांसल वर्णन है। सीता–हरण के पश्चात आश्रय आलम्बन के विरह का वह हृदयद्रावक चित्रांकन नहीं है जिसके लिये रामकथा में पर्याप्त अवसर था।

वाल्मीकि रामायण संयोग और वियोग रस की पूर्ण अभिव्यंजना करता है। कायिक, वाचिक, सात्विक, आहार्थ्य के साथ संचारियों का संगुम्फन ऐसे कैशल से हुआ है कि जिसमें रस पेशलता, मार्मिकता, सरलता, मनोवैज्ञानिकता और हृदय को आकण्ठ निमग्न करने की पूर्ण क्षमता है जबकि जानकी जीवन में रसोल्लेख हेतु परिस्थिति की व्यंजना की गई है। सीता के विरह में न उतनी मार्मिकता है न ही उद्‌दीपन विभावों के साथ संचारियों का प्रयोग ठीक से व्यंजित हुआ। रसाभिव्यंजन हेतु इनका उल्लेख मात्र है। श्रृंगार के संयोग और वियोग की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण का चित्रफलक अत्यन्त व्यापक और विशद है जबकि जानकी जीवन में यह सीमित है।

वीर रस

महाकाव्य उदात्त नायक की महत् उद्‌देश्य प्रधान कथा होती है जिसमें श्रृंगार, वीर, करूण रस में से एक को अंगी रस बनाया जाता है। मनोवेत्ताओं ने वीर रस का स्वरूप निर्धारित करते हुये कहा है कि ''सुखात्मक वर्ग की श्रेणी में साहसपूर्ण कार्य करने की उमंग उत्साह कहलाता है, इसी से वीर रस रसदशा को पहुँचता है। इस रस का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुये डा0 राजकुमार पाण्डेय ने लिखा है कि ''सामने खडा प्रतिपक्षी ऐश्वर्य, साहसिक कार्य तथा यश इसके आलम्बन विभाव हैं। प्रतिपक्षी की ललकार, युद्ध भेरी, प्रदर्शनादि वीर रस के उद्‌दीपन का कार्य करते हैं। हृदय की हिल्लोल, आँखों की रक्तिम आभा, आवेशजन्य रोमांच, कायिक, वाचिक आदि यहाँ अनुभाव होते हैं। मति, धृति, गर्व, आवेग, उग्रता आदि

संचारी भाव होते हैं।[1]

रामकथा मूलरूप में वीर आख्यान कथा है। क्षत्रियनेता राम के वीर रस प्रधान कृत्यों की काव्यमयी भाषा ही रामायण है जिसकी मुख्य घटना राम-रावण युद्ध है। वाल्मीकि रामायण में नायक, प्रतिनायक एवं सहायकों के अनेक साहसपूर्ण दुर्दर्ष कार्यो की व्यंजना हुई है। अतः मूलनायक एवं प्रतिनायक से सम्बन्धित घटनाओं में वीर रस के अनेक स्थल मिलते हैं।

लक्षण ग्रन्थों में यह वीरता युद्ध, दान, धर्म और दया वीरता चार रूपों में मिलती है।[2]

वाल्मीकि रामायण में वीर रस मुख्य रूप से पुष्कल मात्रा में मिलता है। पित्राज्ञा पालन कर राम का वनवास गमन, मुनियों की रक्षा धर्मवीरता के उदाहरण हैं। वनवास प्रकरण पर अपना सर्वस्व दान कर देना, रावण वध के पश्चात् विभीषण को लंका का राजा बनाना दान वीरता के उदाहरण हैं। इसी प्रकार जटायु, सुग्रीव तथा यज्ञ रक्षण में दयावीरता दिखाई पड़ती है। कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण में श्रृंगार रस की अपेक्षा वीर रस के अधिक अवसर हैं और कवि ने इन स्थलों की पहचान कर इनका वर्णन रस परिपाक दशा तक किया है। जानकी जीवनम् में श्रृंगार रस का प्राधान्य है धनुर्भंग, वनवास प्रकरण, युद्ध के स्थलों में वीर रस दिखाई तो पड़ता है किन्तु साहसपूर्ण कार्य करने की जो उमंग या युयुत्सा दिखाई देनी चाहिये इस काव्य में वह ठीक से वर्णित नहीं है क्योंकि वीर रस मूल रूप से युद्ध वीर में ही दिखाई पड़ता है। आलोच्य काव्यों के कुछ स्थलों की शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत कर हम इस सम्बन्ध में दोनों कवियों के साम्य-वैषम्य पर चर्चा करेंगे।

विश्वामित्र के मख रक्षण के समय आश्रय राम का दौड़ना कायिक अनुभाव, शस्त्र संचालन, मति, धृति, आवेग संचारी भावों से राम के वीर रस की व्यंजना हुई है-

तां तेन रुधिरौघेण वेदीं वीक्ष्य समुक्षिताम्।
सहसाभिद्रुतो रामस्तान पश्यत् ततो दिवि।।[3]
तावापतन्तौ सहसा दृष्टवा राजीवलोचनः।
लक्ष्मणं त्वमिसम्प्रेक्ष्य रामो वचन ब्रवीत्।।

(1) रामचरितमानस का काव्य शास्त्री अनुशीलन पृष्ठ सं0-293 (2) दशरूपक 4/72 (3) वा.रा.1/30/13-17

पश्च लक्ष्मण दुर्वृत्तान राक्षसान विशिताशनान्।

मानवास्त्र समाधूतान निलेन यथा धनान्।।

करिष्यामि न संदेहो नोत्सहे हन्तुमीदृशान्।

इत्युक्त्वा वचनं रामश्चापे संधाय वेगवान।।

मानवं परमोदारमस्त्रं परम भास्वरम्।

चिक्षेप परम क्रुद्रो मारीचोरसि राघवः।।

खर–दूषण वध प्रसंग में वीर रस के सभी–स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भावों का चरम रूप मिलता है। यहाँ आश्रय–खर–दूषण आलम्बन–राम, खर–दूषण का वाचिक अनुभाव आहार्य्य रूप में अस्त्र शस्त्र, आवेग मेघ के समान गर्जना करना वाचिक अनुभाव आदि का कवि ने मार्मिक वर्णन किया है–

अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलत्स्त्यानां महात्मनाम्।

वधार्थं दुर्विनीतश्च रामस्य रणकोविद।।[1]

खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम्।

निर्यातव्य ब्रवीत् प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान्।।

ततस्तद् राक्षसं सैन्यं घोरचर्थायुध ध्वजम्।

निर्जगाम जनस्थानान्यहानादं महाजवम्।।

मुंगरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः।

खंगैश्चक्रैश्च हस्तस्यैभ्रजिभानैः सतोमरैः।।

संचोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः।

शब्देनापूरयामास दिशः सप्रदिशस्तथा।।

यहाँ यह लिखना असमीचीन नहीं होगा कि चरित नायक राम की वीरता वर्बर वीरता नहीं उनका शौर्य हताश, दुर्बल, निरीह प्राणियों पर सत्व प्रदर्शन हेतु नहीं उनकी वीरता में त्याग, साहस, क्षमा, औदार्य, सहिष्णुता और अजस्र प्रेम शक्ति है। सम्भवतः वाल्मीकि ने इसीलिये राम के युद्ध वीरता का वर्णन तो अनेक स्थलों पर किया है किन्तु इनमें क्षमाशीलता और त्याग प्रामुख्य हैं जबकि रावण और उसके सहायकों को आश्रय बनाकर वर्णित वीर रस

---

(1) वही 3/22/11,16,17,18,23

में प्रचण्डता, कूरता और अमानवीयता दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि के वीर रसों के सभी स्थलों का विहगालोकन करने पर यह निष्कर्ष सहज रूप में निकाला जा सकता है कि वीर, भयानक, रौद्र और बीभत्स रसों के ताने-बाने से ऐसे कौशेय पट का निर्माण किया है जिसका निर्वहन आगे के कवि उतनी क्षमता से नहीं कर सके, एक बात और है कि मानव मन के सभी मनोविकार दुःखात्मक और सुःखात्मक श्रेणी के ही होते हैं। वीर रस सुखात्मक श्रेणी का मनोभाव है जबकि भयानक, रौद्र, बीभत्स, दुःखात्मक वर्ग के हैं। कवि की एतद्विषयक प्रतिभा निश्चय ही इसे श्रेष्ठ मानवीय काव्य के पद पर अभिषिक्त कराने की क्षमता रखती है यहाँ राम-रावण युद्ध के कुछ उदाहरण देकर प्रतिनायक रावण मेघनाद तथा अन्य वीरों के कुछ स्थलों का निदर्शन करेंगे।

राम-रावण युद्ध में आश्रय-राम का अस्त्र शस्त्र संचालन क्षिप्रता दृष्टव्य है जिसमें राम का धैर्य, आवेग, कवि ने वर्णित किया है यहाँ एक बात स्मरणीय है कि वीर और रौद्र के स्थायी भावों में विरोध है फिर भी कवि ने राम के उत्साह की मार्मिक व्यंजना की है-

> स विद्धो दशाभिर्वाणैर्महा कार्मुकनिःस्रतैः।
> रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः।।[1]
> ततो विब्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजय।
> राघवस्तु सुंसक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः।।

वीर रस के चित्रण में वाल्मीकि की दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने राम-रावण या मेघनाद के उत्साह का वर्णन समान रूप से किया है उनमें पूर्वाग्रह नहीं, संकुचित दृष्टिकोण का अभाव है। वाल्मीकि की रसपेशलता सचमुच में चरितनायक के दुर्दर्ष और प्रचण्डता पर आधारित हैं। अन्य पात्रों में हनुमान, सुग्रीव, मेघनाद कुम्भकर्ण के उत्साह, कार्यदक्षता उनका मद, आवेग, क्षिप्रता, व्यंगोक्ति में वीर रस का परिपाक भली प्रकार से हुआ है कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

> ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान्।
> पोथयन् विविधांश्चान्यान् ममन्थोत्तमराक्षसान्।।[2]

---

(1) वा.रा.7/10/11,12 (2) वही 6/96/9,10

ममर्द च महाकायो राक्षसान वानरेश्वरः।

युगान्त समये वायुः प्रवृद्धानगमानिव।।

मेघनाद युद्ध प्रसंग पर आश्रय-मेघनाद का अट्ठहास कायिक अनुभावों के रूप में अस्त्र संचालन की दक्षता राम लक्ष्मण का मूर्च्छित होकर भूमिपाद उसके सहायकों के लिये उद्दीपन विभाव हर्ष, आवेग, चपलता, मद संचारी भाव से इन्द्रजित का वीर रस इस प्रकार व्यंजित हुआ है-

तानर्दयित्वा वाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान्।

प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदम ब्रवीत।।[1]

शरबन्धेन धारेण मया बद्धौ चमूमुखे।

संहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः।।

हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित समितिंजयः।

प्रविवेश पुरीं लंका हर्षयन् सर्वनर्ऋतान्।।

तात्पर्य यह है कि वीर रस का स्थायी भाव उत्साह मूल रूप में वीरतापूर्ण कार्यो के आनदपूर्वक सम्पादन में अथवा युद्ध वीरता में ही परिपूर्णता से व्यक्त होता है कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण में दशाधिक ऐसे स्थल हैं जिन्हें हम शुद्ध वीर रस के रूप में परिगणित कर सकते हैं। कवि ने नायक, प्रतिनायक सहित अन्यान्य योद्धाओं सेनापतियों के उमंगपूर्ण साहस का वर्णन किया है।

जानकी जीवन में वीर रस के उत्साह का वर्णन अपेक्षाकृत सीमित स्थलों में हुआ है। विश्वामित्र मख रक्षण, खर-दूषण, वध, हनुमान का समुद्रोल्लंघन, राम-रावण के युद्ध में उत्साह का वैसा परिपाक नहीं हुआ क्योंकि कवि अलंकृत काव्यों के समान इसे श्रृंगार प्रधान काव्य बनाना चाहता है। यदि काव्यशास्त्रीय भाषा में कहें तो अनेक स्थलों में वर्णित, व्यंजित उत्साह मात्र स्थायी भाव की सीमा तक ही रह सका है, रस दशा को नहीं पहुँच सका। इसे हम भावाभास के रूप में परिगणित कर सकते हैं। यहाँ खर-दूषण वध और राम-रावण स्थलों में रस के विभिन्न अवयवों की चर्चा कर वाल्मीकि के साथ साम्य वैषम्य की चर्चा करेंगे।

---

(1) वही 6/46/23,24,28

रावण के अत्याचार से ऋषि-मुनियों में जो भय आतंक, त्रास, व्याप्त हो गया था उसे देख राम का पुरुषार्थ स्फुरित हो उठा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका क्रोध रौद्र रस का प्रतीक है किन्तु राम का निश्चल विहीन करने के संकल्प में उनकी दृढ़ता, आवेग, कुटिया बनाकर रहने की कामना उत्साह भाव को भी व्यंजित करती है।

नरभक्षी राक्षसों का अत्याचार-उड़ीपन विभाव एवं शरभंग ऋषियों का क्रन्दन सुनकर राम की पराक्रमशीलता अपने चरम सीमा में पहुँच गई। कवि ने रूपक अलंकार के माध्यम से राम के मनोभाव का इस प्रकार वर्णन किया है यद्यपि वर्णन भाव दशा तक ही सीमित रह सका है-

निश्चितकाय रघूत्तमः प्रसमीक्ष्य सर्वमानसेयदिदं वनं द्रुतयुद्धरिष्ये।
दण्डकं समभीष्ट राक्षस नाशसत्रदीक्षितस्य, भवेत्स्थलं मम राघवस्य।।[1]

खर-दूषण युद्ध प्रकरण में राम-आलम्बन, खर-दूषण सहित चौदह हजार सेनायें, धनुष की प्रत्यंचा खींचना एवं निशंक होकर शत्रुओं के मध्य स्थित होना-कायिक अनुभाव, वैष्णव धनुष की शक्ति पर विश्वास, दृढ़ता, धैर्य, आवेग आदि संचारी भाव दिखाई पड़ते हैं।

मण्डलीकृत कार्मुकस्य विमुच्य मौर्वीचण्डरावमजीजनत भुवन प्रकम्पम्।
राक्षसा बधिरायिताः किल येन कल्पध्वंस कालपयोदगर्जित सन्निभेन।।
कुम्भजाय पुरन्दरोपनतेन पूर्वं कुम्भजेन च रक्षसां शमनाय पश्चात्।
साग्रहं निजेहतवे सुखमर्पितेन वैष्णवेन शरासेनन समन्वितोऽसौ।।
निर्भयं प्रविवेश राक्षस सैन्य गर्भे केसरीव करालदष्ट्रांइभेन्द्रयूथे।
तीक्ष्ण सायक वर्षणैः ककुभो विरून्धान् राक्षसान् स ददाह लूलनिमानक्षणेन।।
मस्तकं कपिशप्रभं स चकर्त तूर्णम् अर्धभिन्नपलाशवृन्तनिभं खरस्य।
दूषणंच जधान सैन्यपतिं त्रिशीर्ष लीलयेवमदान्धसिन्धुर उत्पलानि।।

राम ससैन्य प्रस्थान वीर रस का अतिउत्तम उदाहरण है सैनिकों का हुंकार-वाचिक अनुभाव, क्षिप्रता से प्रस्थान-कायिक अनुभाव, आवेश के कारण आरक्त मुख-सात्विक अनुभाव का वर्णन कवि ने मार्मिक रूप से किया है-

---

(1) जा.जी.11/44

सुकण्ठ! ननु सैनिकान् राणभतांश्च सेनापतीन

समादिशं कपीश्वरान्द्रवलनाय भेरीरवैः।

समुच्चरिघोषणोऽनुजकपीशसंयोजित-

स्रसार पथि राघवस्समरभूमिकालान्तकः।।

ततः कपिनृपाज्ञया रण युयुत्सवो वानरा,

गवाक्ष गत दुर्मुखद्विविदमैन्दरम्भादिका।

सुषेणनल केसरि प्रण सतार कोल्कामुखा,

प्रचेलुरतिदर्पिता भुवन कम्पिभिर्गर्जनैः।।

राम कथा की चरम सीमा रावण-वध की घटना है। प्रतिनायक का प्रत्यक्ष युद्ध वीर रस का ज्वलन्त उदाहरण है इतना अवश्य इस स्थल पर कहा जा सकता है कि वीर और रौद्र रस दोनों यहाँ सम्मिलित रूप से दिखाई देता है। राम का उत्साह प्रतिपक्षी रावण के मन में अपनी असफलता के कारण क्रोध उद्भावक हो उठता है। यहाँ वीर और रौद्र रस की भावसन्धि दृष्टव्य है। राम का गर्व, क्षिप्रता, अमर्ष रावण के वाचिक अनुभाव, स्वबल का मद के माध्यम से राजेन्द्र मिश्र ने इस युद्ध का समापन किया है-

हरामि भुवनत्रयप्रचितशोकशड्.कुंरणे,

निहत्य दनुजाधमं बहुतिथावधिप्रेक्षितम्।[1]

भविष्यति वसुन्धरा नियतमद्य नीरावणा,

दशास्य निघनेऽथवा मयि हते तु नीराधवा।।

स्नुषाऽपि नलकूबर प्रियतमा त्वया धर्षिता,

तपांसि किल चिन्वती पतित! वेदवत्यर्हिता।

हृता यति विडम्बितैर्यविगते प्रिया मैथिली,

स्मरान्ध! वनिता ग्रहिस्तदयमेव ते विक्रमः?

निरस्य खुलं सोदरं जगृहिषे बलात्पुष्पके,

ततर्प्य रतिमिश्चिरं विवशयोषितामिन्द्रियम्।।

ननष्ठ शठ! संहितामृतपथस्य पापैनिजैः,

(1) जा.जी.14/74,78,79,81

पुलस्त्य कुलंकालिमन्। तदयमेव ते विक्रमः ?

दशास्यमिति मार्मिकैर्गरलंवाग्निभरास्फालयन्

नवर्ष निशितान् शरान् रघुपतिर्महा भैरवः।

अजस्रशरवर्षया दिनमदृष्टसूर्यप्रभं,

व्यलोकि किल दुर्दिनं घनतमोऽवरुद्धं यथा।।

तात्पर्य यह है कि रामकथा में प्रधान और गौण पात्रों में से सम्वन्धित पुष्कल स्थल है। वाल्मीकि ने वीर रस के स्वाभाविक चित्रण, मार्मिक व्यंजना, रस दशा का पूर्ण परिपाक हेतु युद्ध वीर का आश्रय लिया है इसमें भी उनकी विशिष्टता यह है कि राम की वीरता में दान, धर्म और वध विशेष रूप से लोकरक्षण का भाव प्रबल होने के कारण उनकी शक्ति बर्बर, दुःसाहसी नहीं है जबकि प्रतिनायक या राक्षसों की युद्ध वीरता में कायिक, वाचिक, सात्विक अनुभावों का वर्णन कर वीर रस में व्यंजित उग्रता, प्रचण्डता और आवेग का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। बात यह है कि पाश्चात्य मनोवेता युयुत्सा प्रवृत्ति के साथ आत्मरक्षा को मूलमानव वृत्ति मानते हैं अतः हिंसा प्रतिहिंसा में जो दुर्दर्पता होती है उसका आश्रय वाल्मीकि ने राक्षस पक्ष को बनाया है। राम और उनके सहायकों में उत्साह स्थायी भाव की व्यंजना के लिये अमर्ष, गर्व, मति, धृति, विवेक जैसे संचारियों का प्रयोग कर यह सन्देश देने का प्रयास किया है समाज में उसी की ख्याति होती है और यही मनोविज्ञान की दृष्टि से यथार्थ, वास्तविक भी लगता है।

जानकी जीवनम् में वीर रस के चर्तुभेदों में से युद्धवीरता के कुछ स्थल तो अवश्य मिलते हैं किन्तु भावशबलता या रौद्र रस के संकर के कारण वह शुद्ध वीर नहीं हो सका क्योंकि कवि का लक्ष्य जानकी जीवनम् में जानकी पर केन्द्रित है और सीता निर्वासन की कथा को एक नये रूप में व्यंजित करना चाहता था। इस हेतु कथा प्रवाह में क्षिद्रता और गत्यात्मकता के कारण रसों का पूर्ण परिपाक वाल्मीकि रामायण जैसा नहीं हो सका है। निष्कर्ष यह है कि जानकी जीवनम् में शृंगार रस को छोड़कर अन्य रस रसाभास या भावाभास की सीमा का स्पर्श कर सके हैं। शुद्ध रस में जो हृदय आप्लावित करने की क्षमता होती है वह वाल्मीकि की अपेक्षा राजेन्द्र मिश्र में कम दिखाई देती है।

करुण रस

चित्त को द्रवित करने की अपार शक्ति होने के कारण ही भवभूति को "एको रसः करुण एवं निमित्तभेदातः" कहना पड़ा था। इसका स्थायी भाव शोक होता है। इष्ट नाश अनिष्ट की प्राप्ति[1] करुण रस के मूल में हैं इसमें दीन-हीन, मृतव्यक्ति-आलम्बन अश्रुपतन, परिवेदन, मुखशोषण, वैवर्ष्य, निःश्वास आदि अनुभाव होते हैं। तथा निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य, मरण, स्तम्भ, वेपथु, स्वरभंगादि व्यभिचारी तथा सात्विक अनुभाव प्रकट होते हैं।[2]

रामायण का प्रारम्भ और समापन करुण रस से हुआ है इसलिये शोकोद्भव श्लोक के कारण कुछ लोग रामायण को करुण रस अंगी रूप में स्वीकार करते हैं परन्तु उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त होने के कारण साथ ही वाल्मीकि जैसा आशावादी कवि करुण रस पर्यवसित काव्य का प्रणयन नहीं कर सकता। वाल्मीकि रामायण में दशरथ पुत्र शोक, विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण सहित राम का गमन, कैकेयी की वरयाचना के उपरान्त दशरथ मृत्यु, राम-सीता लक्ष्मण का वनगमन, सीता-हरण, लक्ष्मण शक्ति, युद्ध के समय मायामयी सीता या राम का वध प्रदर्शन तथा सीता परित्याग एवं भूमिविवर प्रवेश करुण रस के ऐसे स्थल हैं जो रससिक्त प्रमाता या सहृदय पाठक को सहज ही प्राप्त होते हैं जबकि जानकी जीवन में दशरथ मृत्यु करुण और सीता-हरण में करुण विप्रलम्भ श्रृंगार के स्थल हैं। सबसे पहले अनिष्ट प्राप्ति तथा मृत्यु के स्थलों की काव्यशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की जायेगी।

कैकेयी की वरयाचना के उपरान्त दशरथ मरण एक ओर ऐसी हृदय विदारक, स्तम्भित कर देने वाली घटना है जिसमें एक ओर दशरथ की वचन पालन की व्यवस्था तो दूसरी ओर मृत्यु उपरान्त रानियों और पुरवासियों का वियोग अत्यन्त मार्मिक ढंग से हुआ है। राम के वन जाने पर दशरथ का वियोग वात्सल्य अनिष्ट प्राप्ति के कारण करुण रस में पर्यवसित हो गया है। आश्रय-दशरथ, आलम्बन-राम-सीता चौदह वर्ष का वनवास तथा मुनि वेश में राम का गमन-उद्दीपन विभाव, दशरथ द्वारा समुन्त्र का आह्वान-वाचिक अनुभाव, स्वेद, वैवर्ण्य, स्तम्भ, आदि अनुभावों के साथ जड़ता, आवेग, मोह, संचारी भाव दिखाई पड़ते हैं-

तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहीति राघवः।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा।।

---

(1) दशरूपक-धनंजय पृष्ठ सं0-184 (2) रस सिद्धान्त स्वरुप विश्लेषण डा0 आनन्द प्रसाद दीक्षित पृष्ठ सं0-353

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः,

प्रस्विन्नगात प्रविषण्ण रूपः।

निशम्य राजा कृपणः समार्यो,

व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः।।

दशरथ मृत्यु तो करूण रस का राशिभूत स्थल है कौशल्या, सुमित्रा आदि का विलाप कवि ने बड़े ही मार्मिकता से परिस्थिति का चित्रांकन किया है। दशरथ का मृत शरीर–आलम्वन, कौशल्या की मूर्च्छा, विलाप इसके अन्तर्गत कौशल्या का आवेग दशरथ को उपालम्भ देना, अत्यन्त कारुणिक रूप में वाल्मीकि ने कई अध्यायों में इस घटना का उपवृम्हण किया है। अश्रु, पति गुण कथन, जड़ता, वैवर्ण्य, रानियों का भूतल पर लोटना, सूर्यास्त होना आदि उपमानों से वाल्मीकि ने शोक का वर्णन किया है–

वाहूनाच्छ्रित्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखैः।

रूदत्यः शोक संतप्ताः कृपणं पर्यदिवयन्।।

ता वाष्पेण च संवीताः शाकेन विपुलेन च।

व्यचेष्टन्त निरानन्दाराघवस्य वरस्त्रियः।।

गते तु पुत्राद् दहनं महीपते–

र्नारोचयस्ते सुहृदः समागताः।

इतीव तस्मिंशमनेन्यवेशयन्

विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदवनिम्।।

इष्ट की हानि और अनिष्ट प्राप्ति की आशंका के कारण कैकेयी ने दशरथ से जिस क्रूर वर की याचना की थी उसके मूल में उक्त दोनों मनोवैज्ञानिक सत्य काम कर रहे थे। बात यह है कि वृक्ष की शाखा से गिरी हुई लता एवं प्रियतम की आसक्ति एवं गाढ़ालिंगन से वंचित गृहिणी पुनः शीर्षाधिरोहण में नहीं होती। भरत के अनिष्ट की आशंका से उपेक्षित कैकेयी में राजेन्द्र मिश्र ने हलका सा रौद्र मिश्रित करुण रस चित्रित किया है। आश्रय–कैकेयी, दशरथ द्वारा उपेक्षा एवं मन्थरा की वाणी उद्दीपन विभाव रूदन, विकलता, दैन्य, विवेक, जड़ता आदि अनुभाव तथा संचारी भावों से करुण रस व्यंजित हुआ है–

प्रजेशोहितं स्वापमानं स्मरन्ती मुखंपाणिनाऽऽच्छाद्य राज्ञी रुरोद।

उवाचाय दीना प्रभो! किं करोमि प्लुता सत्यमेवाऽस्म्यहं वचिंतास्मि।।

बिना मन्यतै राजकार्याणि भूपः स्वतन्त्राष्यपिप्रीमन्नो चकार।

विधूयाधुना प्रेष्ठ भार्यामिदानीं तनोत्येकलोयौवराज्याभिषेकम्?।।

तात्पर्य यह है कि कैकेयी की वरयाचना से शोक लहर का संचरण दशरथ मृत्यु, भरतागमन उनके हृदय की निश्छल, कारूणिक उक्ति में यह रस पूर्ण परिपाक दिखाई देता है-विशेष रूप से कैकेयी की वरयाचना के उपरान्त अनिष्ट आशंका दशरथ की मृत्यु होने पर वैधव्य के कारण रानियों का कारूणिक विलाप तथा आशंका के कारण भरत का भावोच्छ्वलन करुण रस के ऐसे स्थल हैं जिनका वाल्मीकि ने बड़ी विशदता, मार्मिकता हृदय द्रावकता के साथ वर्णन किया है, क्योंकि यह दृश्य अचानक मृत्यु के कारण उत्पन्न शोक अधिक देर तक नहीं टिकता। इसलिये वाल्मीकि ने इसे चार रूपों में व्यक्त किया है। मूल करुण रस के पूर्व कैकेयी की आशंका, वर याचना के परिणाम स्वरूप दशरथ का शोक संतप्त होना, मुमूर्ष दशरथ का वैवर्ण्य रूप देख रानी एवं प्रजाजनों का करुण क्रन्दन और अन्त में भरत की निश्छल अभिव्यक्ति में यह करुण सागर लहरा रहा है।

वास्तविक करुण रस का स्थल लक्ष्मण शक्ति प्रसंग है। मुमूर्ष लक्ष्मण-आलम्बन, एकांकी विरहित प्रिया राम-आश्रय, लक्ष्मण की दशा, राम की ग्लानि, आवेग, जड़ता, मोह, विषाद इत्यादि अनुभावों एवं संचारी भावों से करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है-

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं निषण्णं गाढमर्पितम्।

भ्रातरं दीनवदनं पर्यदिवयदातुरः।।[1]

किं नु मे सीतया कपिं लब्धयाजीनितेन वा।

शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युद्यि निर्जितम्।।

धिङ्. मां दुष्कृत कर्माणभनार्थ यत्कृते ह्यसौ।

लक्ष्मणः पतितः शैते शरतल्येगतासुपत्।।

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो मदाद्युतिः।

अहमत्यनुयास्यामि तथैवेनं यमक्षयम्।।

---

(1) वा.रा.6/49/5,6,12,17

वाल्मीकि में मेघनाद वध के उपरान्त रावण जितना मर्माहत हुआ, कवि ने उसके शोक को अत्यन्त विगलित वेद्यन्तर रूप में व्यंजित किया है। पुत्र का मृतशरीर-उद्दीपन विभाव, उसके पूर्वकृत दुर्दर्ष साहसिक कार्यों का गुणगान, ग्लानि, आवेग, मुख का आरक्त होना, अश्रुरूप दाँतों का कटकटाना कहीं करुण तो कहीं रौद्र रस की सीमा का स्पर्श करता है। वाल्मीकि ने इसकी व्यंजना इस प्रकार की है-

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महावल।
जित्येन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः।।[1]
ममनाम त्वया वीर गतस्य यमसदनम्।
प्रेतकार्याणि कर्याणि विपरीते हि वर्तसे।।
एवमादि विलापार्तं रावणं राक्षसाधिप।
आविवेश महान् कोपः पुत्र व्यसन सम्भवः।।
दन्तान विदशतस्य श्रयते दशनस्वनः
यन्त्रस्याकृष्यमाणस्य मथ्नतोदानवैरिव।।

जानकी जीवन में इस अवसर पर कवि करुण रस का पूर्ण परिपाक दिखा सकता था किन्तु यह भावसन्धि ही बनाकर रह गया है-

गुणाग्रयसुधर्षणोच्छ्वसितमन्युशोकव्यथः।
पणीकृतनिज स्मितो दशमुखस्त्रिलोकव्रणः।।[2]

पौलत्स्य वध करुण रस का चरम उत्कर्ष स्थल है त्रैलोक विजयी रावण मृत्यु को प्राप्त होकर अपनी कीर्ति, यशोगाथा, दुर्दान्तता को पददलित कर चुका ऐसे समय विभीषणं और उसकी मन्दोदरी सहित रानियों का कारुणिक विलाप अत्यन्त स्वाभाविक रूप में वर्णित है कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि कथा का यह एक तरह से फलागम है, निर्वहण सन्धि है, उपसंहार है प्रतिनायक का वध जैसे मार्मिक स्थल की पहचान वाल्मीकि में भली प्रकार ज्ञात है। विभीषण के विलाप में आश्रय विभीषण-आलम्बन मृत रावण का शरीर उसका गुण कथन विभीषण की ग्लानि, अधैर्य, अश्रु इत्यादि से तथा मन्दोदरी सहित रानियों का करुण विलाप पति के शरीर में गिर पड़ना, छाती पीटना, मूर्च्छित हो जाना अपने अश्रुओं से रावण

(1) वही 6/92 7,14,17,24 (2) जा.जी.14/72/1

के मुख को नहलाना, शोकार्त होकर पति गुणकथन आदि में कहीं वैक्लव्य जड़ता, ग्लानि, अमर्ष, आवेग, वितर्क, उन्माद, प्रलाप इत्यादि कायिक, वाचिक सात्विक एवं विभिन्न संचारियों से करूण रस को जीवन्त किया गया है। विद्वानों ने उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त माना है। अतः यह उपसंहार का स्थल अपनी कारूणिकता के लिये वाल्मीकि ने अमर कर दिया है। प्रारम्भ में विभीषण सम्बन्धी कुछ स्थल देखकर अन्त में स्त्रियों के आर्तपुकार में जिस करुण रस की विवृत्ति हुई है उसके उदाहरण अधिक मार्मिक है-

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं विर्जितं रणे।
शोकवेग परीतात्मा विललाप विभीषणः।।
वीर विक्रान्त विख्यात प्रवीणनमकेविद।
महार्हशयनोनेप किं शेषे निहतो भुवि।।
तदिदं वीर सम्प्राप्तं पूर्वमीरितम्।
काममोहपरीतस्य यत तन्त रूचितं तव।।
रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना।
अन्तः पुराद् विनिष्पेन राक्षस्यः शोककर्शिताः।।
ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तुशोक पराजिताः।
करिव्य इव नर्दन्त्यः करेष्वो हत यूथपाः।।
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणयां सुषु।
पिनेतुस्तस्त गात्रेषुच्छिन्ना वनलता इव।।[1]
उत्छिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्तते।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा कार्चिन्मोहु मुपागतम्।।
काचिदङ्के शिरः कृत्वा रूरोद मुखमीक्षती।
स्रादयन्ती मुखं वाण्पैस्तुषारैरिवपंकजम।।
एवं वदन्त्यी रुरूदुस्तस्य ता दुःखिताः स्त्रियः।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः।।
एव भार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि।
यक्रशुर्बहुधा शोकाद भूयस्ताः पर्यदिवयन्।।

(1) वा.रा.6/120/1,3,7,9,10,11,17

इष्ट की हानि और अनिष्ट की आशंका सीता निर्वासन और उनके भूमि विवर प्रवेश के समय अपनी चरम सीमा में दिखाई पड़ता है कुछ दोहद कुछ अपवाद एवं रजक प्रसंग के कारण राम को अपनी प्राणबल्लमा सीता को आसन्नप्रसवा अवस्था में अनिश्चित काल के लिये त्यागना पड़ा और जिसकी परिणति सीता के सौगन्ध पर भूमि विवर प्रवेश पर हुई। वाल्मीकि ने अनिष्ट की प्राप्ति एवं उसकी आशंका दोनों परिस्थितियों पर करुण रस का परिपाक दिखाया है। लक्ष्मण के वापस लौटने के साथ ही सीता का शोक उद्विग्नता, सन्ताप, रुदन से अनिष्ट प्राप्ति की आशंका जनित करुण का प्रारम्भ हुआ–

दूरस्थं रममलोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः।[1]
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत्।।
सा दुःखभारावनता यशस्विनी,
यशोधरा नाथमपश्यती सती।
रूरोद सा बर्हिणनादिते वने,
यदास्वनं दुःखपरायणा सती।।

इस शोक का उपसंहार सीता के भूमि विवर प्रवेश पर हुआ उनकी शपथ से पृथ्वी ने उन्हें स्थान दिया इस हेतु सीता की दृढ़ता अनन्यता तथा भूमि प्रवेश के समय अद्भुत रस की भावासन्धि एवं राम का शोक, जड़ता, मोह आदि के द्वारा करुण रस का प्रसार हुआ है। यहाँ सीता–आलम्बन, सत्य प्रजा सहित रामादिक भाई–आश्रय, वेपथु, जड़ता, अश्रु प्रिया गुण स्मरण, अमर्ष आदि कायिक, वाचिक, सात्विक तथा संचारी भावों से करुण रस का पूर्ण परिपाक कवि ने दिखाया है। प्रारम्भ में सौगन्ध और आश्चर्य का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।।[2]
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माघवी देवी विवरं दातुमर्हति।।

रामादिक भाइयों के शोक की व्यंजना वाल्मीकि ने इस प्रकार की है–

दण्डकाण्ठभवभ्य वाष्पव्याकुलिते अगः।
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यसीत् सुदुःखितः।।[3]

---

(1) वही 7/48/25,26 (2) वा.रा.7/97/14,15 (3) वही 7/98/2,3,5

सा रूदित्वा चिरं कालं बहुशो वाष्पमुत्सृजन।

क्रोध शोकसमाविष्टो रामो वचनम ब्रवीत।।

सादर्शनं पुरा सीता लंका परिमहोदधेः।

ततश्चावि मयाऽऽनीता किं पुर्नवसुधातलात्।।

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण में ब्राह्मण पुत्र राम-लक्ष्मण का सरयू प्रवेश जैसी अनेक करुण पर्यवसित घटनायें चित्रित हैं जिनमें कथात्मक सौन्दर्य तो है किन्तु वह रस दशा को नहीं पहुँच सके। ऐसे स्थल भावदशा कहलाते हैं।

जानकी जीवन में कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना के माध्यम से इस प्रसंग को प्रजातान्त्रिक ढंग से निरूपित करने का प्रयास किया है। सम्भवतः कवि को भी किसी विरोधाभासी कलंक के द्वारा विदेशगमन (निर्वासित) होना पड़ा। समान अनुभूति के कारण कवि ने भूमिका में सीता निर्वासन को अनेक साक्ष्यों द्वारा निर्दोष सिद्ध किया है क्योंकि अग्नि परीक्षा के समय देवता, मनुष्य मनुष्येतर, ब्रह्मा, शिव, अग्निदेव ने उनके सतीत्व को प्रमाणित किया था अतः एक जन सामान्य के कहने मात्र से लोकापवाद सिद्ध नहीं किया जा सकता और राम जैसे न्यायी एक पत्निव्रत, धर्मनिष्ठ, राजा या वैयक्तिक रूप में क्षत्रियपति से यह अपेक्षा भी नहीं हो सकती कि वह इस प्रकार की निर्दयता पूर्ण निर्णय ले अतः कवि ने अनिष्ट आशंका को ही विस्तृत कर करुण रस की सृष्टि की है जिसमें राम-आश्रय उनका अमर्ष, आवेग, तर्क, गति, धृति आदि संचारी भावों से यह आशंका व्यंजित हुई है और अन्त में वशिष्ठ द्वारा प्रजातान्त्रिक ढंग से अरस्तू के विरेचन सिद्धान्तानुसार सुखात्मक कथा का पर्यवसान किया गया है। कहना नहीं होगा कि साधारणी करण के अन्तर्गत करुण रस के रसास्वादन की समस्या उठाते समय भारतीय आचार्यों ने गम्भीर और सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन किया है यदि रस शुचि, पूत, उज्ज्वल मेध्य, हृदययावर्जक और आनन्द पर्यावसायी है तो करुण रस के परिपाक में दुःखानुभूति होनी चाहिये जबकि साधारणीकरण का सिद्धान्त आनन्दानुभूति की सहर्ष घोषणा करता है इसी प्रकार अरस्तू ने ट्रेजडी के परिप्रेक्ष्य में सुखात्मक पर्यवसान हेतु विरेचन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिसका निष्कर्ष यह है कि करुण रस के स्थलों को पढ़-सुन-देखकर सहृदय सामाजिक के मनः पटल पर जो मनोविकारत्मक दुःखात्मक आवेग आते हैं अश्रुओं के माध्यम से उनका विरेचन होता है और फिर वहाँ

ब्रह्मानन्द सरोवर अखण्ड शेष रह जाता है। कवि राजेन्द्र ने प्रजा के समक्ष सीता के कलंक कालिमा प्रच्छालन हेतु जिन तर्कों को प्रस्तुत किया है वह आज भी समीचीन और प्रासंगिक है। नारी अस्मिता उसके सरोकारों से आज भी जीवन्त हैं अतः वशिष्ठ ने मनोवैज्ञानिक ढंग से लोक हृदय में बीज रूप में पड़े हुये अंकुरण से पूर्व सन्देह मनोभाव को मति, धृति, तर्क, विवेक आदि संचारियों से उस अंकुर का समूल उच्छेदकर सुखपर्यवसायी करना या समापन किया है यहाँ हम राजेन्द्र मिश्र द्वारा धनंजय प्रोक्त अनिष्ट की आशंका के कारण राम के मन में उद्‌बुद्ध करुण भाव का चित्रांकन इस प्रकार किया है। आश्रय-राम का किवाड वन्दकर एकाकी रहना-जड़ता, प्रजा दर्शन से विरत होना-औदास्य, लक्ष्मण से वाचिक अमर्ष एवं आवेग से इस आशंका की पुष्टि की गई है-

दुर्मुखेऽपसृते व्याथार्तो भूपतिः कालकूटदहद्‌वपुः सम्मूर्च्छितः।
राजसौध कपाटरूद्धं सार्गलं सत्वरं प्रविधाय चात्मानं स्थितः।।[1]
नाऽगतो जजनीः प्रणन्तुं नोऽथवा सोदरैस्सह पूर्ववद् वार्तादंधे।
मैथिलीमपि गर्भिणीं प्रपच्छ नो बल्लभां कुशलं न वाऽऽदन्नोपयौ।।
माऽतिमात्रमुपेहि दैन्यं लक्ष्मण! जीविते भाविता न मम्युत्सादनम्।
कैकेयीमुपशिक्षितुं कामं पुरा नाऽशकं ननु सान्त्वयिप्ये राघवम्।।
राघवाश्रितमेव नो सिहासनं मत्तपोभिरिहोह्यते भांरमुतः।
भूपतिर्न निरङ्.कुशत्वं भास्यति चेष्टिते मयितद्‌दिधास्थेऽपं कुशम्।।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य दोनों काव्यों में लक्षणानुधावन के रूप में करुण रस के स्थल मिलते हैं जिसमें दशरथ मरण, भरत का शोक, बालि वध, मेघनाद, रावण, कुम्भकर्ण वध तथा सीता निर्वासन (वाल्मीकि) में करुण रस के मार्मिक स्थल हैं यहाँ मैं एक नवीन ढंग से विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहती हूँ, क्योंकि प्रायः शोधग्रन्थों में इस प्रकार का विश्लेषण न के बराबर हुआ है यद्यपि करुण रस को पूर्ति हेतु कुछ उदाहरण मैंने भी लिखे हैं किन्तु यहाँ रसास्वादन की दृष्टि से विश्लेषण आवश्यक है रावण-वध, मेघनाद, कुम्भकर्ण-वध वस्तुतः प्रतिनायक और उसके सहायक पात्र हैं जो पाठ्कों, सहृदयों, सामाजिकों के मन में क्या सचमुच ही करूण रस की निपत्ति करेंगे? उत्तर में निवेदन है कि जहाँ सामाजिक या रसिक

(1) जा.जी.17/35,34,55,54

का तादाम्य नहीं होगा वहाँ रसास्वादन में व्याघात उत्पन्न होगा और ऐसे स्थल रसाभास या भावाभास के स्थल ही कहलायेगें इस दृष्टि से दशरथ मृत्यु, भरत की ग्लानि, प्रक्षिप्त ही सही सीता का निर्वासन करुण रस के पूर्ण परिपाक के स्थल हैं।

करुण रस के अधिक स्थल वाल्मीकि रामायण में है जबकि जानकी जीवन में कम और जो भी हैं उनमें पूर्ण परिपाक नहीं होता इसीलिये रस की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण यथार्थ वास्तविक और अक्षय निधि है जबकि जानकी जीवन इस दृष्टि से अधिक सफल नहीं है।

रौद्र रस

श्री राम दहिन मिश्र ने लिखा है कि "जहाँ विरोधी दल की छेड़खानी, अपमानादि से प्रतिशोध की भावना जाग्रत होती है वहाँ रौद्र रस होता है। विरोधी दल के व्यक्ति-आलम्बन। उनके द्वारा किये गये अनिष्ट काम, अपकार, कठोर वचनादि-उद्दीपन मुख मण्डल पर लाली दौड़ जाना, भोंह चढ़ाना, आँखें तरेरना, दाँत पीसना, होंठ चबाना, अस्त्र-शस्त्र उठाना, ललकारना, गर्जना-तर्जना, दीनता वाचक शब्द प्रयोग-अनुभाव। उग्रता, अमर्ष, चंचलता, उद्वेग, मद, असुया, श्रम, स्मृति, आवेग संचारी भाव तथा इसका स्थायी भाव शोक है।"[1]

आलोच्य काव्यों में लक्षण परशुराम संवाद, कैकेयी वरदान प्रसंग रावण-मारीच संवाद, सीता-रावण संवाद, रावण और मेघनाद के क्रोध ऐसे ही स्थल हैं जहाँ रौद्र रस की व्यंजना हुई है। यहाँ एक बात स्मर्तव्य है कि रौद्र, वीर के संचारियों की उभयनिष्ठता के कारण दोनों रसों का मेल एक नये भाव की सृष्टि करता है। वाल्मीकि में वनवास प्रसंग में लक्ष्मण का अमर्ष, भरतागमन के समय उनका उत्साह एवं पूर्ण स्मृति जन्य क्रोध ऐसे ही स्थल हैं जिनका वाल्मीकि ने स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। जानकी जीवन में इस रस के कम स्थल हैं क्योंकि कवि का लक्ष्य सीता, नायक राम के जीवन गाथा की महद् व्याख्या करना है। ऐसे राम के जीवन में रौद्र रस का क्या काम है जहाँ लोक वत्सलता, करुणा आदि रूपों की व्यंजना हुई हो आलोच्य काव्यों में एतद् विषयक रस के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यद्यपि वनवास प्रसंग में लक्ष्मण का आक्रोश रौद्र रस की सीमा तक पहुँच गया था। रसास्वादन की दृष्टि से भी यह स्थल रौद्र रस की उपयुक्त व्यंजना करता है किन्तु लक्ष्मण मूलतः

(1) काव्य दर्पण पृष्ठ सं0-197

धीरोद्धत नायक हैं और प्रतिकार अनिष्ट की आशंका से आवेग, उद्वेग, अमर्ष अत्यन्त स्वाभाविक संचारी भाव होते हैं किन्तु राम के प्रबोधन से यह स्थल पूर्ण परिपाक के योग्य नहीं बन सका है इस हेतु कुछ श्लोक दृष्ट्व्य हैं। आश्रय लक्षमण, आलम्वन-पूज्य पिता एवं माता कैकेयी, वनवास की सूचना-उद्दीपन विभाव। उग्रता, अमर्ष आदि संचारियों से रौद्र रस का आभास होता है। भरत, अयोध्यावासियों, पिता दशरथ को बन्दी बनाकर दण्डित करने की वातों में अमर्ष संचारी दिखाई पड़ता है-

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णै र्यदिस्या स्यति विप्रिये।।[1]
भरतयाथ पक्ष्यो वा यो वाप्य हितमिच्छति।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते।।
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसङ्गं वध्यतां वध्यतामपि।।

इसी प्रकार श्रद्धेय के प्रति क्रोध करना रसाभास या भावाभास की सीमा के अन्तर्गत आता है। दशरथ मृत्यु के पश्चात भरतागमन के समय भरत का कैकेयी को धिक्कारना ऐसा ही स्थल है। एक दो उदाहरण दृष्ट्व्य है। मूलतः करुण रस उद्दीपन विभाव के रूप में राम वनगमन, आश्रय भरत के हृदय में शोकमिश्रित, क्रोध का चित्रांकन कवि ने इस प्रकार किया है-

दुःखे मे दुःखम करोर्व्रणे क्षार मिवाददाः।
राजानं प्रेत भावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्।।[2]
कुलस्य त्वभावाय कालरात्रिरिवागता।
अंगारमुपगूह्य स्म पिता मे नावकुद्धवान्।।
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि।।

इसी प्रकार आलम्बन की हीनता के कारण शत्रुघ्न का क्रोध रस सीमा का स्पर्श तो करता है और सहृदय की सहानुभूति मन्थरा को नही मिल पाती आश्रय-शत्रुघ्न, आलम्बन-मन्थरा,

(1) वा.रा.2/29/10,11,12 (2) वा.रा.2/73/3,4,5

वस्त्रापेष्टित मन्थरा का रूप एवं कार्य–उद्दीपन विभाव, उनका बलपूर्वक पकड़ना, घसीटना, धिक्कारना कायिक और वाचिक अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग, संचारी भाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं–

स च रोषेण संवीतः शत्रुघ्नः शत्रुशासनः।
विचकर्ष तदा कुब्जां क्रोशन्तीं प्रथिवी तले।।[1]
स बली बलवत् क्रोधाद् गृहीत्वा पुरुषर्षभः।
कैकेयीमपि निर्भर्त्स्य बभाषे परुष वचः।।
तैर्वाक्येः परुषैर्दुःखेः कैकेयी भृशदुःखिता।
शत्रुघ्न भय संत्रस्ता पुत्रं शरणमागता।।

इसी प्रकार ससैन्य चित्रकूट में भरतागमन की सूचना सुन लक्ष्मण अपने को संयत नही रख सके–

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यम ब्रवीत्।
दिधक्षन्निव तां सेनां रूषितः पावको यथा।।[2]
सम्पन्नं राज्यमिच्छस्तु व्यक्तं प्रात्याभिषेचनम्।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः।।
अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः।।
छिन्दंछत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम्।
शरैर्निभिन्न हृदयान् कुंजरांस्तुरगांस्तथा।।
श्वापदाः परिकुर्षन्तु नरांश्च निहतान् मया।

इसी रस का एक अन्य उदाहरण राम–सुग्रीव मित्रता के पश्चात् सुग्रीव के असावधान होने पर लक्ष्मण के क्रोध के समय दिखाई देता है। आलम्वन–सुग्रीव उसकी विलासिता सीता अन्वेषण में की गई उसकी उपेक्षा–उद्दीपन विभाव का कार्य करती है। क्षिप्र, गमन, दीर्घ श्वास, आरक्त नेत्र, सात्विक अनुभाव। आवेग, अमर्ष आदि संचारी से रौद्र की व्यंजना हुई है–

---

(1) वही 2/78/17,19,20 (2) वही 2/96/16,17,28,29

कामक्रोध समुत्थेन भ्रातुः क्रोधाग्निनावृतः।
प्रभंजन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्ततः।।[1]
सालतालाश्व कर्णाश्च तरसा पातयन् बलात्।
पर्यस्यन् गिरिकूटानिद्रुमानन्यांश्च वेगितः।।
शिलाश्च शकलीकुर्वन पद्म्यां गज इवाशुगः।
दूरमेकपरं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद् द्रुतम्।।
स दीर्घोष्ण महोच्छ्वासः कोपसंरक्त लोचनः।
बभूव नर शार्दूलं सधूम इव पावकः।।

यद्यपि इस स्थल से पूर्व लक्ष्मण के इस रौद्र रस की भूमिका में राम का अमर्ष, आवेग, रौद्र रस की पुष्टि करता प्रतीत होता है। आश्रय-राम, आलम्बन-सुग्रीव है। राम का क्रोध, गर्व, पूर्वकृत किये गये कार्यो की स्मृति के रूप में वाल्मीकि ने रौद्र रस की व्यंजना करायी है। राम का सन्देश इस प्रकार वर्णित है-

घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे।
निर्घोषमिष वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि।।[2]
सामात्यपरिषत्कीऽन् पानमेवोपसेवते।
शोकदीनेषु नास्मासु सग्रीवः कुरूते दयाम्।।
उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल।
मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्नैमिदं वचः।।
एक एव रणे बार्ली शरणे निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्।।

रौद्र रस प्रतिपक्षी के प्रति कार्यस्वरूप होता है वाल्मीकि ने कथा नायक राम के क्रोध के साथ ही साथ प्रतिनायक रावण के क्रोध की मार्मिक व्यंजना की है। मेघनाद वध के वाद करुण रस से प्रारम्भ होने वाला तथा प्रतिहिंसा जनित रौद्र मूर्तित होकर दिखाई पड़ता है। तथापि हनुमान रावण संवाद, लंका दहन, विभीषण निर्वासन में भी रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध वर्णित है किन्तु यहाँ पर उसका पूर्ण परिपाक दिखाई देता है। शोक से जिस

(1) वही 4/31/13,14,15,29 (2) वही 4/30/75,79,80,82

प्रतिहिंसा का जन्म होता है वह दुर्दान्त होता है। यहाँ आश्रय-रावण, रावण का मद, गर्व, आवेग, अमर्ष, रौद्र रस की व्यंजना करने में पूर्ण समर्थ है-

तस्य प्रकृत्या रक्ते च क्रोधाग्निापि च।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः।।[1]
घोरं प्रकृत्या रूपं तत् तस्य क्रोधग्नि मूर्च्छितम्।
बभूव रूपं कुद्धस्य रूद्रयेव दुरासदम्।।
तस्य कुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापन्नश्रु विन्दवः।
दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहविन्दवः।।
यन्त्रस्यावेष्ट्यमानस्य महतौ दानवैरिव।
कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत।।

दुःखात्मक वर्ग के भावों में रौद्र रस का अप्रतिम स्थान है। प्रतिपक्षी जितना सबल, उसका कार्य जितना लोकविरुद्ध होगा आश्रय की चेष्टायें उतनी ही प्रखरता एवं उद्धाम वेग से परिचालित होती हैं यद्यपि वाल्मीकि रामायण का लक्ष्य रावण-वध कर अपने साम्राज्य का विस्तार करना नहीं है तथापि राक्षसों के अत्याचार से उसके दुःसाहसिक कृत्यों से पीड़ित जन समूह की रक्षा के कारण राम का आवेग युद्ध के स्थाल पर उत्साह एवं क्रोध भाव की मार्मिक व्यंजना करता है वाल्मीकि रामायण में युद्ध के स्थलों पर नायक-प्रतिनायक, सहनायक तथा अन्यान्य वीरों की क्रिया तत्परता में कायिक, वाचिक, सात्विक अनुभाव संचारी भावों की व्यंजना की है। उदाहरण स्वरूप एक-दो कथन दृष्टव्य हैं। राम द्वारा राक्षसों के संहार के समय उनकी क्षिप्रता आवेग व्यूह संचालन क्षमता का कवि ने अत्यन्त मार्मिकता से वर्णन किया है-

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्र पीडितम्।
बलं रामेण ददृशर्न रामं शीघ्र कारिणम्।।
प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम्।
इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः।।
न ते ददृशिरे रामं दहन्तमपि वाहिनीम्।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना।।

(1) वही 6/92/21,22,23,25

जानकी जीवन में भी रौद्र रस की व्यंजना हुई है राम–रावण युद्ध के समय नायक–प्रतिनायक के क्रोध को समान रूप से व्यंजित किया गया है। क्योंकि दोनों के क्रोध का सम्बन्ध पूर्वकृत अनिष्ट, दुष्टता, अत्याचार और उसके प्रतिकार स्वरूप देते हुये कहा जा सकता है कि रावण का मद, अमर्ष, आवेश तो राम के वाचिक अनुभाव में ऐसे ही संचारी भाव व्यंजित हैं–

जगाद किल राघवं दशमुखो रूषा भर्त्सयन्।
कुलक्षय फलानि ते समुपनेष्यते रावणः।।[1]
अये भूषित वैभव! स्मरसि किन्न मां विक्रम–
प्रसारजित निर्जरं त्रिभुवनैकमल्लं रणे।।
निवार्य रघुनन्दनस्तमिति वादिनं प्रावदत्
मदान्ध! कुलपांसन! त्रिभुवनत्दुतोत्पीडक।
श्रुतं बहुदशास्य! ते समरशौर्यमीक्षेऽद्य च,
त्वदन्थ इह भूतले प्रथित विक्रमः कोऽपरः ?।।

राम–रावण युद्ध तो रौद्र रस का ऐसा स्थल है जिसके एक ओर उत्साह या वीर रस तो दूसरी ओर वीभत्स रस तो तीसरी ओर भयानक एवं चौथी ओर सीता–प्राप्ति की आशा ऐसे चतुष्पथ पर स्थित रौद्र रस आकर्षक, भव्य, उदात्त और प्रभविष्णु बन बैठा है। वीर रस में आवेग और उत्साह तो होता है किन्तु रौद्र में प्रतिपक्षी द्वारा किये गये कार्यो के कारण प्रतिहिंसा होती है। कवि वाल्मीकि ने ऐसे मनोवैज्ञानिक वेग से रौद्र रस का पुटपाक सदृश वर्णन किया है। राम और रावण परस्पर आश्रय और आलम्वन है। आलम्बन के रूप को देखकर आश्रय की चेष्टायें कितनी रौद्र रूप में व्यंजित होगी कवि ने प्राकृतिक परिवेश और कायिक अनुभाव से व्यंजित किया है–

दशास्यो विंशति भुजः प्रगृहीत शरासनः।।[2]
अदृश्यतः दशग्रीवौ मैनाक इव पर्वतः।
स कृत्वा भ्रुकुटिं कुद्धः किचित् संरक्त लोचनः।।

---

(1) जा.जी.14/76,77 (2) वा.रा.6/102/36,38,39,40

जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव राक्षसान्।
तस्य कुद्धस्य वदनं दृष्ट्व्य रामस्य धीमतः।।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी।।
सिंह शार्दूल वांछैलः संचचाल चलद् द्रुमः।
बभूव चापि क्षूमितः समुद्रः सरितां पतिः।।

यहाँ यह कहना पिष्टीपेषण मात्र ही होगा कि राम कथा भावों का अक्षय भण्डार है कवि प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति के सहारे इन भावों को संचारी भावों के संगुम्फन से रसों का सफल सन्निवेश कर सकता है। घटनाएँ, परिस्थितियाँ और अभिव्यंजना कौशल रस के पूर्ण परिपाक के साथ ही किसी के अभाव में रसाभास रूप ही व्यंजित कर पाता है। हनुमान अंगद, तथा युद्ध के समय कुछ वीरों का क्रोध ऐसे ही स्थल हैं। इसी प्रकार उत्तर काण्ड में सीता निर्वासन के समय लक्ष्मण का प्रतिकार अमर्ष और आवेग के कारण रौद्र रस का स्थल तो है किन्तु पूज्य भाव के कारण वह रौद्र रस का रसाभास ही बन सका है।

तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि रामायण कोमल हो या कठोर, सरल हो, भावुक हो अथवा दुर्दर्ष हो सभी भावों की व्यंजना करने में पूर्ण समर्थ है। रौद्र रस मूलतः ओज गुण प्रधान रस है अतः कवि ने रौद्र रस या रसाभास के लिये जिन स्थलों का चयन किया है वह एक ओर मानव जीवन के शाश्वत अनिवार्य सत्य है। उनकी अभिव्यंजना हेतु कवि ने संयुक्त व्यंजना युक्त दीर्घ समास बहुला शब्दावली का प्रयोग किया है जबकि जानकी जीवन में इस रस की व्यंजना कुछ ठीक हुई है। विश्वामित्र का आक्रोश, लक्ष्मण का अमर्ष, सीता निर्वासन को सुनकर भरतादि भाईओं का हार्दिक भाव रस दशा को नही पहुँच सका कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण भाव और रसों का अगाध विस्तृत सागर है जिसमें महार्ध रत्न सहज रूप में उपलब्ध हो जाते हैं।

वीभत्स रस

वीभत्स रस का स्थाई भाव जुगुप्सा है जो किसी अनभिमत गार्हणीय अथवा उद्वेगजनक वस्तु को देखकर या सुनकर अथवा गन्ध, रस, स्पर्श दोष के कारण उत्पन्न होता है।[1]

श्मशान, शव, चर्बी, सड़ा माँस, रुधिर, मल-मूत्र, दुर्गन्ध घृणोत्पाक वस्तु और विचार

(1) रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ सं0-372

आलम्बन विभाव। पक्षियों का माँस नोचना, मांसभक्षी जीवों का माँसार्थ युद्ध, कीड़ों-मकोड़ों का बिलबिलाना, आहत आत्मीय का छटपटाना, कुत्सित रंग रूपादि उद्दीपन विभाव। आवेग, मोह, व्याधि, जड़ता, चिन्ता वैवर्ण्य, उन्माद, निर्वेद, ग्लानि, दैन्य आदि संचारी भाव हैं।[1]

यद्यपि काव्यशास्त्रीय विश्लेषण के सैद्धान्तिक रूप की दृष्टि से वीभत्स रस रसदशा की कोटि में नहीं आता है फिर भी जुगुप्सा भाव की पूर्णता के लिये इस रस की कल्पना की गई है। वाल्मीकि ने युद्ध प्रकरण पर अथवा राक्षस राक्षसियों के विकृत भयद् रूपाकृतियों के वर्णन में वीभत्स रस का वर्णन किया है। नील द्वारा प्रहस्त वध के समय सांगरूपक अलंकार के द्वारा रक्त प्रवाह, यकृत, प्लीहा, आँते आदि का वीभत्स रूप में चित्रांकन किया है-

हतवीरौधवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम।
शोणितौधमहातोयां यमसागरगामिनीम्।।[2]
यकृत्प्लीहमहापंकां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम्।
भिन्नकाय शिरोमीनाभंगावयवशाद्वलाम्।।
गृध्रहंसवराकीर्णां कंकसारससेविताम्।
मेदः फेन समाकीर्णामार्तस्तनितनिः स्वनाम्।।
तां का पुरुष दुस्तारां युद्ध भूमिमयीं नदीम्।
नदीमिव घनापाये हंस सारसेसेविताम्।।

वाल्मीकि रामायण में वीभत्स वर्णन कम हुआ है। वीर रौद्र रस के प्रसंगों में वीभत्स जनक वस्तुओं का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। ऐसे स्थल में दीर्घ समास, दुत्व वर्ण एवं संयुक्त शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है-

सोष्णीषौरुत्तमाङ्गैश्च सांगदैर्बाहुभिस्तथा।
उरुभि र्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः।।[3]
हयैश्च द्विपमुख्येच रथैर्भिन्नैरनेकशः।
चामर व्याजरैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि।।
रामेण बाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूल पट्टिशैः।
खड्गैः खण्डीकृतैः प्रासैर्विकीर्णैश्चपरश्वधैः।।

(1) काव्य दर्पण पृष्ठ सं0-217 (2) वा.रा.6/58/29-32 (3) वही 6/25/43-46

चूर्णितानि शिलाभिश्च शरैश्चित्रैरनेकशः।
विच्छिन्नैः समरे भूमि र्विस्तीर्णाभूद् भंयकरा।।

जानकी जीवन में भी युद्ध प्रकरण में वीभत्स रसाभाव का आलांकारिक रूप इस प्रकार वर्णित हुआ है-

विभिंन्न शिरसो भुवि प्रवहमान रक्तांचिता।
निपेतुरत्र राक्षसाः क्रकचकृत्त वृक्षप्रभाः।[1]
बभौ समरमेदिनी त्रुटितहार केयूरिणी,
शरत्समय शर्वरी विशदता ताराङ्किता।।

यद्यपि हनुमान द्वारा लंका दहन के अवसर पर वीभत्स रस का अच्छा परिपाक हो सकता था किन्तु वहाँ कवियों ने रौद्र, वीर और भयानक रसों का सफल सन्निवेश किया है इसलिये वीभत्स रस को उतना स्थान मिल नहीं सका।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य काव्यों में बीभत्स रस की व्यंजना कम हुई है यहाँ यह कहना असमीचीन नहीं होगा घृणोत्पादक, जुगुप्साप्रधान वस्तुओं के आलम्बन रूप में वर्णन करने युद्धों का सजीव चित्रांकन बिना चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण किये हुये मात्र कल्पना के द्वारा बीभत्स रस की व्यंजना सम्भव नहीं है। वाल्मीकि ने कल्पना प्रसूत युद्धों का विशद और अधिक वर्णन किया है इसलिये अस्त्र-शस्त्रों स्थलों आदि के वर्णन में पुनुरुक्तियाँ अधिक दिखाई देती हैं यदि वाल्मीकि एक ही युद्ध का चित्रांकन करते तो विभिन्न स्थलों में बिखरे हुये बीभत्स रस के आलम्बन एकत्रीभूत होकर रस का पूर्णपरिपाक कराने में समर्थ होते।

जानकी जीवन में कथाप्रवाह अत्यन्त उद्दाम वेग से संचालित हो रही है इस कारण कठोर रसों का पूर्ण परिपाक नहीं हो सका है।

भयानक रस

"भयदायक वस्तुओं के देखने या सुनने अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायी भाव होकर परिपुष्ट होता है तब भयानक रस उत्पन्न होता है।"[2]

इसका स्थाई भाव भय है। भयदायक वस्तुयें-आलम्बन। भयानक वस्तुओं का

(1) जा.जी.14/42 (2) काव्य दर्पण-199

उल्लेख-उद्दीपन। कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, स्वर भंगादि अनुभाव एवं चिन्ता, शंका, दैन्य अपस्मार संचारी भाव हैं।

रामकथा में भयानक रस के स्थल या तो अद्भुत रस सम्मिलित हैं या राक्षसों की विकृत आकृति, चेष्टाओं में भयानक रस का उद्भावन करते हैं। हनुमान का समुद्रोल्लघंन, द्रोणाचल आनयन, सेतुबन्धन, धनुष भंजनादि, स्वपक्ष में विस्मय का संचार करते हैं तो दूसरी तरफ राक्षसों के मायावी आचरण भय की सृष्टि करते हैं। इसी प्रकार कुम्भकर्ण के विशाल शरीर को देख भय ही उत्पन्न होता है। लंका दहन का दृश्य इस रस की दृष्टि से सर्वोत्तम स्थल है, किन्तु डा0 कामिल बुल्के इसे प्रक्षिप्त मानते हैं साथ ही रावण के साथ पाठकों की सहानुभूति न होने के कारण शुद्ध भयानक रस की प्रतीति भी नहीं होती है। साथ ही वाल्मीकि ने अनेक अवसरों पर अपशकुनों या उनकी भयंकरता का उल्लेख विभाव पक्ष की पूर्णता पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है। कुल मिलाकर रामकथा में भयानक रस के विभाव पक्ष, आश्रय की चेष्टाएँ आदि में इस रस का पूर्ण परिपाक देखा जा सकता है। डा0 जानकी प्रसाद द्विवेदी ने वाल्मीकि रामायण में तीन प्रकार के दृश्यों का उल्लेख किया है। प्रथम प्रकार का भय उत्तम पात्रों के मन में होता है जैसे-राम के शस्त्रास्त्र संचालन एवं अद्भुत कृत्यों में राक्षसों का भयभीत होना। दूसरे प्रकार का भय वन्य पशुओं, पक्षियों का है-तीसरे प्रकार का भय निम्न कोटि के साधारण पात्रों में देखा जाता है जैसे-रावण के क्रोध से मारीचि या उसकी सेनाओं का भयभीत होना आदि।

सर्वप्रथम मूलकथा से इतर एकाध पात्रों में भयानक रस का उल्लेख करेंगे। विशवामित्र की उग्र तपस्या तेज को देखकर रम्भा भयभीत हो गई। और उसने देवताओं के आग्रह को अस्वीकार सा कर दिया। वह कहती है उग्र तेजी विश्वामित्र अत्यन्त भयंकर है देखकर उसे डर लगता है, कम्प आदि से यह भयानक रस व्यंजित हुआ है।

<u>उदाहरण</u>- अयं सुरपतेघोरो विश्वामित्रो महामुनिः।
क्रोधंमुत्स्रक्ष्यते धारंमयि देव न संशयः।।[1]
ततो हि मे भयं देवप्रसादं कतुर्मर्हसि।
एवं मुक्तस्तथा राम सभयं भीतया तदा।।

---

(1) वा.रा.1/64/3-5

तामुवाच सहस्राक्षो वेपमानां कृतांजलिम्।
मा भैषी रम्भे भद्रं ते कुरूष्वगम् शासनम्।।

राम का धनुषभंग अद्भुत और वीर रस के सम्मिश्रण से व्यंजित हुआ है इसमें एक तरफ जनक सहित नागरिकों का हर्ष तो दूसरी ओर सीता विवाह के लिये इच्छुक राजाओं के मन में भय का संचार हुआ है। धनुषभंग की ध्वनि उद्दीपन विभाव। आश्रय जनक का मूर्च्छित होना। कम्प जड़ता आदि संचारी भाव दिखाई देते हैं।

तस्य शब्दो महानासीन्निधीत समनिःस्वनः।
भूमिकम्पश्च सुमहान पर्वतस्येव दीर्यतः।।[1]
निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः।
वर्जयित्वा मुनीवरं राजानं तो च राघवौ।।
प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन राजा विगत साध्वसः।
उवाच प्रांजलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम्।।

इसी प्रसंग में राजेन्द्र मिश्र ने परिस्थिति एवं पात्रगत भयानक रस की पुष्टि इस प्रकार की है-धनुषभंग की ध्वनि आलम्बन विभाव। कम्प, भय, जड़ता स्वेद आदि का वर्णन अत्यन्त भावुक होकर किया है।

कोदण्डभैषं रघुनन्दने प्राक प्रभंजयत्येव चकम्प भूमिः।
वैवर्ष्य दैन्योपहता महीपा आवाड्.मुखा भीतियुतानिपेतुः।।[2]
प्रशिश्यरे दिक्षु नदन्मतंगा भमौ धराभारम नन्तकोऽपि।
कुलाचलाश्शीर्ण तरास्तक्तचुर्त्योमपि चिच्छेहिसन्धि बन्धान।।
क्षणं जहुश्चाप्सरसोऽपि नृत्यं न किंन्नराश्चापि दयाम्वभूवुः।
भीतोत्थिता नो सुषुपुर्दिगीशः स्वयंशचीशोऽपि शुशाव भीत्या।।

इसी प्रकार कैकेयी के वर याचना प्रसंग में उसके रौद्र रूप को देखकर दशरथ के मन में अशंका जनित भय उत्पन्न होता है। आश्रय-दशरथ, निर्लकांरा कैकेयी-आलम्दन विलाप, जड़ता मूर्च्छा आदि से भयानक रस की व्यंजना होती है।

यद्यपि यह शृंगार का आभास वात्सल्य का रसाभास एवं भयानक रस की प्रतीति के

(1) वही 1/67/18-20 (2) जा.जी.7/72,73,74

स्थल हैं, दशरथ का दैन्य उनका विलाप दृष्टव्य है।

मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीनं लालप्य मानस्य कारूण्यं कर्तुमर्हसि।।[1]
तां हि वज्रसमां वाचमाकर्ण्य हृदयाप्रियाम्।
दुःखशोकमयीं श्रुत्वा राजा न सुखितोऽभवत्।।
स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्यच्छिन्न स्तरूरिवापतत्।।
नष्टन्यित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथातुरः।
हृततेजा यथा सर्पो वभूव, जगती पतिः।।

इसी प्रकार भरत के चित्रकूट गमन में पशु पक्षियों द्वारा भयानक भाव का भास दिया गया है। इस स्थल पर अप्रत्यक्ष रूप से भरत और उसकी सेना आलम्बन विभाव। पशु-पक्षी, हाथियों का भयभीत होकर भागना-आश्रय के अन्तर्गत हैं। वाल्मीकि ने भयंकर गर्जना को उद्दीपन विभाव के रूप में व्यक्तकर किसी राजकुमार अथवा सिंह के आक्रमण के सन्देह की कल्पना के माध्यम से भयभाव का वर्णन किया है-

एतस्मिन्नतरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाद् दुद्रुवर्दिशः।।[2]
स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः।
तांश्च विप्रद्रुतान् सर्वान् यूथपानन्वपैक्षत।।
ताश्च विप्रदुतान्व दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्पनम्।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्तेजसम्।।
राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामतते वने।
अन्यद्धा श्वापदं किंचित् सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि।।

इसी प्रकार दण्डकारव्य में रावण प्रवेश के समय वनस्पितियों, वातावरण में जो आतंक छा गया है विदेशी विद्वानों ने इसे "एडवेन्चर्स स्टोरी" या हारर नाम देकर भय भाव को पुष्ट किया है। वाल्मीकि ने कथा प्रसंगों के साथ हो लोक विश्वासों के रूप में अपशकुन की चर्चा

(1) वा.रा.2/12/34,53,54,55 (2) वा.रा.2/96/4,5,6,9

कर भयानक रस का उदाहरण प्रस्तुत किया है–

ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः।
दृश्यन्ते रावणास्यांगे पर्वस्येव धावः।।[1]
ग्रद्धैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः।
प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवः शिवाः।।
एवं प्रकारा वहवः समुत्पाता भयावहाः।
रावणस्य विनाशाय दारूणाः सम्प्रजज्ञिरे।।
रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शुभानि च।
वभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः।।
वज्रसारं महानादं नानासमितिदारूणम्।
सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम्।।
कंकगृध्र बकानां च गोमायुगणरक्षसाम्।
नित्यभक्षप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम्।।

भयानक रस का उत्तम परिपाक तो श्रेष्ठ नायक या प्रतिनायक में दिखाया जाये तो वह अत्यन्त प्रभावशाली होता है। राम के वाणों के प्रभाव को देखकर–सुनकर रावण के मन में जो त्रास, आशंका उत्पन्न होता है उसमें भयानक रस का परिपाक उत्तम कोटि का माना जाता है–

सा प्रविश्य पुरीं लंका रामवाण भयार्दितः।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः।।[2]
मातङ्.ग इव सिंहेन गरूणेनेव पन्नगः।
अभिभूतोऽभवत राजा राघवेण महात्मना।।
ब्रह्मादण्डप्रकाशानां विद्युत्सदृश वर्चसाम्।
स्मरन् राघव बाणानां विव्यधे राक्षसेश्वरः।।

इसी प्रकार माया के कारण कटे हुये शीश को देखकर सीता या राम पहले भयाभिभूत होते हैं बाद में करुण रस में पर्यवसित होकर वास्तविकता ज्ञात होते ही हर्ष में वदल जाता है एक उदाहरण देखिये–

---

(1) वा.रा.6/ (2) वा.रा.6/108/10,11

श्रुत्वा तु भीम निह्र्लादं शक्राशनिसम स्वनम्।
वीक्ष्यमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरा भृशम्।।[1]
तानुवाच ततः सर्वान् हनूमान मारूतात्मजः।
विषण्ण वदनान् दीनां स्त्रस्तान विद्रवतः प्रथक्।।
कस्माद् विषण्ण वदना विद्रवध्वं पल्पंगमा।
व्यक्तयुद्धमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम्।।

यहाँ यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि पाश्चात्य विचारक विशेष रूप से यूनानी चिन्तकों ने भयानक रस की स्थितियों के मूल में आतंक और करुणा को माना है। आतंक जितना सबल, दुर्दर्ष, त्रासद होगा उसका प्रभाव उतना ही कारुणिक होगा अरस्तु ने लिखा है-

"Tragedy is an imitalion of an acticn Exaiting Terroror and Pity."[2]

इस प्रकार रामकथा में आतंक, त्रास, भय के अनेक स्थल हैं जैसे परशुराम प्रसंग, ताटका, मारीच, सुबाहु के द्वारा किये गये यज्ञ विध्वंस, धनुर्भंग, परशुराम आगमन, कैकेयी का रौद्र रूप, राम द्वारा सीता के समक्ष पंचवटी, दण्डकारण्य का भयद् वर्णन हनुमान का समुद्रोल्लंघन के समय लंका की भयंकरता और युद्ध के समय राम के बाणों का आतंक अथवा रावण द्वारा किये गये नृशंस अत्याचार में भय भाव अपनी तीव्र सीमा में दिखाई देता है साथ ही आश्रय के मन में जो करूण, दैन्य, कम्प .त्रास, मूर्च्छा आदि भाव उत्पन्न होते हैं वाल्मीकि ने उनका उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु उसे रसदशा तक पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सके यदि वे कुछ ही स्थलों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते तब भयानक रस का पूर्व परिपाक दिखाई देता। इसी प्रकार जानकी जीवन में भी भयानक रस का उत्तम परिपाक नहीं हो सका मात्र भयभाव की सृष्टि हो सकी है। तात्पर्य यह कि रामकथा में वीर, श्रृंगार या करुण रस को अंगीरस बनाकर वाल्मीकि ने कथा प्रस्तुत की है, जबकि कथाचित्रफलक वहुआयामीय है, उसमें भय की विविध दशाओं का चित्रांकन तो है जिसे हम उत्तम, भध्यम और साधारण कोटि की रसादशा कह सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि इस रस की दृष्टि से आभास की अनेक स्थितियों में कवि सफल

(1) वा.रा.6/82/1,2,3 (2)

हुआ है किन्तु आश्रय अथवा कायिक, सात्विक या संचारियों के अनुल्लेख से रसदशा का परिपाक ठीक से नहीं हो सका है।

अद्भुत रस

विभावादि के संयोग से विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में व्यक्त होता है। लोकोत्तर वस्तु अथवा घटना इसका प्रधान विभाव है। विलक्षणता या आकस्मिकता उद्दीपन विभाव। नयन विस्तार, अर्निनिमेष दृष्टि, रोमांच, अश्रु, स्वेद, स्तम्भ, वेपथु, साधुवाद या हाहाकार, अनुभाव तथा आवेग, सम्भ्रम, जड़ता, हर्ष, गर्व, स्मृति, मति धृति, भय, तर्क, विबोध, चिन्ता प्रलयादि उसके व्यभिचारी या संचारी भाव माने जाते हैं।[1]

यहाँ संक्षेप में अद्भुत या विस्मय जिसे अंग्रेजी में 'वन्डर' या 'मिस्ट्री' कहते हैं, उसमें आलौकिक और भयोत्पाद वस्तुओं के कारण आश्चर्य उत्पन्न होता है यहाँ यह कहना पिष्टपेषण मात्र ही होगा कि रामकथा क्षत्रिय जाति के नेता राम के महामानव की कथा से प्रारम्भ होकर भक्ति एवं अवतारवाद के कारण यह लोकोत्तर, आलौकिक, विस्मयोत्पादक भाव व्यक्त करने वाली कथा बन गई है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में अद्भुत रस के तीन रूप दिखाई देंगें। (1) आलौकिक कृत्य (2) दिव्य या विस्मयोपादक कृत्य तथा (3) भयजनित आश्चार्य वाले कृत्यों से इस रस की व्यंजना हुई है। इस प्रकार रामजन्म, संक्षिप्त रूप में अहिल्योद्धार, धनुर्भंग, यौवराज्य से वनवास, भरद्वाज का आतिथ्य प्रसंग, खर-दूषण वध, मारीच का कंचनमृग रूप, सीता की अग्नि परीक्षा, के साथ पुष्कल रूप में यत्र-यत्र विस्मय जनक भावों की व्यंजना से अद्भुत रस का संचार हुआ है।

राम जन्म के पूर्व पुत्रेष्टि यज्ञ और पायस प्राप्ति में आलौकिकता दिखाई देती है जिन्हें परवर्ती काव्यों में अद्भुत रस रूप में व्यंजित किया गया है। पुत्रेष्टियज्ञ के समय यज्ञाग्नि से प्राजापत्य पुरूष का प्रादुर्भाव आलम्बन विभाव। दशरथ-आश्रय। तेजस्वी पुरूष की आकृति, दिव्य थाल, एवं पायस उद्दीपन विभाव। दशरथ का हाथ जोड़ना, हर्ष, मति, धृति, आदि से विस्मय भाव रस दशा को प्राप्त हुआ है। वाल्मीकि ने आलम्बन और उद्दीपन विभाव का जीवन्त चित्रांकन किया है-

---

(1) रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ सं0-367/68

कृष्णं रक्ताम्बरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्वनम्।
स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुद्रवरममूर्धजम्।।[1]
शुभलक्षण सम्पन्नं दिव्याभरण भूषितम्।
शैलश्रृंगसमुत्सेधं दृप्तशादूल विक्रमम्।।
दिवाकर समाकारं दीप्तानेल शिखोपमम्।
तप्त जाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम्।।
दिव्यपायससम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव।।
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम्।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमरोग्यवर्धनम्।।

इस आलौकिक, लोकोत्तर या दैवीय चमत्कार के परिप्रेक्ष्य में भरद्वाज आश्रम में भरत आदि सहस्राधिक जनों की एक साथ परिचर्या, स्वागत, सुश्रूषा का वर्णन अनपेक्षित नहीं होगा क्योंकि यह भी आलौकिक प्रसंग ही है। भरद्वाज की योगसिद्धि का चमत्कारिक चित्र आलम्वन रूप में भरतादिक श्रमित, विथकित सेनायें आश्रय, उपलब्ध भोजनादिक सानग्री उद्दीपन विभाव। हर्ष, आवेग, मति, धृति, संचारी भावों से वाल्मीकि ने अद्भुत रस की परिकल्पना की है यद्यपि अयोध्या काण्ड (19 सर्ग) पूर्ण रूप से इस रस को समर्पित है अतः उदाहरण स्वरूप दो-चार श्लोक उद्धृत कर आश्रय की चेष्टाओं का वर्णन किया जायेगा-

शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः।
सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः।।[2]
मलयं दर्दरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः।
उपस्पृश्य ववौ युक्त्वा सुप्रियात्मा सुखं शिवः।।
तस्मिन्नेवंगते शब्दे दिव्ये श्रोत्रसुखे नृणाम्।
ददर्श भारतं सैन्यं विधानं विश्वकर्मणः।।
ततो भुक्तवतां तेषां तदन्नममृतोपणम्।
दिव्यानुद्वीक्ष्य भक्ष्यांस्तान भवद भक्षणे मतिः।।

---

(1) वा.रा.1/16/12,13,14,15,19 (2) वा.रा.2/91/18,24,28,63,80,81

व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्रकल्प तदद्भुतम्।
द्रष्ट्वाऽऽतिथ्यं कृतं तादृग् भरतस्य महर्षिणा।।
इत्येवं रमभाणानां देवानामिव नन्दने।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत।।

अद्भुत रस का दूसरा रूप आलौकिक या अपूर्व वस्तु देखने से प्रकट होता है। वाल्मीकि रामायण में मायामयी कंचनमृग को देख राम-सीता विस्मयाभिभूत हो उठते हैं। आलम्बन रूप में कंचन प्रभा संयुक्त मृग, उसकी क्रियायें उद्दीपन विभाव। हर्ष, विस्मय, नेत्र विस्फार एवं जड़ता से इस रस का परिपाक हुआ है-

स तु रूपं समास्थाय मदद्भुतदर्शनम्।
मणिप्रवर श्रृंगाग्रः सितासितमुखाकृतिः।।[1]
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः।
किंचिदभ्युन्नतग्रीव इन्द्रनील विभोदरः।
मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्क संनिभः।।
विक्रीडंश्च क्वचित् भूमौ पुनरेव निषीदति।
आश्रयद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति।।
अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्न भयं मृगम्।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा।।

राजेन्द्र मिश्र ने भी इसी पृष्ठभूमि में आलम्बन का चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण युक्त बिम्ब प्रस्तुत कर उद्दीपन विभाव और आश्रय की चेष्टाओं के साथ संचारी भावों की कांचनमणिमय संयोग उपस्थित किया है-

हेमसन्निभरोमरजिपरीतकायः उत्प्लनैर्विदधत्सुखं वलनैस्सहेलम्।
स्निग्धलोल विलोकनैः कुतुकं वितन्वन् मैथिलीं मृगरूपधृक् स जगाम तूर्णम्।।
चंचलैः स्वगतातैर्नटनैर्विलोलैर्वल्गुतिर्यगवेक्षणैः प्रकृतक्रियामिः।
जानकी हृदयं जहार स ताटकेयः सम्भुमूर्षुरपि प्रमोहपरोऽभिरामे।।[2]

(1) वही 3.42/15,16,17,26,35 (2) जा.जी.11/69,70,71,72

तप्त जाम्बूनदनिमं समवेक्ष्य रङ्.कुं दुर्लभं तमदृष्टपूर्वमथप्रगाढम्।
चर्मणे स्पृहयांचकार विनोदिताऽसौ मैथिली कुनुकान्विता दयितं वभाषे।।
पश्य कान्त! मृगं सुवर्णतनुं विचित्रं मे मनः प्रसभं हरत्यययुत्प्लवैः स्वैः।
चर्मणे स्पृहयामि तत्सदयं प्रयाचे एनमानयमत्कृते निहतं प्रसीद।।

इसी परिप्रेक्ष्य में लोकोत्तर घटना से अद्भुत रस की सृष्टि वाल्मीकि रामायण में हुई है। लंकादहन के पश्चात् सीता का सकुशल बचना विस्मय कारक दृश्य है। विकराल, भयंकर आग ने सम्पूर्ण कंचन नगरी को भस्मीभूत कर दिया। इस परिणाम को देख सीता के भी अग्नि में जल जाने की आशंका से हनुमान चिंतित हो उठे और उन्हें अपने इस कृत्य पर ग्लानि भी हुई। भला सर्वभक्षी अग्नि किसी को भी छोड़ सकती है? सकुशल सीता को देख आश्रय हनुमान को अत्यन्त अद्भुत एवं आश्चर्य की बात लगी। एक तरफ लंका वासियों का कोलाहल एवं स्त्रियों का करूण विलाप, लंका का भस्मीभूत होना-उद्दीपन विभाव है तो दूसरी तरफ चारणों से सीता के सकुशल बचने की सूचना हनुमान के मन में उद्दीपन विभाव को पूर्णरूप से परिपुष्ट कर दिया है। हर्ष, रोमांच, स्तम्भ, कम्प, पुलक आदि सात्विक एवं संचारी भावों से अद्भुत रस का पूर्ण परिपाक हुआ है-

दग्धेयं नगरी लंका साट्टप्राकारतोरणा।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः।।[1]
इति शुश्राव हनुमान वाचं ताममृतोपमाम्।
वभूव चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसम्भवः।।
स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमान भवत् प्रीतमानसः।।
ततः कपिः प्राप्त मनोरथार्थ-
स्तामक्षतां राजसुतां निदित्वा।
प्रत्सक्षतस्तां पुनरेव दृष्टवा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार।।

इसके अतिरिक्त उत्तरकाण्ड में सीता की सौगन्ध पर पृथ्वी में विवर बनना एवं सीता

(1) वा.रा.5 55/32,33,39,35

का प्रवेश आलौकिक एवं लोकोत्तर घटना है। यहाँ पर देवता, रामादिक भाई यज्ञ मण्डप पर पधारे सभी नरेश एवं प्रजाजन-आश्रय। दिव्य सिंहासनारूढ़ सीता-आलम्वन पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी का सीता को गोद में बैठाना, आकाश से पुष्पवर्षा आदि-उद्दीपन विभाव है। देवताओं द्वारा धन्य-धन्य कहना-वाचिक अनुभाव। हर्ष, जड़ता, रोमांच, स्तम्भ आदि सात्विक एवं संचारी भावों से अद्भुत रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। यद्यपि इसके तुरन्त पश्चात करूण रस का प्रयोग हुआ है। फिर भी अद्भुत रस का यह स्थल अत्यन्त प्रभावी वन पड़ा है। उदाहरण दृष्टव्य है-

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्धैनामासने चोपवेशयत्।।[1]
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीताभवाकिरत्।।
साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः।
साधुसाध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमोदृशम्।।
यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते।
राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे।।
अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावर जंगमाः।
दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः।।
केचिद् विनेदुः संहृष्टाः केचिद् ध्यान परायणाः।
केचिद् रामं निरीक्षन्ते केचिद् सीतामचेतसः।।

दिव्यतापरक आश्चर्याभिभूत करने वाले वाले दृश्य वाल्मीकि रामायण में एक-दो स्थल और हैं इनका संक्षिप्त उल्लेख कर अन्य प्रकार के अद्भुत स्थलों का उल्लेख किया जायेगा। दिव्यतापरक स्थल सीता की अग्नि परीक्षा है। रावण वधोपरान्त राम के कटुक दुर्वाद से सीता को अग्निपरीक्षा देनी पड़ी। जाज्वल्यमान अग्नि में प्रविष्ट करती सीता-आलम्वन। समग्र वानर समूह, लंका की नर-नारियाँ-आश्रय। जड़ता, हाहाकार, आर्तनाद के उपरान्त अत्यधिक उज्ज्वल सती गुणोपेत सीता को देखकर जनसमूह का हर्षनाद अद्भुत रस की सृष्टि करता है। यहाँ

(1) वही 7.97/19,20,21,23,24,25

सीता का अग्नि में प्रवेश, अग्नि देव का मूर्तित होकर सीता के सतीत्व की पुष्टि करने सम्बन्धी श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं-

> ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम्।
> ऋषयो देवगन्धर्वा यज्ञे पूर्णाहुतीमिव।।[1]
> नैव वाचा न मनसा नैव बुद्धया न चक्षुषा।
> सुवृत्ता वृत्तशौटीर्य न त्वामत्यचरच्छुभा।।[2]
> इत्येवयुक्त्वा विजयी महाबलः।
> प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा।।
> समेत्य रामः प्रियया महायशाः।
> सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः।।

इसी प्रकार जानकी जीवनम् में सीता जन्म के समय अद्भुत रस की व्यंजना हुई है। आकाल एवं अनावृष्टि को दूर करने के लिये जनक ने जैसे ही हल चलाया कि प्रकाश पुंज प्रकट होकर जनसामान्य में कौतूहल एवं विस्मय की सृष्टि करता है और कुम्भरूपी शय्या पर सुप्त बालिका-आलम्बन विभाव। बालिका का सौन्दर्य, आकाशवाणी की उद्घोषणा, तुरन्त मूसलाधार वृष्टि के कारण जनक सहित सभी प्रजाजनों में हर्ष, चंचलता, आवेग परिव्याप्त हो गया-

> चकर्ष सीरं भुवि यावदेव प्रकाशधारा प्रकटी वभूव।।
> दृगंचलानि द्युतिभिर्नयन्ती मलीय सान्धत्वंमन्दवेगा।[3]
> सभाजयन्ती कुटुकं समेथां युगान्तमेघोदरदामिनीव।।
> व्यलोकि सर्वैरपि लांगलाग्रप्रहारभिन्नोदरकुम्भतल्पे।
> सुखं शयाना मदिरा मताक्षी दिवौ कसां श्रीरिव कापि वाला।।
> अथाधिरूढ़े नृपतौ द्विभावं ह्यकर्णि वाणी वियदंगणोत्था।
> ग्रहाण सीरध्वज! देवदत्तां सुताभिमां भर्त्सितलोकशोकाम्।।
> ततः क्षणेनैव पयोद धाराप्लवैर्धरित्री सलिलावगाढ़ा।
> विधौत विश्शेषतरूद्रवाला भूतालवाला ददृशे समन्तात्।।

---

(1) 7/116/33 (2) वही 7/118/6,22 (3) जा.जी.1/40/2,42,45,50,52

दुरन्तहृन्ताप करेरिवृत्तं निमेषपूर्वं प्रबभूव यत्र।
अखण्डमानन्दलसदविधानं रराज तत्रैव बलादि दानीम्।।

पहले कहा जा चुका है कि अद्भुत रस के मूल में विस्मय मानव की दुर्दर्ष, प्रचण्ड शक्ति, शूरवीरता पर आश्रित था बाद में अलौकिकता, दिव्यता का भाव जुड़ गया। वाल्मीकि रामायण में साहस सम्बन्धी विस्मय भाव की सृष्टि राम द्वारा एक बाण से सप्त साल वृक्षों का भेदन, दुन्दुभि राक्षस के विशाल अस्थि समूह को मात्र अंगूठे से ही दश योजन में फेंकना शौर्यपरक अद्भुत रस के स्थायी भाव विस्मय के सूचक तथा सीता के प्रति रावण के प्रणय निवेदन के पश्चात् शोकाभिभूत सीता को शान्त करने हेतु त्रिजटा जिस आलौकिक स्वप्न का चित्रांकन करती है वहाँ भी विस्मय भाव राक्षसियों में उत्पन्न करता है।

तात्पर्य यह कि आलोच्य काव्यों में अद्भुत रस मुख्य रूप से दो रूपों में दिखाई देता है। (1) शूरता, प्रचण्ड, दुर्दर्ष शक्ति के कारण विस्मय जनक कृत्यों तथा (2) आलौकिक वस्तुओं के दर्शन या लोकोत्तर दिव्य कार्यों के माध्यम से अद्भुत रस की व्यंजना की गई है। वाल्मीकि रामायण में यह अद्भुत रस अत्यन्त विस्तार के साथ व्यंजित हुआ है जिसमें सात्विक अनुभावों के साथ संचारी भावों का उल्लेख है। यद्यपि एक–आध स्थलों में संचारी एवं सात्विक भावों के स्ववाचात्वदोष मिलता है फिर भी कथा की विशालता, गम्भीरता, धर्म के विग्रह स्वरूप राम के चरित्र की लौकिक, आलौकिक व्याख्या में अद्भुत रस अपने चरम रूप में दिखाई पड़ता है जबकि जानकी जीवनम् में शारीरिक क्षमता और दिव्यता सम्बन्धी स्थलों का वर्णन आलम्बन विभाव के रूप में कर आश्रय की चेष्टाओं का उल्लेख कम स्थलों पर हुआ है।

शान्त रस

भारतीय आचार्यो ने रसत्रयी में शान्त रस की परिगणना की है। उनके अनुसार महाकाव्यों में अंगीरस के रूप में इसकी प्रतिष्ठा की जा सकती है। नाट्य शास्त्र प्रणेता भरत ने आठ रसों में से शान्त रस का उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः आनन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ नवें रस के रूप में इस रस का विवेचन किया है। शान्त रस के स्वरूप का निर्धारण करते हुये डा0 रामदहिन मिश्र ने लिखा है–"संसार से अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्वज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त रस की प्रतीति होती है। संसार की असारता

का बोध या परमतत्व का ज्ञान आलम्बन। सज्जनों का सत्संग, तीर्थाटन, धर्मशास्त्र दर्शनशास्त्र, पुराण आदि का अध्ययन, सांसारिक प्रपंचादि उद्दीपन दुःखी दुनिया को देखकर कातर होना, झंझटों से घबराकर संसार त्याग की तत्परता अनुभाव घृति, हर्ष, उद्वेग, मति, ग्लानि, दैन्य, असुया, निर्वेद, जड़ता संचारी भाव तथा स्थायी भाव निर्वेद या शम है।''[1]

यहाँ यह विवेचन अप्रसांगिक न होगा कि यदि शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद माना गया तो यह एक प्रकार का दोष होगा क्योंकि सभी भारतीय आचार्यों ने निर्वेद को संचारी भाव माना है जबकि राम तत्वज्ञान जन्य सांसारिक आसाक्ति के असम्प्रक्त होने का भाव प्रकट करता है। निर्वेद मात्र तटस्थता ही कहलाती है। इसके अन्य स्थायी भाव में तृष्णाक्षय सुख ही कहा गया है। यहाँ हम शम को स्थायी भाव मानकर आलोच्य काव्यों में प्राप्त रस सम्बन्धी स्थलों की समीक्षा करेंगे। वस्तुतः शम भाव तत्व ज्ञान से उत्पन्न या इष्ट वियोग से उत्पन्न होता है अतः वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में इन्हीं परिप्रेक्ष्य में दो प्रकार के शान्त रस की चर्चा की जायेगी।

रामकथा में तीर्थाटन, प्रकृति का सुरम्य, रमणीक आह्लाद जनक रूपों का बहुविध वर्णन है जिसे देखकर मन के राग, द्वेषादि शान्त हो जाते हैं। साथ ही ऋषि-मुनियों का समागम, इष्ट विनाश, साधु सन्तों के ज्ञान उपदेश की बहुलता है। ऐसे ही परिप्रेक्ष्य में शान्त रस के स्थल मिलते हैं। डा० रामप्रकाश अग्रवाल ने शान्त रस के दो रूपों का उल्लेख किया है-

(1) प्रकृति विषयक शान्त रस।

(2) प्रकृति, वैराग्य विषयक शान्त रस।

1. प्रकृति विषयक शान्त रस–साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने लिखा है-

पुष्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थ रम्यवनादयः।
महापुरुषः संगाथास्तस्योद्दीपनरूपिणः।।[2]

इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण में ऐन्द्रिय शान्ति हेतु अनेक स्थल शान्त रस के उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। निष्कासित राम चित्रकूट की रमणीयता, मनोहारी, मुग्धता देख सात्विक शान्त विचारों से युक्त होकर कहते हैं-यहाँ आश्रय राम, चित्रकूट की

(1) काव्य दर्पण डा०रामदहिन मिश्र पृष्ठ सं0-221-22 (2) साहित्य दर्पण 3/245

पवित्रता, रमणीयता–उद्दीपन विभाव। मति, धृति, मन रमाने की प्रवृत्ति का उल्लेख कर निर्वेद संचारी भाव का उल्लेख किया है–

यावता चित्रकूटस्यनरः शृंगाण्वेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरूते मनः।।
ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शारदां शतम्।
तपसा दिवमारूढ़ाः कपाल शिरसा सह।।
प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्।
इह वा वनवासाय वस राम मया सह।।

वाल्मीकि ने अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत हेमन्त, वर्षा और शरद ऋतु के चित्रांकन का जीवन्त रूप उपस्थित किया है। यह प्रकृति का आलम्ब्न एवं संश्लिष्ट तथा चक्षुरेन्द्रिय गोचर रूप में वर्णन है जिसमें राम–लक्ष्मण के शान्त जीवन का उल्लेख है इसमें तपस्याजन्य क्लेश के कारण विवेक, मति, धृति आदि संचारी भावों को देखा जा सकता है, वस्तुतः इन दृश्यों में लौकिक भावों की प्रधानता है। शुद्ध शान्त रस के चित्रांकन में खींच–तान करनी पड़ती है–

नवाग्रयण पूजामिरम्यर्च्य पितृ देवताः।
कृताग्रयण काः काले सन्तो विगतकल्भषाः।।
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्।।
तर्पयित्वाय सलिलैस्तैः पितृन् दैवतानपि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथा नधाः।।

इस सन्दर्भ में डा0 राम प्रकाश अग्रवाल का कथन है–

"यह प्रकृति का विशुद्ध शान्त रस प्रधान चित्र नहीं है इसमें शम नहीं निर्वेद नहीं वरन् ऐन्द्रिय उल्लास है अतः साहित्य शास्त्र की दृष्टि से इन स्थलों में शान्त रस संदिग्ध है। सीता–हरण से पूर्व चित्रकूट, मन्दाकिनी नवदम्पति के अनुराग एवं विहार के प्रेरक हैं तथा सीता हरण के बाद गोदावरी तथा पंचवटी राम के विरह के उद्दीपन हैं इनमें शान्त रस की खोज खींचतान मात्र है।"

हास्य रस

जहाँ विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंगी-भंगी आदि के देखते सुनने से हास का भाव परिपुष्ट होता है वहाँ हास्य रस होता है। विकृत वा विचित्र हास्यवर्धक चेष्टायें-उद्दीपन। कपोल, कण्ठ का स्फुरण, मुख का विकसित होना अनुभाव। अश्रु, कम्प, हर्ष, चंचलता, श्रम अवहित्था, रोमांच, स्वेद, असुया आदि संचारी भाव हैं।[1]

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने "शृंगारादिधभवेदधास्यः" कहकर इसे शृंगार के अधीन किया गया है। दशरूपककार धनंजय ने विकृत आकार, वचन, चेष्टा पर इसे दो रूपों में विभक्त किया है-

"विकृताकृतिर्वाग्वेषैरात्मनोऽयपरस्थ वा"[2]

इसकी व्याख्या करते हुये डा0 रामप्रकाश अग्रवाल लिखते हैं कि "जब कोई पात्र स्वयं हंसता है तो आत्मस्थ और जब दूसरे को हंसाता है तो वहाँ परस्य होता है।"

भारतीय साहित्य शास्त्र में स्मित, हसित, विहसित[3] अवहसित, अपहसित, अतिहसित इत्यादि भेद कहे गये हैं।[4]

रूपकों में भाण और प्रहसन भी हास्य रस से परिपूर्ण कहे गये हैं। इसी प्रकार परिहास और विनोद भी इसी के रूप हैं।

पाश्चात्य समालोचना के प्रभाव के कारण व्यंग्य के साथ वक्रोति (आयरणी) कटुक्ति (सर्काज्म), कटाक्ष (स्लर), सद्योत्तर (रिपार्टी) तथा जोक, फन, ह्यूमर इसी हास्य विनोद के अंग माने गये हैं।

आलोच्य काव्यों में शुद्ध हास्य के स्थल कम ही हैं किन्तु कटुक्ति, व्यंग्य उपालम्भ और विडम्बना में रस को मिश्रित रूप में देखा जा सकता है।

1. शुद्धहास्य—अयोध्या काण्ड में शुद्ध हास्य का उदाहरण उस समय मिलता है जिस समय राम वन जाते हैं और एक वृद्ध अपनी शक्ति भर दण्ड फेंककर दान सामाग्री प्राप्त करने का प्रयास करता है। त्रिजट गर्ग गोत्रीय अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण आलम्वन। पत्नी के आग्रह पर अपनी सामर्थ्य भर डण्डे को घुमाकर फेंकना-अनुभाव आवेग, हर्ष, चपलता, दैन्य, आदि से शुद्ध हास्य पुष्ट किया गया है-

(1) काव्य दर्पण-डा0रामदहिन मिश्र पृष्ठ सं0-212 (2) दशरूपक 4/75 (3) वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन पृष्ठ सं0-347 (4) नाट्य शास्त्र, भरतमुनि अध्याय 6 तथा दशरूपक 4/76,77

स भार्याया वचः श्रुत्वा शाटीमाच्छाद्य दुश्छदाम्।
स प्रतिष्ठत पन्थानं यत्र राम निवेशनम्।।[1]
भ्रग्वङ्गिरः समं दीप्त्या त्रिजटं जनसंसदि।
आपंचमायाः कक्ष्याया नेतं कश्चिदवारयत्।।
स राममासाद्य तद त्रिजटो वाक्यम ब्रवीत्।
निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल।।
क्षतवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति।
स शार्टी परितः कट्यां सम्भ्रान्तः परिवेष्ट्यताम्।।
आविध्य दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगतः।।
तं परिष्वज्य धर्मात्मा आ तस्मात् सरयू तटान्।
आनयामास ता गावस्त्रिजटस्याश्रमं प्रति।।

इस प्रकार 'परिहासोऽयं मम' के माध्यम से कवि हास्य रस का विधान कर रहा है और यह विधान के असंगति के कारण उत्पन्न है। तपोनिष्ठ वृद्ध ब्राह्मण, तरूणी भार्या का कान्तासम्मित उपदेश, दीन-दुर्बल ब्राह्मण का यथा शक्ति भर दण्ड घुमाकर फेंकना अद्भुत कृत्य तो अवश्य दिखाई देता है क्योंकि असंगतिजन्य ध्वन्यार्थ के कारण तरुणी भार्या के आदेश प्रेरित लोभ ने वृद्ध के मन में शक्ति भी दी थी अतः एक ओर हर्ष चपलता, राम का पुलक, आलिंगन आदि से शुद्ध हास्य दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार मधुबन प्रसंग में कृतकार्य हनुमान वानरों के संग जो उच्छृंखल कार्य करते हैं वह अपहसित की श्रेणी में आता है। वानरों की चेष्टाएँ-उद्दीपन विभाव या आत्मस्थ हसित के रूप में उन्हें आश्रय भी माना जा सकता है यदि परस्य हास्य माना गया तो दधिमुख-आश्रय, वानर-आलम्बन, उनकी क्रियायें-उद्दीपन विभाव और दधिमुख का आवेग अमर्ष आदि संचारी भाव से अवहसित हास्य रस पुष्ट होता है-

हनन्ति स्म सहिताः सर्वे भक्षयन्ति तथापरे।
केचित् पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिंगलाः।।[2]
मधूच्छिष्टेन केचि जह्वुरन्योन्ययुत्कताः।
अपरे वृक्षमूलेषु शाखा गृह्य व्यवस्थिताः।।

---

(1) वा.रा.2/32/32,33,34,37,39 (2) वा.रा.5/62/10,11,13,19

क्षिपन्त्यपि तथान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे।
केचित् क्ष्वेडान् प्रकुर्वन्ति केचित् कूजन्ति हृष्टवत्।।
एतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान्।
बलेनावारयिष्यामि प्रभुंजानान् मधूत्तमम्।।

2. मिश्रित हास्य व्यंग्य—वाल्मीकि गम्भीर, चिन्तक, तत्वदर्शी मनीषी थे फिर भी उन्होंने अपनी गम्भीरता का आवरण उतारकर हास्य रस के अनेक रूप वाल्मीकि रामायण में दिखाये हैं जिनमें से व्यंग्य मिश्रित हास्य अधिक स्थानों में दिखाई पड़ता है।

मंथरा-कैकेयी संवाद में अपनी विकृत और कुबड़ेपन के कारण मन्थरा-आलम्वन कैकेयी द्वारा उसके रूप सौन्दर्य का हास्यात्मक वर्णन असंगति एवं व्यंग्य मिश्रित हास्य के उदाहरण हैं। आश्रय कैकेयी व्यंग्य करती हुई कहती है-

त्वं पद्ममिव वातेन संनता प्रियदर्शना।
उरस्तेऽभिनिविष्टं वै यावत् स्कन्धात् समुन्नतम्।।[1]
अधरस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमिव लज्जितम्।
प्रतिपूर्णं च जघनं सुपीनौ च पयोधरौ।।
विमलेन्दुसमं वक्त्रमहो राजसि मन्थरे।
जघनं तव निर्मृष्टं रशनादामभूषितम्।।
जड्.घे भृशमुपन्यस्ते पादौ च व्यायता वुभौ।
त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां मन्थरे क्षौमवासिनी।।
अग्रतो मम गच्छन्ती राजसेऽतीव शोभने।

इस प्रकार असुन्दरी, कुबड़ी के लिये चन्द्रमुखी, राजहंस के समान गतिवाली इन शब्दों में भले ही अमर्यादित हास्य रस दिखाई पड़ता हो फिर भी पाठकों के मन में कुबड़ी की चाल, वेशभूषा देख हास्य रस उत्पन्न होता है। इसी तरह असंगति, विकृति, अनौचित्य दृष्टि से शूर्पणखा प्रसंग में भी परिस्थितिगत हास्य रस का प्रसार हुआ है वस्तुतः विद्रूपता, व्यंग्य में ह्यूमर (हास्य) की परिकल्पना पाश्चात्य आलोचनाओं ने की है जैसा कि वी0एस0 शास्त्री ने लिखा है-

---

(1) वही 2/9/41-44

"The poet himself apparently eryoys this scene. He is amused at the contrast petween the two, height-ened by the fact she makes love to Ram. What a fine pair to make love."[1]

हास्य रस के सिद्धान्तों की पूर्ति सम्बन्धी स्थल वाल्मीकि रामायण में भले ही कम हो किन्तु विद्रूपता या विरोधाभास या व्यंग मिश्रित हास्य के अनेक स्थल हैं। जिनमें शूर्पणखा का प्रसंग ऐसा ही स्थल है। रतियाचना करने वाली स्त्री के मन में उचित अनुचित का विचार नहीं रह जाता ऐसी आर्त, कामज्वर शूर्पणखा के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है। यहाँ राम-आश्रय शूर्पणखा-आलम्बन। उसके हाव-भाव, वाचिक क्रियायें-उद्दीपन विभाव तथा कुरूपा शूर्पणखा को सुन्दरी रूप में सम्बोधित करना विडम्बना का ही एक रूप है-

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्रमध्यं महोदरी।।[2]
विलालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना।।
तरूणं दारूणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना।।

तात्पर्य यह है कि लक्ष्मण भी सस्मित रूप से उससे परिहास कर अपने को सेवक और उसे दासी रूप में जीवन यापन की सम्भावना बताकर राम के पास भेज देते हैं इस प्रकार राम-लक्ष्मण एकाकी, दिग्भ्रमित कामातुरा शूर्पणखा का उपहास ही करते हैं इसे हम "लाँफिंग विद एण्ड लाँफिग एक्ट" या खिल्ली उड़ाना और उस पर भी परिहास विचक्षणा शूर्पणखा का विवेकशून्य हो जाना कि उसे मूर्ख बनाया जा रहा है हास्य रस का अच्छा स्थल है। स्वैरिणी के साथ इस तरह का उपहास जहाँ नैतिकता है वहीं व्यंग्य, विडम्बना से पाठक, दर्शक उसे उपहस्यास्पद ही समझते हैं।

इसी तरह एक-आध अन्य स्थलों में भी हास्य रस दिखाई पड़ता है। प्रहस्त के विशाल शरीर को देखकर हंसते हुये राम विभीषण से कहते हैं-

उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिंदमः।।[3]

---

(1) लेक्चर्स आँन रामायण पृष्ठ सं0-80-81 (2) वा.रा.3/17/9,10,11 (3) वा.रा.6 53 1,2

क रूष सुमहाकायो बले न महता वृतः।
आगच्छति महावेगः किंरूप बल पौरूषः।।
आचक्ष्व में महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम्।

जानकी जीवनम् में शुद्ध हास्य को पारिवारिक दाम्पत्य जीवन के माधुर्य परक झांकी में हास्य रस अंकित किया है। विवाहोपरान्त लक्ष्मण-उर्मिला का वाचिक परिहास, सीता का प्रबोध एवं लक्ष्मण, सीता, उर्मिला के मध्य चलने वाला यह परिहास दर्शकों को गुदगुदाकर आनन्दित करने वाला है। उर्मिला का आरोप, सीता की मुस्कान, वीर्य शुल्का नारियों की दशा में वाचिक, कायिक, सात्विक अनुभावों के साथ हर्ष, मति, आदि संचारी भावों का अनुपम संगुम्फन है-

आर्ये! स्वेदवरं पश्य मां दुनोति कटुक्तिभिः।
मिथिला शिथिलेत्येवं पंकिलाऽप्युर्मिलेति च।।[1]
किं भवामि हसत्येष आकेकरदृशाऽनिशम्।
शिवचाप प्रतिज्ञार्थं तातपादं विनिन्दति।।
एवमादिपरीवादान् श्रुत्वा स्मेराननना सती।
कुत्यति स्म रूषा सीता लक्ष्मणाय पिकस्वरा।।
कथं त्वया स्वसेयम्भे साधिक्षेपं विहस्यते।
अपि भोः लक्ष्मण! ब्रूहि कथं तातो विनिन्द्यते?।।
कूष्माण्डालाबुतुल्याः किं मिथिलायाः कुमारिकाः।
यास्तु यः कोऽपि गृह्णीयात् पक्वान्नाशनलोलुपः।।

इस हास परिहास एवं वाग्विता के कारण आश्रय उर्मिला ताली बजाकर हंस पड़ी। ताली बजाना-कायिक अनुभाव, जीत-जीत गये इस प्रकार शब्दों से वाचिक अनुभाव हर्ष, आवेग, चपलता आदि संचारी भावों से शुद्ध हास्य उपस्थित किया गया है-

जितम्मयेति निस्वानैर्वासगेहान्तशलकम्।
नर्महास्य परीतांग विच्छित्तिं परमां ययौ।।[2]

इसी प्रकार शूर्पणखा प्रसंग में विडम्बना और विद्रूपताजन्य उपहास का चित्रांकन कवि

(1) जा.जी.9/69,70,71,72,73 (2) जा.जी.9/78

ने किया हैं।

सारांश यह है कि वाल्मीकि रामायण में शुद्ध हास्य उत्तम प्रकृति के पात्रों, नायकों, नायिका, प्रतिनायक या प्रतिनायिका के प्रति तथाा हास्य के अन्य भेदों में कवि ने एक नयी प्रवृत्ति को अपनाया है जिसमें राक्षस-राक्षसियों के व्यंग्यात्मक नामकरण हास्य उत्पन्न करते है जैसे-एकाक्षी, एककर्णा, गोकर्णी, लम्बकर्णी, सिंहमुखी, सूकरमुखी आदि नारी कुरूपता का चित्रांकन कर हास्य की सृष्टि की गई है। कवि को सर्वाधिक सफलता व्यंग्य निश्रित हास्य, उपहसित, अवहसित आदि शब्दों या भावनाओं से इस रस को पुष्ट करने में मिली है। जानकी जीवनम् में भी देवर-भाभी, पति-पत्नि के प्रारम्भिक वाग् विलास (चुहलवाजी) तथा वीर्यशुल्का नारी के प्रति आक्षेप के कारण देवर-भाभी तथा बहनों के मध्य जो पारिवारिक शुद्ध आनन्दित करने वाला हास दिखाया गया है वह अत्यन्त सहज, स्वाभाविक, कोमलतर है। और ऐसा ही हास्य रसिक सहृदय, सामाजिक प्रमाता या पाठकों के हृदय पटल पर चाक्षुष विम्ब उपस्थित कर उन्हें भी भाव विभोर कर देता है।

वात्सल्य रस

प्राचीन आचार्यो ने वत्सल भाव को श्रृंगार के अन्तर्भूत किया था। इसे स्वतन्त्र रूप में मानने वाले आचार्य विश्वनाथ का मंतव्य है-"स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं-संचारिणो निष्टाशंका हर्ष गर्वादयो मताः।"[1]

यद्यपि इस महाभाव का उल्लेख वैदिक काल से लेकर संस्कृत साहित्य में भरा पड़ा है क्योंकि यह मनोभाव स्त्री-पुरूषों का स्वविस्तार स्नेह के प्रकटीकरण का आधार है मानव की मूल वृत्ति है।

इस रस का सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुये डा0 राजकुमार पण्डित ने लिखा है-"पुत्र विषयक रति ही इसका स्थायी भाव माना गया है। पुत्र एवं पुत्री दोनों ही इसके आलम्बन विभाव होते हैं। शैशवोचित चेष्टाएँ, बाल्य चापल्य आदि उद्‌दीपन का कार्य करतो है। आश्रय रूप में (पारिवारिक जन) का मुस्कराना, पुचकारना उन्हें अंगस्थ करना आदि चेष्टाएँ अनुभाव होती हैं। अनिष्ट की आशंका, गर्व, हर्ष, आवेग आदि यहाँ संचारी भाव होते हैं।[2]

इसके भी दो भेद किये जा सकते हैं संयोग वात्सल्य जिसमें हर्ष की प्रधानता होती

(1) विश्वनाथ साहित्य दर्पण (2) रानचरित मानस का काव्य शास्त्री अनुशीलन पृष्ठ सं0-304

है वियोग वात्सल्य जिसमें करुणादि की महत्ता होती है। रामकथा में दोनों पक्षों के स्थल मिलते हैं किन्तु वाल्मीकि रामायण में शुद्ध वात्सल्य के रसदशा व्यंजन रूप नहीं मिलते क्योंकि यह लक्ष्यग्रन्थ है। लक्षण ग्रन्थों के अन्तर्गत सैद्धान्तिक तत्वों का लक्षणानुधावन जिस वरीयता से प्राप्त होता है उसका इसमें अभाव है। रामजन्म, विश्वामित्र के साथ राम का गमन, राम का वनगमन, बालिवध में बालि के मनोभाव, मेघनाथ इत्यादि के वध में रावण की मनोदशा, रामकथा गायन के समय लव-कुश के प्रति राम के भाव संयोग और वियोग वात्सल्य के स्थल हैं।

इसी प्रकार जानकी जीवनम् में उक्त अंशों के अतिरिक्त सीता के जन्म एवं बाल्य चापल्य इत्यादि में वात्सल्य रस की सटीक एवं मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

1. संयोग वात्सल्य–रामजन्म के बाद दशरथ और रानियों का सौभाग्य चरम सीमा में पहुँच गया। चार पुत्रों को देख माता-पिता का हर्ष, गर्व आदि भावों का चित्रांकन कवि ने इस रूप में किया है। आलम्बन की चेष्टायें रामादिक भाईयों का घोडे पर चढ़कर जाना उन्हें प्रिय लगता था–

यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः।।[1]
अथैनं प्रष्ठतोऽभ्येति सधुनः परिपालयन्।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो दिसः।।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत् तथा प्रियाः।
स चतुर्मिमहाभागैः पुत्रैदर्शरथः प्रियैः।।
बभूव परम प्रीतौ देवैरिव पितामहः।

जानकी जीवनम् में संयोग वात्सल्य के अत्यन्त भव्य, स्वाभाविक, चित्ताकर्षक रूप चित्रित हुए है। भूनिजा सीता की अनिद्य सौन्दर्य बालकेलियों का विस्तार नूपुर की मधुर झंकार, आकाश स्थित चन्द्रमा की मांग का दुराग्रह-उद्दीपन विभाव। गर्व, स्मृति, हर्ष आदि संचारी भावों का कवि ने जीवन्त उपयोग कर वात्सल्य रस की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। माता-पिता का चुम्बन कायिक अनुभाव हम दोनों में कौन अधिक चाहता है? इस प्रकार के वाचिक अनुभावों से राजेन्द्र मिश्र ने इस रस को अत्यन्त आकर्षक रूप में चित्रित किया है–

(1) वा.रा.1/18/31,32,33

कराङ्ि.घ्ररक्तोत्पलमास्यपंकजं विलोचन द्वन्द्व कुवेलमद्‌भुतम्।
विलम्बिहस्ताग्र मृणाल युग्मकं समेत्य जातं क्षितिजांग पुष्करे।।[1]
अमोदवत्सा पितरावनारतं स्वकेलिलेश प्रचुर प्रचारणैः।
निभालयन्ती निर्यातं विनोदनैः प्रजाजनंचापिचकार सम्भृतम्।।
प्रदीप्त जाम्बू नदीमत्तिकालये क्वच्छिविं स्वां समुदीक्षमाणा।
विलोल मंजीरपदैश्चतुर्दिशं नटीव नृत्यन्त्यनिशं चचार सा।।
विलोक्य चन्द्रं वियति प्रभोज्जवलं विलोभनीयं ननु पर्वसंस्थितम्।
भृशं ययाचे जननीं विलक्षितां नवीन खेलाश्रित बालतर्कनैः।।
अथैकदा चारूतर प्रभातके प्रसेदिवांसौ पितरावुपगता।
प्रचुम्ब्य पृष्टा जनकेन सस्मितं क आवयोस्तेऽतितरान्तु रोचते।।
विलोक्य बालोचितवल्गुसाध्वसं निजांगजाया नृपति र्विलक्षितः।
रुषा महिष्याऽपि निकामजल्पितस्ससान्त्वनं सोऽभिननन्द मैथिलीम्।।

संयोग और वियोग की भावसन्धि स्थल पर खड़ा बालि का अंगद के प्रति संयोग वात्सल्य का ऐसा मर्मन्तुद उदाहरण है जिसमें उसके भविष्य के प्रति अनिष्ट की आशंका तो राम के आश्वासन से उत्पन्न हर्ष वात्सल्य रस की सुन्दर अभिव्यंजना करता है और इस प्रकार वात्सल्य और करुण एक साथ मिलकर कुछ दूर तक चलते हैं इसीलिये पूर्व में मैंने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण लक्ष्य ग्रन्थ हैं-

स ममादर्शनाद दीनो बाल्यात् प्रभृति लालितः।
तटाक इव पीताम्बुरूपशीषं गमिष्यति।।[2]
बालश्चाकृत बुद्धिश्च एकपुत्राश्च में प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः।।

और इस प्रकार सुग्रीव की ओर अंगद का ध्यान आकृष्ट करते हुये बालि अपनी चिन्ता मोह ग्लानि और हर्ष भी इस प्रकार व्यक्त करता है-

सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनभबालिराम्।
वाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमंगदम्।।[3]

---

(1) जा.जी.2/9,11,12,13,30,34 (2) वा.रा.4/18/51,52 (3) वही 4/22/8-11

मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रभिवौरसम्।
मया दीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय।।
त्वमत्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः।
भयेष्व भयदश्चैव यथाहं पल्वगेश्वर।।
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्य पराक्रमः।
रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति।।

2. **वियोग वात्सल्य**—विप्रलम्भ श्रृंगार की तरह वियोग वात्सल्य की भी चर्चा की गई है। पुत्र के बिछड़ जाने पर आश्रय माता-पिता का मोह, विषाद आदि वियोग वात्सल्य के भाव हैं। वाल्मीकि रामायण में वियोग वात्सल्य के अनेक स्थल दिखाई पड़ते हैं। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का गमन, राम-वनवास, मेघनाद वध के समय रावण का करुण वात्सल्य अत्यन्त भावपूर्ण शब्दों में व्यंजित हुआ है। वृद्धावस्था में पुत्रों को पाकर दशरथ का मोह बड़े मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत हुआ है। आलम्बन-राम लक्ष्मण, आश्रय-दशरथ, मोह, चिन्ता, प्रलय संचारी भावों से वियोग वात्सल्य का चित्रांकन हुआ है-

बालोह्यकृत विद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम्।
न चास्रबल संयुक्तो न च युद्ध विशारदः।।[1]
न चासौ रक्षसां योग्यः क्रूरयुद्धा हि राक्षसाः।
विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे।।
जीवितुं मुनिशार्दूलं न रामं नेतुमर्हसि।
चतुरंगसमायुक्तं मया सह च तं नय।।

राम वनगमन के समय अनिष्ट आशंका के कारण कौशल्या और दशरथ का आशंकाजन्य वियोग वात्सल्य अत्यन्त मार्मिक रूप में व्यंजित हुआ है। आश्रय-दशरथ का आलम्बन राम के प्रति गर्व उनके गुणकथन से व्यंजित होता है। मोह, आवेग, शोक, उन्माद, प्रलाप, प्रलय (मूर्च्छा) का कवि ने वर्णन किया है-

अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान्।
रामो लब्धो महातेजाः स कथंत्यज्यते मया।।[2]

---

(1) वा.रा.1.20/7-9 (2) वही 2/13/8,9,24,25

शूरश्च कृतविधश्च जितक्रोधः क्षमापरः।
कथं कमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते।।
विशुद्ध भावस्य हि दुष्ट भावा
दीनस्य ताम्राश्रुकलस्य राज्ञः।
श्रुत्वा विचित्रं करुणं विलापं
भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम्।।
ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः
प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम्।
समीक्ष्य पुत्रस्य विवासनं प्रति
क्षितौ विसंज्ञो निपताप दुःखितः।।

जानकी जीवनम् में दशरथ, कौशल्या अन्य पुरजनों को आश्रय वनाकर अश्रु वाचिक अनुभाव। स्तम्भ, प्रलय, आवेग, चिन्ता आदि के माध्यम से वियोग वात्सल्य व्यंजित हुआ है-

पुत्रौ प्रगाढ़मुपगूह्य कृतप्रणामौ,
प्रादात्स्वयं कुशिकनन्दन पूत पाणौ।[1]
निष्क्रामति द्विपदविक्रमिणीष्टयोगे,
रामे सहोदरयुते नगरात्तदानीम्।
अट्टाधिरूढ़पुर वासिदृगम्बुवाहा-
स्तप्ताश्रुसीकर झरीं ववृषुस्समन्तात।।

वाल्मीकि रामायण के युद्ध काण्ड में प्रहस्त के मारे जाने पर रावण का वात्सल्य क्रोध में परिवर्तित हो जाता है। दुःखी रावण आवेग के वशीभूत होकर स्वयं युद्ध के लिये तत्पर हो जाता है। इस वात्सल्य की चरम सीमा इन्द्रजित के वध के समय दिखाई पड़ती है। यह स्थल करुण विप्रलम्भ की भांति करुण वात्सल्य और शोक के सन्धि का भाव है जिसके एक ओर शोक है तो दूसरी ओर पुत्र के हानि की चिन्ता भी, अपने पुत्र की वीरता का वर्णन करता हुआ आश्रय रावण मूर्च्छित हो जाता है। विलाप, प्रलाप, आवेग आदि

(1) जा.जी.4.31/2,32,33

मनोभावों की व्यंजना कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से की है-

गतः स परमाँल्लोकांशरैः संतर्प्य लक्ष्मणम्।
स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारूणम्।।[1]
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत्।
उपलभ्य चिरात् संज्ञां राजा राक्षस पुंगवः।।
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापा कुलेन्द्रियः।
ननुत्वमिषुभिः क्रुद्धोभिन्द्याः कालान्तकावपि।।
मन्दरस्यापि शृंगाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि।

अन्य प्रसंगों में भी वियोग वात्सल्य के उदाहरण मिलते हैं। इन्द्र द्वारा दिति पुत्र के वध प्रसंग में करुण वात्सल्य की व्यंजना वाल्मीकि ने बड़े मार्मिक ढंग से की है। माता दिति-आश्रय हैं, आलम्बन-इन्द्र, अभिलाषा, आवेग, प्रतिकार, हेतु, संकल्प, अश्रु आदि का उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है-

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता।
मारीचं कश्यपं नाम भर्तारमिदमब्रवीत्।।[2]
हतपुत्रास्मि भगवंस्तव पुत्रैर्महाबलैः।
शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रं दीर्घ तपोवर्जितम्।।
साहं तपश्चरिष्यामि गर्भं मे दातुमर्हसि।
ईश्वरं शक्रहन्तारं त्वमनुज्ञातुमर्हसि।।

सारांश यह है कि वात्सल्य रस के पूर्ण परिपाक के अनेक स्थल रामकथा में प्राप्त हैं किन्तु इसे रस की पूर्ण प्रतिष्ठा परवर्ती लक्षण ग्रन्थों में हुई है। विशेष रूप से हिन्दी के मध्य कालीन साहित्य के अन्तर्गत कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों का रस की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। जिसके अन्यतम कवि सूरदास हैं। अतः वात्सल्य के मनोभाव या विभाव अथवा अनुभाव एवं संचारी भावों का सामान्य सा उल्लेख कर इन रसपरक स्थलों की समीक्षा की गई है। वाल्मीकि में मनोभाव-अनुभावों का विस्तृत वर्णन है तथा जानकी जीवनम् में एकाध स्थलों में वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक दिखाई देता है

(1) वा.रा.6/92/4,5,7 (2) वा.रा.1/46/1,23

क्योंकि कथा प्रवाह की क्षिप्रता के कारण रस परिपाक अवस्था में नही पहुँच सका है।

अनुभाव

जिन बाह्य आकृति या लक्षणों से हृदयस्थ भाव प्रकट हो उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव का अर्थ है-भाव के पीछे होने वाला भाव कारण है अनुभाव कार्य। इसकी व्युत्पत्ति अनुभव से की जाती है। विभाव भावों को उत्पन्न या अंकुरित करते हैं तथा अनुभाव उसे अस्वाद योग्य बनाते हैं। आचार्य भरत ने तीन प्रकार के अनुभावों का उल्लेख किया है- (1) वाचिक-वाणी एवं शब्दों के माध्यम से प्रकट होने वाली चेष्टाएँ (2) आंगिक-शरीर के माध्यम से होने वाली चेष्टाएँ और (3) सात्विक-सत्वोद्रेक के रूप में प्रकट होने वाले।

साहित्य दर्पणकार ने लिखा है-

"उदबुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बद्धिर्भावं प्रकाशयन्।
लोकेयः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्य नाट्ययोः।।"[1]

इनकी संख्या के सन्दर्भ में मतभेद हैं। आचार्य भरत वाचिक, आंगिक एवं सात्विक। भानुदत्त कायिक, मानसिक (वाचिक) आहार्य्य एवं सात्विक चार भेद कहे हैं। इसी प्रकार सात्विकों की संख्या आठ कही गई है। यहाँ हम कायिक, वाचिक, सात्विक और आहार्थ्य के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. कायिक अनुभाव–काव्यगत आश्रय की आंगिक चेष्टाएँ जो स्थायी भाव का अनुभव सहृदय को कराती हैं कायिक अनुभाव हैं। आलोच्य दोनों काव्यों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृपीन् प्रतिपूज्य च।
ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरंगमाम्।।[2]

क्षिपामि शैलेयककन्दुकं जले निमालये काऽऽनपतीदादिमा।
अथैक्युद्घोष्य घृति प्रवंचनेर्जहास सर्वा अवगाह कम्पिताः।।[3]

2. मानसिक (वाचिक) अनुभाव–आश्रय के अन्त करण की वृत्ति से उत्पन्न वाचिक कथोपकथन अनुभाव कहे जाते हैं-

भगवन किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मणः सुत।
यस्माद् राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः।।[4]

(1) साहित्य दर्पण विश्वनाथ-3/132 (2) वा.रा.1/24/4 (3) जा.जी.2/28 (4) वा.रा.1/54 8

किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिलि! मंजुल दर्शने!!

प्रचलितासि यदीयदिदृक्षया ननु तमेव जन किमुपेक्षसे?।।[1]

3. सात्विक अनुभाव–आश्रय के अकृत्रिम या अस्वाभाविक अंग विकार को सात्विक अनुभव कहते हैं–

इनकी संख्या आठ बतलाई गयी है–स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय (मूर्च्छा)। आलोच्य दोनों काव्यों से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है। सात्विक अनुभाव सभी रसों में होते हैं अतः यहाँ रस विशेष का ध्यान न रखकर अनुभाव की विवृति का ध्यान रखा गया है।

स्तम्भ– समावलोक्य तदा नृपनन्दिनीं परिणतप्रणयार्जवसन्नतः।

रघुपतिर्मुषितस्थितिमाप्नुवन् न च जगाद चचाल न शं ययौ।।[2]

एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशि निभानना।

प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह।।[3]

स्वेद– कुसुमसंचय कैतवगूहिता प्रियसयखी खलु कापि विदेहजाम्।

उथययौ झटिति श्रितवेपथुर्नि खिलमेव निशम्य तदास्रजम्।।[4]

रोमांच– चिबुकमुन्नययत्यथ राघवे पुलक जाततनूरुहचेतने।

वृत्तिनिलीन सखी जन मण्डलैः स्फुट महासिजितंन्वितिवादिभिः।।[5]

स्वरभंग– क्षणमात्रमपीह जीवनेनमयाऽतर्कि बिना त्वया प्रभो।

श्वसितुं यदहो दिवानिशं जीवामिधिगात्मवंचिताम्।।[6]

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।

एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्रणि हतानि मे।।[7]

कम्प– राघवोऽपि नियोज्य वेपितबल्यभाया रक्षणे प्रियलक्ष्मणं सनुपात्तधन्वा।[8]

तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः।

चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत्।।[9]

वैवर्ण्य– दयित संगमसाध्वसपाण्डुरे जनकजामुखचन्द्रतले तदा।

समुदियाम मुहुः प्रसरत मृतझरीशत बिन्दु कदम्बकम्।।[10]

---

(1) जा.जी.6/50 (2) जा.जी.6/20 (3) वा.रा.6/113/14 (4) जा.जी.6/30 (5) जा.जी.6/59 (6) जा.जी.12/15 (7) वा.रा.2/56/30 (8) जा.जी.11/57/1 (9) वा.रा.1/21/4 (10) जा.जी.6/48

भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षसः किं विवक्षया।[1]

अश्रु– चेतनां पुनरेत्य सा हरिणीव बद्धालुब्धकेन तताम नेत्रपयोवृतांगी।।[2]

सनिःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना।

आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च।।[3]

प्रलय– रोदनैर्हृतचेतनैर्हृदत्यथामिर्मूर्च्छिता निपपात साऽधिरथं विपन्ना।[4]

सा मुहूर्तात समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम्।

तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा।।[5]

4. आहार्य्य–आश्रय की कृत्रिम वेशरचना, स्नानसहित सोलह श्रृंगार अथवा परिस्थिति के अनुरूप वस्त्रादि धारण करना आहार्य्य अनुभाव कहलाते हैं–

मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम्।

संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान् कापिः।।[6]

दुकूलशाटी वृतचारुगात्राऽवगुण्ठिता यावक पाटलाङ्ध्रिः।

ततोऽङ्क पाल्या शनकैरनायि क्षमासुता नापित धर्मपत्न्या।।[7]

संचारी भाव

साहित्य की दृष्टि से भावों का विवेचन करते हुये रस सैद्धान्तिक आचार्यो ने उन्हें दो प्रमुख वर्गों में रखा है–

1. स्थायी भाव 2. संचारी भाव।

संचारी भावों के लिये व्यभिचारी भाव शब्द का प्रयोग पर्याय रूप में किया गया है किन्तु आगे चलकर संचारी भाव ही मान्य हुये क्योंकि शास्त्र एवं लोकव्यवहार में व्याभिचारी शब्द का अर्थ होता है-पथभ्रष्ट, कुमार्ग गमन एवं संचारी भाव का अर्थ होता है-गतिशील, चंचल एवं परिवर्तनशील।

आचार्य भरत ने व्यभिचारी शब्द का प्रयोग कर वि+अभि+चर के संयोग से इसे निष्पन्न बताया है, जिसमें 'वि' विविधता सूचक, 'अभि' अभिमुखता का और 'चर' चलने के अर्थ में है। इस प्रकार भरत मुनि के अनुसार व्यभिचारी उन्हें कहते हैं जो वाणी, चेष्टा, सत्वोद्रेक आदि विविध प्रकार के माध्यमों से प्रेक्षक सम्मुख स्थायी भावों को व्यक्त या

(1) वा.रा.5/27/45/1 (2) जा.जी.11/115/2 (3) वा.रा.5/25/10 (4) जा.जी.11/115/1 (5) वा.रा.6/32/7 (6) वा.रा.5/17/26 (7) जा.जी.8/25

प्रकाशित करते हैं।[1]

दशरूपककार धनंजय ने व्यभिचारी भाव का अर्थ स्पष्ट करते हुये लिखा है–

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इवं वारिधौ।[2]

अभिनव गुप्त ने संचारी भावों की साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुये कहा है कि–"संचारी भाव इस प्रकार की वृत्तियाँ हैं जो जन्मजात विद्यमान नहीं रहती। भाव या विभाव से अलग होने पर नष्ट हो जाते हैं। यह स्थायी भाव की तरह स्थिर नहीं होते तथा स्थायी भाव को अपने रंग रूप के माध्यम से प्रकाशित करते हैं।"[3]

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक के आलोक में भावात्मक प्रवृत्तियों के नौ भेद कहे गये हैं जिनमें सहज प्रवृत्ति भावना, मनोवृत्ति भावात्मक दृष्टिकोण, मनोदशा, मूलभाव, मिश्रित भाव, व्युत्पन्न भाव और भावानुभूति है। इस दृष्टि से संचारी भावों का विश्लेषण करें तो निम्नांकित संचारियों को छोड़कर सभी इन्हीं से सम्प्रक्त हैं जबकि श्रम, आलस्य, निद्रा, मरण, शारीरिक अवस्था के सूचक हैं मद, उन्माद, स्वप्न, अपस्मार अवहित्या विकृत मानसिक अवस्था के सूचक हैं–

तथा मति, स्मृति, धृति, तर्क, जड़ता, विशेष एवं आवेग उग्रता चपलता क्रमशः बौद्धिक और भावानुभूति की अनुमापक स्थितियाँ हैं।[4]

संचारी भाव का लक्षण–

विशेषदभिमुस्येन चरणाद्वयभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंच तदिभदाः।।[5]

स्थिरता से विद्यमान रत्यादि स्थायी भाव में उन्मग्न निर्मग्न अर्थात आर्विभूत–तिरोहित होकर निर्वेदादि भाव अनुकूलता से व्याप्त होते हैं। अतएव विशेष रीति अभिमुख्य चरण के कारण इन्हें व्यभिचारी या संचारी भाव कहते हैं यह संख्या में तेंतीस होते हैं–

1. निर्वेद	2. आवेग	3. दैन्य	4. श्रम
5. मद	6. जड़ता	7. औग्रय	8. मोह
9. विवोध	10.स्वप्न	11. अपस्मार	12. गर्व
13. मरण	14. आलस्य	15. अमर्ष	16. निद्रा

(1) नाट्य शास्त्र–रस सिद्धान्त स्वरूप एवं विश्लेषण पृष्ठ सं0–36 (2) दशरूपक 4/7 (3) अभिनव भारती 6/3 (4) रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन–डा0गणपतिचन्द्र गुप्त पृष्ठ सं0–237/246 (5) साहित्यदर्पण–विश्वनाथ3/140

17. अवहित्था	18. औत्सुक्य	19. उन्माद	20. शंका
21. स्मृति	22. मति	23. व्याधि	24. संत्रास
25. लज्जा	26. हर्ष	27. असूया	28. विषाद
29. धृति	30. चपलता	31. ग्लानि	32. चिन्ता

33. वितर्क।

निर्वेद– तच्वज्ञाना पदीष्यदिनिद्रवेदः स्वावमाननम्।[1]

दैन्यचिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासितादिकृत।।

तत्वज्ञान या ईर्ष्यादि से अपने सम्बन्ध में तुच्छता का भाव ही निर्वेद है।

अहोरात्रापदेशेन गतः संवत्सरा दश।

काम मोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः।।

सनिःश्वसन् मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः।। (वा.रा.2/63/11/2,12)

ऋषि मुनि समवायों राजवर्गोऽवरोधः कपिबलमथलोकोऽसंख्यनार्योनराश्च।

रघुपति गुणगीतं जानकीशीलवृत्तं नयनसलिल (जा.जी.21/168)

आवेग– आवेगः संभ्रमस्तत्र हर्षजे पिण्डितांगता।

उत्पातजे स्रस्ततांगे धूमद्याकुलताग्नि जे।।

राजविद्रवजादेस्तु शस्त्र नागादियोजनम्।[2]

चित्त की संभ्रम या व्यग्रतावस्था को आवेग कहते हैं।

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।

करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये।। (वा.रा.2/21/10)

कथमद्य विलीयते धृतिर्नितिमिच्छत्यनुदार पौरूवम्।

कथमद्य मनोज वन्धुरं न धुरं हृद् विधुरं वहत्यदः।। (जा.जी.5/62)

दैन्य– दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं मलिनतादिकृत।।[3]

दुर्गति अथवा दुःख के कारण ओजस्विता का अभाव ही दैन्य है।

मम वृद्धस्य कैकेमि गतान्तस्य तपस्विनः।

दीनं लालव्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि।। (वा0रा02/12/34)

---

(1) सा.द. 3/142 (2) सा.द. 3/143 (3) सा.द. 3/145

बलाहकानां सततानुधावनैर्यथा हि वर्षासु निसर्गपाण्डुरा।

धृतप्रसादाऽपि मुदीविखिद्यते तथैव खेदं समवाप जानकी।। (जा0जी03/40)

श्रम– श्वेदो रत्यध्वगत्यादेः श्वास निद्रादिकृच्छमः।[1]

रति इत्यादि यात्रा के कारण उत्पन्न श्वेद को श्रम कहा जाता है।

जात स्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्त लोचनः।

निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम्।। (वा0रा03/30/20)

द्वष्ट्वैव केचिन्मुमुहुर्विलक्षाः स्पृष्ट्वा च केचित्सकृदेऽमूकाः।

प्रवेपने यत्नकराश्च केचिन्नद्रालवो धर्मजलैर्बभूवः।। (जा0जी07/42)

मद– संमोहानन्दसं भेदोमदो मद्योपयोगजः।।

अमुनाचोत्तमः शेते, मध्यो हसति गायति।

अधम प्रकृतिश्चापि परूषं वक्ति रोदति।।[2]

संमोह एवं आनन्द का मिश्रण मद है।

पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान् रणे तव।

त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः।। (वा0रा03/29/22)

सखी वचोमिसस्वयमात्मशंसिनी कदाचिदादर्शतले विलोक्य सा।

निजांगयष्टिं युवधैर्यलोपिनीं विमन्यमानेव निनिन्दगोपितम्।। (जा0जी03/30)

जड़ता– अप्रतिपत्तिजर्डता स्यादिष्टानिष्टदर्शन श्रुतिभिः।

अनिभिष नयन निरीक्षण तूर्ष्णी भावादयस्तत्र।।[3]

अनिष्ट दर्शन और श्रवण से उत्पन्न शरीर की अचलावस्था को जड़ता कहते हैं।

नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथातुरः।

हृततेजा यथा सर्पो वभूव जगती पति।। (वा0रा02/12/55)

समवलोक्य तदा नृपनन्दिनीं परिणत प्रणयार्जव सन्नतः।

रघुपतिर्मुषितस्थितिमाप्नुवन् न च जगाद चचाल नशं यद्यौ।। (जा0जी06/20)

उग्रता– शौर्यापराधादिभवं भवेच्चण्डत्वमुग्रता।

तत्र स्वेदशिरः कम्पत र्जनाताऽनादयः।।[4]

---

(1) साहित्य दर्पण 3/145 (2) साहित्य दर्पण 3/146 (3) साहित्य दर्पण 3/148 (4) साहित्य दर्पण 3/149

शूरता या अपराध के कारण उत्पन्न चण्डता ही उग्रता कहलाती है।

क्रोधमाहारयत् तीव्रं वधार्थ सर्वरक्षसाम्।

दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत् कुद्धो युगान्ताग्निरिवज्वलन्।। (वा0रा03/24/34)

सत्यमेव वदामि देवेमां पुरीमि त्वरैर्तिमिषैशरैर्धक्ष्याम्यहम्।

मज्जितस्सरयू जले पश्चात्स्वयमात्मदेहमपि प्रभो! नक्षाम्यमुम्।। (जा0जी017/42)

मोह– मोहो विचित्तता भीति दुःखावेगानुचित्तनैः।

मूर्च्छनाज्ञानपतन भ्रमणादर्शनादि कृत।।[1]

बालो ह्यकृते विद्यश्च न च वेति बलाबलम्।

न चास्त्र बलसंयक्तो न च युद्ध विशारदः।। (वा0रा01/20/7)

अत्यधिक आसाक्ति या चित्त विक्षेप की अवस्था को मोह कहा जाता है।

प्राप्ता मया परिणते वयसीष्टि यत्नैः

पुत्रा इमे कुशिकनन्दन! पूज्यपाद!!

तस्माद् विलक्षण रति सद सिन्धुतोयैः

पाठीन वृत्तिमिव सोऽनुभवामि नित्यम्।। (जा0जी04/23)

विबोध– निद्रापगमहेतुभ्यो विवोध श्चेतनागमः।

जृम्भांगभंगनयनमीलनांगावलोक कृत्।।[2]

जागरण अथवा निद्रा दूर करने वाले कारणों से उत्पन्न चेतना विबोध है।

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतुं सुरासुरैः।

राक्षसैर्वापि चान्यैर्वा स्वर्गः पापजनैरिव।। (वा0रा05/27/21)

गूढ़शास्त्ररहस्यभेदपरे हि कान्ते तापसैस्सह सूपदेशसुधांश्रुतिभ्याम्।

श्रण्वती वनवाससत्फलमालुलोके ज्ञानरश्मिविभासितान्तरवृत्तिका सा।।

स्वप्न– स्वप्नो निद्रामुपेतस्य विषयानुभवरूतु यः।[3]

कोपावेगभय ग्लानि सुखदुःखादि कारकः।।

निद्रा निमग्ना वस्था में विषय अनुभव स्वप्न है।

गजदन्तमयीं दिव्यां शिषिकामन्तरिक्षगाम्।।

---

(1) साहित्य दर्पण 3/150 (2) साहित्य दर्पण 3/151 (3) साहित्य दर्पण 3/152

युक्तां वाजि सहस्रेण स्वयमास्थाय राङ्गवः। (वा0रा05/27/9-10)

शुक्ल माल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः।।

न यत्प्रदातुं प्रबभूव जागरस्सुखं मनः क्षुण्ण भीष्ट संगजम्।

न चैव सुप्तिर्न च कान्तकल्पना प्रसह्य भाग्यं प्रददौ तदेवशम्।। (जा0जी03/38)

अपस्मार— मनः क्षेपस्त्व पस्मारो ग्रहाद्यावेशनादिजः।

भूपातकम्प प्रस्वेद फेन लालादि कारकः।।[1]

चित्त विक्षेप के कारण उत्पन्न मूर्च्छा को अपस्मार कहते हैं।

राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेत नः।। (वा0रा02/103/1/2)

निशम्यैव वाचोऽपतद्भूमितल्पे निर्संज्ञो नृपश्छिन्नमूल द्रुमकल्पः। (जा0जी010/68/1)

गर्व— गर्वो मदः प्रभाव श्री विद्यासत्कुलतादिजः।

अवज्ञा सविलासांगदर्शनाविनयादिकृत्।।[2]

मद, अहंकार, ऐश्वर्य, प्रभाव, कौलीन्य के कारण उत्पन्न भाव गर्व है।

नेह पश्यामि लोकेऽन्त्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्।

पश्य मे सुमहद्वीर्य प्रतिद्वन्द्व माध्वे।। (वा0रा04/20/19)

हरिक्षाणी! जिगीषुसत्तमं त्रिजगज्जिष्णुमुपेत्य रावणम्।

वद पूर्तिमिता न का स्पृहा विभेऽप्यद्य न मेन मोदसे।। (जा0जी012/55)

मरण— शराधैर्मरणं जीवत्यागोऽगपतनादिकृत।[3]

प्राणत्याग का नाम मरण है।

इह वा मां मृतां कुब्जे नृपामावेदमिष्यसि।

वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम्।। (वा0रा02/9/58)

दशमुखदुरितसहस्रगुणाधिकशूलदचरितं कलङ्क। हतभाग्यां मां व्यथयति बल्लभ।

परिकल्पितमलपङ्क।। देहे ताम्यति देही! श्वसिति मुधा वैदेही!!।। (जा0जी021/137)

आलस्य— आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाडयं जृम्भासितादिकृत।।[4]

श्रान्ति, श्रम, गर्भादि से जन्य जड़ता आलस्य है।

अये स कीदृग्भविता स्मरोपमोमदंगमाध्वीरसिको मधुव्रतः।

विचिन्तयन्तीत्थमिदं मदालसा रति प्रभा सा शयनांकमागता।। (जा0जी03/37)

---

(1) साहित्य दर्पण 3/153 (2) साहित्य दर्पण 3/154 (3) सा.द. 3/154 (4) सा.द. 3 155

अमर्ष— निन्दाक्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता।

नेत्ररागशिरः कम्पभ्रूभंगोत्तर्जनादिकृत।।[1]

अपमान, निन्दा, आक्षेप से उत्पन्न चित्त अभिनिवेश अवस्था का नाम अमर्ष है।

रोषेण महताविष्टो हुंकारमकरोत् तदा।

ततस्तेनाप्रमेयेण कपिलेन महात्मना।। (वा0रा01/111/30)

अवलोक्य विदेहजातनुं धनगर्भामिव दीप्तदामिनीम्।

विकृतिंच निशम्य शल्यदां भयरोषौ युगपद्व वा रसः।। (जा0जी012/72)

निद्रा— चेतः संमीलनं निद्रा श्रमक्लममदादिजा।

जृम्भाक्षिमीलनोच्छ्वासगात्र भंगादिकारणम्।।[2]

परिश्रम, श्रम, मद के कारण वाह्य विषयों से निवृत्ति की अवस्था निद्रा है।

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम्।

गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत्।। (वा0रा05/10/14)

न यत्प्रदातुं प्रबभूव जागरस्सुखं मनः क्षुण्ण अभीष्ट संगजम्।

न चैव सुप्तिर्न च कान्तकल्पना प्रसह्य भाग्यं प्रदहौ तदेवशम्।। (जा0जी03/38)

अवहित्था— भयगौरवलज्जादेहेर्षाद्याकार गुप्तिरवहित्था।

व्यापारान्तरसक्त्यन्ययावभाषणविलोकनादिकरी।।[3]

भय, गौरव, हर्ष के कारण अंगों को छिपाना

उरुभ्यामुदरं ह्यद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ।

उपविष्टा विशालाक्षी रूदती वरवर्णिनी।। (वा0रा05/19/3)

रतिप्रवीजाड्.कुरयुग्मसन्निभौ पयोधरौ वक्षसि वीक्ष्य वर्धितौ।

विदूर कन्दर्प कथा व्यथालसा दुरन्तवैलक्ष्यमवाप जानकी।। (जा0जी03/7)

औत्सुक्य— इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता।

चित्ततापत्वरा स्वेद दीर्घनिःश्वसितादिकृत।।[4]

अभीष्ट की प्राप्ति में असह्य की अवस्था।

विस्मय व्यग्रमनसो वभूवर्वानरर्षभाः।

संजात परिशंकास्ते तद् बिलं प्ल्वगोत्तमाः।। (वा0रा04/50/11)

---

(1) सा.द. 3.156 (2) सा.द. 3/157 (3) सा.द. 3/158 (4) सा.द. 3/159

क्व नु सारसनावलम्बिनी श्रवणान्तं समुपैतिकिंकिणी।

प्रिय लक्ष्मण मार्ग याचिरं विजनेऽस्मि क्व नु गीयते कलाम्।। (जा0जी05/61)

उन्माद– चिन्तसंमोह उन्मादः कामशोक भयादिभिः।

अस्थानहासरूदित गीतप्रलपनादिकृत।।[1]

काम, शोक, भय से उत्पन्न चित्त के व्यामोह को उन्माद कहते हैं।

उवाच रामो धर्मात्मा गिरिं प्रस्रवणाकुलाम्।

कच्चित् क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वांगसुन्दरी।। (वा0रा03/54/29)

लतावितानानि जगान् पशूंश्च गोदावरी पंचवटीं विशालाम्।

गिरिं प्रपातं वनदेवदेवीः प्रियां नु पप्रच्छ चिराय रामः।। (जा0जी013/11)

शंका– परक्तौर्यात्मदोषाद्यैः शंकानर्थस्य तर्कणम्।

वैवर्ण्य कम्पवैस्वर्यपार्श्वालोकास्यशोषकृत।।[2]

दूसरे की क्रूरता आदि से अनर्थ-चिन्तन शंका है।

किं वीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च चं ते।।

कथं प्रमाणाः के चैतान् रक्षन्ति मुनिपुंगवा।

कथं च प्रति कर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम्।। (वा0रा01/20/12/2-13)

दशानन स्पर्शमलीन विग्रहां तदीयकन्दर्पदृशांऽवलोकिताम्।

चिराय तस्याहयुषितां महालयं विदेहजे! त्वां न वरीतुमुत्सहे।। (जा0जी015/32)

स्मृति– सदृशज्ञान चिन्ताद्यैर्भ्रूसमुन्नयनादिकृत।

स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थ विषमज्ञानमुच्यते।।[3]

समान वस्तु के अवलोकन, चिन्तन से पूर्वानुभूत वस्तु के स्मरण को स्मृति कहते हैं।

अर्चितं सततं यत्नाद्गन्धमाल्यैर्मया तव।

इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः कांचनभूपितम्।। (वा0रा06/32/17)

चाम्पेय पुष्प परिणाण्डुर कोमलांगी, साक्षादसौ मधुजितोऽनुगतैव लक्ष्मीः।

तां सुन्दरीं परिणयेच्छ्रणु रामभद्रे! नारायणः स्वयमथो यदि ना तदंश।। (जा0जी014/43)

मति– नीतिमार्गानुसृत्यादेरर्थनिर्धारणं मतिः।

स्मेरता धृति सन्तोषौ बहुमानश्च तद्भवाः।।[4]

---

(1) सा.द. 3/160 (2) सा.द. 3/161 (3) सा.द. 3/162 (4) वही 3/163

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।

अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति।। (वा0रा04/15/13)

नीति मार्ग के अनुशरण अथवा तत्त्वज्ञान का नाम मति है।

कृपा जागदीशीयया भाति यन्मे हितं प्रस्तुतं सत्वरं दर्पणेन्।

इदानीं न कार्यो विलम्बो न तर्को मया चिन्तनीयं ध्रुवं वर्तमानम्।। (जा0जी010/9)

व्याधि– व्याधि ज्र्वरादिर्वाता द्यैर्भूभीच्छोत्कम्पनादिकृत।[1]

शारीरिक ताप ज्वरादि के कारण शरीर की व्याकुलता या रोग को व्याधि कहा जाता है।

अहो धिर्गति समार्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः।।

मोहमापेदिवान् भूयः शोकोपहतचेतनः! (वा0रा02/9/58)

इति स्खलितगद्गदोच्छ्वसित वाचया निर्भरं।

जगाद रूदतीं ततस्त्रिजटका शुभे! मैथिलि! (जा0जी014/48/1)

त्रास– निर्धात विद्युदुल्काधैस्त्रासः कम्पादि कारकः।।[2]

प्रकृतिजन्य उत्पात से चिन्त की व्यग्रता को त्रास कहते हैं।

विप्रकारं च रामस्य सम्प्रयाणं वनस्य च।

सुमित्रा प्रेक्ष्य वैभीता कथं मे विश्वसिष्यति।। (वा0रा02/12/71)

उधान पालान् जग्रहे विभीतान् तुतोद तांस्तीक्ष्णनखैर्विषाक्तेः।

चकार वै संस्मरणीयशोभां वनीमशोकां विधुरां सशोकाम्।। (जा0जी013/61)

व्रीडा– धाष्टर्याभावो ब्रीड़ा बदनानयनादिकृदुराचारात्।[3]

धृष्ट्ता या निकृष्ट आचरण के कारण शारीरिक और मानसिक संकोच को वीडा कहते हैं।

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता। (वा0रा05/26/3/1)

अये क्षणं पश्च विहंगयुग्मकं सखीति सान्द्रं लपिताऽपि मैथिलीम्।

प्रदत्तसंकेतविलक्षभावनां विभावयन्ती न ददर्श तन्मुखम्।। (जा0जी03/26)

हर्ष– हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनः प्रसादोऽश्रुगद्गदादिकरः।।[4]

इष्ट प्राप्ति से मन की प्रसन्नता हर्ष है।

---

(1) वही 3/163 (2) वही 3/164 (3) वही 3/164 (4) वही 3/165

अन्तः पुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागताम्।
सह भर्त्रा विलालाक्षी प्रीत्यानन्दमुपागमन्।। (वा0रा01/11/30)

महोत्सवोऽथ प्रचचार पेशलः प्रजाजनेषु क्रमशो विसृत्वरः।
सुमुत्पतिष्णुर्नितरां मनोहरो गृहीत चेतोमृगबन्धवागुरः।। (जा0जी02/2)

असूया– असूयान्य गुणर्धीनामौद्ध त्यादसहिष्णुता।
दोषोद्घोषभ्रूवि भेदावज्ञा क्रोधेङ्गितादिकृत्।।[1]

अर्थात् परगुण सहिष्णुता असूया कहलाती है।

मनोध्वंसिनी बुद्धिरासी जरायां गतासापि हस्तद्वये पट्ट राज्ञयाः।
यदीयस्सुतो योवराज्यं भुनक्ति प्रभो! क्षीरम क्षीव दूरीकृताऽस्म्।। (जा0जी011/58)

विषाद– उपाया भावजन्मा तुविषादः सत्व संक्षयः।
निःश्वासोच्छ्वास हृत्तापसहायान्वेषणादिकृत।।[2]

उपाय अभाव के कारण पुरूषार्थ हीनता का नाम विषाद है।

कल्याणै रूचिरं गात्रं परिष्वक्तं भयैव तु।
क्रत्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपारिकृष्यते।। (वा0रा06/32/23)

स्खलद् वाचा प्राथां रामदमपटूनां सुसरणिं
खलीकृत्याकस्मात्प्रकृतिविपरीतं रघुपतौ।
मघेव व्यवहारं जनयति विलोल व्यतिकरो,
नशक्तो सौमित्रिस्तश्लोऽभूतद्नुगाः।। (जा0जी05/63)

धृति– ज्ञानाभीष्टागमाद्यैस्तुसंपूर्णस्पृहता धृतिः।
सौहित्यवचनोल्लाससहासप्रतिभादिकृत।।[3]

तत्वज्ञान अथवा अभीष्ट फल प्राप्ति के कारण इच्छाओं का पूर्ण होना।

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लंकां पर बलार्दनः।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत्।। (वा0रा05/29/30)

न तथापि चचाल राघवो न रूजं दर्पकजां न्यवेदयत्।
पुटपाक निभांच तां व्यथाम सहद्दीन न करीव कामनाः।। (जा0जी05/55)

(1) वही 3/166 (2) वही 3/167 (3) वही 3/168

चपलता– मात्सर्यद्वेषरागदेश्चापल्यं त्वनवस्थितिः।

तत्रभर्त्सनपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः।।[1]

राग, द्वेष, मात्सर्य आदि के कारण उत्पन्नचंचलता चपलता है।

इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश।

उद्यतायुधनिस्त्रिंशा रामभेवाभिदुद्रुवः।। (वा०रा03/20/16)

कपोल मण्डले गौरे कज्जलं कर्दभं मसीम्।

लिम्पतिस्म भृशं नृत्यन् चर्चरीं कामिनी प्रियाम्।। (जा०जी09/91)

ग्लानि– रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादिसंभवा।

ग्लानिर्निष्प्राणता कम्पकार्यानुत्साहतादिकृत।।[2]

मनस्पात आदि से उत्पन्न निरूत्साह ग्लानि कहलाती है।

तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वा संकुलितेन्द्रियः।

एकस्त्वचिन्तयं बुद्ध्या कथं नु सुकृतं भवेत्।। (वा०रा02/54/2)

दुरन्तदुर्भिक्ष निदाघदाहो दहत्य जस्रं जनतालतालीम्।

न भव्यभारामइवावकेशी विधातुमीशः प्रभवामि तस्याः।। (जा०जी01/20)

चिन्ता– ध्यानं चिन्ता हितानाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत।[3]

अभीष्ट की अप्राप्ति जन्य ध्यान को चिन्ता कहते हैं।

सचिन्तयामास ततो महाकपिः, प्रियाम पश्यन् रघुनन्दनस्य ताम्।

ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा नमे, विचिन्वतोदर्शनमेति मैथिली।। (वा०रा05/12/2)

तत्प्रत्ययेनैव विनोदितोऽहं चकार लध्वीर्माय भोः प्रतिज्ञाम्।

फलन्ति मे सम्प्रति दुर्विपाकाः कुव्यानि कस्मै प्रवणीय कोऽहम।। (जा०जी07/51)

वितर्क– तर्को विचारः संदेहाद् भ्रूशिरोंगुलिनर्तकः।।[4]

सन्देह के कारण उत्पन्न विचार वितर्क कहताता है।

ममेदं लंघनं व्यर्थ सागरस्य भविष्यति।

प्रवेशश्चैव ल ंकायां राक्षसानां च दर्शनम्।। (वा०रा05/13/21)

---

(1) वही 3/16999 (2) 3/170 (3) वही 3/170 (4) वही 3/171

कृपा जागदीशीयमाभति हितं प्रस्तुतं सत्वरं दर्पणेन।

इदानीं न कार्यो विलम्बो न तर्को मया चिन्तनीय ध्रुवं वर्तमानम्।। (जा0जी010,9)

तात्पर्य यह कि संचारी भाव किसी एक रस के नहीं होते। ऊपर विभिन्न रसों से सम्बन्धित संचारी भावों का सिद्धान्त और उदाहरण देकर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि आलोच्य दोनों काव्यों में मानव की विशाल भावात्मक सत्ता के अन्तर्गत इन संचारियों की ऐसी स्वतन्त्र प्रोज्ज्वल छटा छिटकी पड़ी है जिनसे एक ओर मानव मनोदशाओं के विभिन्न क्षेत्रों का पता ही नही लगता अपितु कवियों की सूक्ष्म एवं कारयित्री प्रतिभा पता लगता है तो दूसरी तरफ सहृदय को हठात् अपनी ओर आकृष्ट किये हुये बिना नहीं रहती। एक बात अवश्य है कि प्रायः संचारियों के उदाहरण में संचारी भाव का नाम अनेक स्थलों में आया है। किन्तु भावात्मक निरूपण में ऐसे अवसर स्वतः ही आ जाते हैं। आलोच्य दोनों कवियों में यह समानता दिखाई पड़ती है कि शृंगार के दोनों पक्षों में अपवाद स्वरूप कुछ संचारियों को छोड़ दिया जाये तो सभी संचारी उसके अन्तर्गत वर्णित हैं। इस दिशा में वाल्मीकि का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने रस के अनुकूल विभिन्न संचारियों को पुष्कल रूप में प्रयुक्त किया है। जबकि जानकी जीवनम् में शृंगार को केन्द्र में रखकर लज्जा, संकोच, स्मृति, हर्ष, उत्कण्ठा अवहित्था, व्रीड़ा, चापल्य, इत्यादि के मनोहारी प्रयोग किये हैं। इन संचारियों का प्रयोग बलात् एक स्थान पर नहीं हुआ अपितु कथा के प्रवाह एवं पात्र के मनोस्थित के अनुकूल रस का समावेश करते हैं।

अध्याय–5

आलोच्य काव्यों में प्रकृति एवं अन्य वस्तु वर्णन

महाकाव्य में महत् जीवन की व्याख्या सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक परिवेश से होता है, इसीलिये भारतीय काव्यशास्त्रियों ने मानव मन के रागात्मक सम्बन्धों की निवृत्ति के लिये शेष सृष्टि को अनिवार्य बताया है जिनमें पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, चन्द्रोदय, सूर्य, ऋतुओं के सरस स्वरूप, नदी, सरोवर इत्यादि मानवेतर प्राकृतिक परिवेश का चित्रण अनिवार्य कहा गया है। दण्डी ने लिखा है–

(क) नगरार्णव शैलस्तु चन्द्रार्कोदय वर्णनैः।
उद्यानः सलिला क्रीड़ा मधुपान रतोत्सवैः।।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य में मानव एवं मानवेतर सम्बन्धों की अनिवार्यता घोषित करते हुये कहा है कि महाकाव्य में संध्या सहित समस्त प्राकृतिक तत्वों का चित्रांकन होना चाहिये–

(ख) संध्या सुर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवन सागराः।।[2]

इतना अवश्य है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रकृति चित्रण की किसी विशिष्ट प्रणाली का उल्लेख नहीं है मात्र वस्तु वर्णन या कवि अपनी बहुज्ञता दिग्दर्शन हेतु प्रकृति के चित्रफलक में से कुछ वस्तुओं का चित्रांकन कर सकता है।

प्रकृति यदि मनुष्य की माता नहीं तो धात्री अवश्य है उसकी ममतामयी क्रोड में उसने आश्रय लिया, वायु व्यजनकर्ता, निर्झरों का कल–कल निनाद संगीत सुनाता, नक्षत्रगण गुपचुप कहानियाँ सुनाते उसे अपनी ओर आकृष्ट करते रहे हैं। इसीलिये प्रकृति से उसका आदिम साहचर्यजन्य मोह रहा है और कवियों ने अपने काव्य में इसी प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रांकन किया है।

यहाँ हम पहले प्रकृति के विभिन्न रूपों के चित्रांकन के बाद उसके उपांगों का वर्णन अन्य वस्तु वर्णन के अन्तर्गत करेंगे। वस्तुतः काव्य में प्रकृति के अनेक रूप दिखाई देते हैं कभी वह कोमल, मधुर तो कभी भंयकर और कठोर रूप में दिखाई देती है, इस प्रकार प्रकृति

(1) काव्यादर्श 1/16 (2) साहित्य दर्पण 6/321

के चित्रण को स्वतन्त्र या आलम्बन चित्रण कहते हैं।

1. प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण—इसके अन्तर्गत कवि या तो प्राकृतिक परिवेश चित्रांकन हेतु नाम परिगणन प्रणाली का उल्लेख करता है अथवा उनका संश्लिष्ट चित्रांकन करता है।

आलोच्य दोनों काव्यों में रामकथा का जो वर्णन निरूपित हुआ है उसमें प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है। दो राजकुमार ऋषि विश्वामित्र के साथ कुमारावस्था में ही राजभवन से निकलकर प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में निवास करते हैं तो दूसरी तरफ पारिवारिक या राजनीतिक षड़यन्त्र के कारण राम–सीता और लक्ष्मण चौदह वर्षो के लिये राज्य से निर्वासित होकर अपना जीवन प्राकृतिक प्रांगण में व्यतीत करते हैं। इसीलिये दोनों कवियों के पास प्रकृति चित्रण का पर्याप्त परिस्थिति एवं अवकाश था। कवि वाल्मीकि ने यदि यथार्थ चित्रांकन में निपुणता प्राप्त चित्रों की है तो जानकी जीवन में उसके संश्लिष्ट चित्रों की बहुलता है। यहाँ उसके कोमल और कठोर रूपों का चित्रांकन किया जा रहा है–

क. प्रकृति का कोमल रूप–

इममाश्रममागम्य मृगसंधा महीयसः।
अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वाकुतोभयाः।।[1]

स्थली प्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते।
बहुपुष्पफलेरम्ये नानाविहगनादिते।।[2]
पद्मिन्यो विविधास्तत्रप्रसन्नसलिलाशयाः।
हंसकारण्डवा कीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः।।

बबुलनीपकदलीपरिवेष्टित पर्णकुटीर निवासी।
कन्दमूलफल गिरि निर्झर जलवन तृण धान्य च याशी।।[3]

ख. प्रकृति का कठोर रूप—इसके अन्तर्गत प्रकृति के भयावह रूपों का चित्रांकन किया जाता है–

विधुत्पताकाः सबलाकमालाः, शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः।
गर्जन्ति मेघः समुदीर्णनादा, मन्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्था।।[4]

---

(1) वा.रा.3/7.18 (2) वही 3/11/38,39 (3) जा.जी.21/64 (4) वा.रा.4/28/20,31,40

तडित्पताकाभिरलं कृताना,-मुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम्।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां, रणोत्सुकानामिव वारणानान्।।
नीलेषु नीला नववारिपूर्णा, मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः, शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः।।
दुरन्तहृत्ताप करेति वृत्तं निमेषपूर्वं प्रबभूव यत्र।
अखण्डमानन्दलसद्विधानं रराज तत्रैव बलादि दानीम्।।[1]

नाम परिगणन प्रणाली—कवि परिवेश चित्रांकन हेतु इस पद्धति का उपयोग करता है। वाल्मीकि ने प्रकृति के विस्तृत प्रांगणों में अनेक वृक्षों का उल्लेख इस प्रकार किया है–

सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्द्रुमैः।
नीवारैस्तिनिरौश्चैव चोपशोभिताः।।[2]
चूतैरशोकेस्तिलकैः केतकैरपि चम्बकैः।
पुष्पगुल्मलतोपे तैस्तैस्तैस्तरूभिरावृताः।।
स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पर्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः।।
विविधं पुरवाटिकावनं नगरग्राम सुरालयादिकम्।
गिरि निर्झर कूपपल्लवं कलयन्तौ ससृतुः पुरस्सरम्।।[3]

2. प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण—तपस्वी, भरण्यवासी होने के कारण वाल्मीकि ने ऋतुओं का वर्णन संग्लिष्ट रूप में किया है। हेमन्त ऋतु का चाक्षुष प्रत्यक्षी करण वाले रूपों का चित्रांकन संश्लिष्ट रूप में इस प्रकार हुआ है–

आग्राहावीर्यः पूर्वहिण मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः।
संरक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ।।[4]
अवश्यायनिपोतन किंचित्प्रल्किन्नशाद्र वला।
वनानां शोभते भूमि र्निविष्टतारूणालया।।
अवश्यायनोनद्धा नीहारतम सावृताः।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः।।

---

(1) जा.जी.1/52 (2) वा.रा.3/15/16,17,18 (3) जा.जी.5/3 (4) वा.रा.3/16/19,20,23,24

वाष्पसंछन्न सलिला दूत विज्ञेय सारसाः।
हिमाद्रिवालुकैस्त्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्।।

प्रकृति का उद्दीपन रूप—महर्षि वाल्मीकि अरण्यवासी रहे हैं अतः प्रकृति से उनका साहचर्य अत्यन्त नैकट्य का रहा है। मनुष्य जब सुखी या दुःखी होता है तो प्रकृति भी उसके सुख-दुःख में सम्मिलित होती सी प्रतीत होती है इसी को प्रकृति का उद्दीपन रूप कहते हैं। मानव के भावोल्लास आत्मतन्मयता में प्रकृति ने कितना सहयोग किया है वाल्मीकि रामायण में देखने को मिलता है। विरही राम पम्पा सरोवर के निर्मल जल, पक्षियों का कलरव-कूजन से किस प्रकार प्रभावित हुये हैं ऋषि ने उसे भावपूर्ण शब्दों में लिखा है-

पद्म सौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः।
नीलां कुवलयोद् धातैर्बहुवर्णां कुथामिव।।[1]
अरविन्दोत्पलवतीं पद्म सौगान्धिकायुताम्।
पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणोद्घुण्ट नादिताम्।।
स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह।
विललाप च तेजस्वी शमो दशरथात्मजः।।

हंस कोकिलकीरचातकगीतिकाभि र्नेत्र सौख्यकरैर्मयूरकपोत नृत्यैः।
आद्रिश्रृंगपतज्जलाहततंत्रवाद्यैः किन्न मे सुलभं वनेऽपि सुखं त्रयाणाम्।।[2]
शीतलोऽत्र पयस्विनी सलिलाभिषिक्तो वाति गन्धवहः फलन्ति मृदूनि वृक्षाः।
सर्वभोगमयो निरत्ययकामदोऽयं राजते हिममाश्रमे विषुथोप भोगः।।

प्रकृति का आलांकारिक रूप—मानवीय सौन्दर्य के लिये कवियों को प्रकृति से सुन्दर और दूसरा कोई उपादान नहीं मिलता इसीलिये नारी-पुरुष की आंगिक शोभा, दीप्ति, कान्ति, सौकुमार्य की तुलना प्रकृति से की जाती रही है बात यह है कि प्रकृति में जो कोमलता दिखाई पड़ती है कवियों को स्त्री-पुरुष सौन्दर्य निरूपण के लिये यथेष्ट सामाग्री उपलब्ध कराती है। वाल्मीकि रामायण में सीता-राम आदि के आंगिक सौन्दर्य के लिये चन्द्रमा, मेघ कमल इत्यादि उपमान अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हैं-

केचिद् रजतसंकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः।
पीतमास्जिष्ठ वर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः।।[3]

---

(1) वा.रा.3/75/20,21,22 (2) जा.जी.11/33,34 (3) वा.रा.2/94/5,6

पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योति तीरसप्रभाः।

विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातु विभूषिताः।।

वशागतश्चन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वज कन्यका न कम्।।[1]

प्रभातवेलेव विहंगमस्वरा विलोल पणिव्रततीष्ट भास्करा।

गते तु मध्येऽम्बरमर्क यौवने रराज मध्याह्नविभेव वल्गुका।।

प्रकृति का मानवीकरण—प्रकृति को मानव रूपों के सामन क्रिया-कलाप करते दिखाना यद्यपि पाश्चात्य जगत की देन है फिर भी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि सम्पन्न रससिद्ध कवि इस प्रकार के चित्रण करते हैं जिसमें प्रकृति मनुष्यों जैसी संवेदनायें प्रकट करती हैं इसी को प्रकृति का मानवीकरण कहते हैं। वाल्मीकि ने प्रकृति व्यापार के साक्षात्कार स्वरूप मानसिक प्रतिक्रिया का सूक्ष्म चित्रांकन किया है। आलांकारिक निरूपण करते समय कमल चन्द्रमा आदि उपमान रूप में वर्णित हैं उसमें मानव की सजीव सत्ता का आरोपण है। कवि ने पल-पल परिवर्तित प्रकृति के रूप को संवेदनात्मक रूप में इस प्रकार प्रकट किया है-

कामिनामययत्यमशोकः शोक वर्धनः।

स्तबकैः पवनोत्क्षिप्तैस्तैस्तर्जयन्निवमां स्थितः।।[2]

राजकुल की परम्परा के अनुरूप प्रभातबेला में चारण, भाटों द्वारा गाये जाने वाले जागरण गीतों के समान अयोध्या में तोता, मैना इसी प्रकार गीत गाते हुये दिखाये गये हैं-

जातं कोकनऽ भिन्नं वाति मन्दं समीरणः।

नीहारकणिकाश्चापि नलिनीपत्रभर्त्सिताः।।

प्रकृति का परिवर्तित रूप—प्रकृति के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण योगदान यह है कि सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप प्रकृति भी परिवर्तित रूपों में चित्रित है। नदियों का वेगपूर्ण प्रवाह, बादल, हाथियों, झरनों की ध्वनि, मेघाच्छादित दिशाओं नें अन्धेरा छा जाने अथवा निरावरण उन्मुक्त आकाश को स्वच्छता जैसे जितने सजीव, मार्मिक नयनाभिराम, चित्ताकर्षक चित्र मिलते हैं उतने संस्कृत के अन्य काव्यों में कम ही दिखाई देते हैं, यही कवि का प्रकृति सम्बन्धी सूक्ष्म निरीक्षण है जिसमें सजीवता हार्दिक और मानवीय चेतना की स्थितियों का चित्रांकन प्रमुख है-

(1) जा.जी.3/8/2 (2) वा.रा.4/1/59

वर्षां प्रवेगा विपुला पतन्ति

प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः।[1]

प्रणष्ट कूलार्ष प्रवहन्ति शीघ्रं

नद्मो जलं विप्रतिपन्न मार्गाः।।

मेघाः समुद्भूत समुद्रनादा। महाजलौघैर्गगनावलम्बाः।

नदीस्तटानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयंति।।

प्रहर्षिताः केतकिपुष्पगंधमाघ्राय मत्ता वन निझरिषु।

प्रतापशब्दा कुलिता गजेन्द्राः सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति।।

धनोपगूढ़ गगनं न तारा

न भास्करो दर्शनमभ्युपैति।

नवैर्जलौधेर्धरिणी वितृप्ता

तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः।।

धनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण।

नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानद्य।।[2]

व्यक्तः नभः शस्त्रविधौत वर्णं

कृशप्रवाहानि नदीजलानि।

कह्लरशीताः पवनाः प्रवान्ति

तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशः।।

इसी प्रकार जानकी जीवनम् में व्यंजना के द्वारा परिवर्तन को इस प्रकार चित्रित किया गया है-

स एव द्रुमास्ताश्च शाखास्त एव क्षुपास्ताश्च वल्लयो न किंचिद् द्वितीयम्।

तथाप्यागते याति नव्या वनाली वसन्ते यथा राजधानी तथैव।।[3]

तात्पर्य यह है कि लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के लिये जिस प्रकार प्रकृति वर्णन की पद्धति का उल्लेख है कवियों ने उसका परिपालन तो किया ही है साथ ही प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण अपने भाव प्रेक्षण को लेकर प्रकृति के विविध रूपों को चित्रित किया गया है उसका

(1) वा.रा.4/28/44,45,28,47 (2) वही 4/30/26,36 (3) जा.जी.10/22

उल्लेख लक्षण ग्रन्थों में नहीं है फिर भी आधुनिक समीक्षा प्रणाली में इनका विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार शोधकर्त्री ने इस अध्याय को प्रकृति एवं अन्यवस्तु वर्णन जैसे दो भागों में बाँट कर सर्वप्रथम प्रकृति के कोमल, कठोर, सरल, संश्लिष्ट मानवीय भावोद्दीपक, मानव सहचरी एवं धात्री के विविध रूपों का उल्लेख कर यह बताने का प्रयास किया है कि मूलतः प्रातः, संध्या तथा प्रकृति के अन्य वस्तुओं का वर्णन लक्षणानुधावन मात्र होता है जिसमें महाकाव्योचित परिपाटी का प्रयोग मात्र दिखाई पड़ता है, वस्तुतः इन वर्णनों से अलग प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण एवं हार्दिक अनुरक्ति दिखाई पड़ती है। शोधकर्त्री ने कवि की निजी भावानुभूति, काव्य शैली एवं रसाश्रित रूप में कवियों द्वारा चित्रित नयनाभिराम, मधुर, रसपेशल चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण युक्त चित्रों का विश्लेषण किया है। अब यहाँ महाकाव्यों के लक्षण निर्देशानुसार प्रकृति के उपादानों सहित मानव जीवन से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं का वर्णन, विश्लेषण किया जायेगा जिससे एक ओर कवि के काव्य जगत का व्यापक विस्तार दिखाई देता ही है दूसरी ओर उसकी बहुज्ञता चमत्कार प्रियता और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी प्रदर्शित होती है।

अन्य वस्तु वर्णन

प्रकृति के अन्य वस्तु वर्णनों में संध्या–सूर्य–चन्द्र–रात्रि–प्रदोष–अन्धकार–दिन–प्रातः–मध्याह्न–मृगया–पर्वत–ऋतु–वन तथा समुद्र आदि आते हैं।

सन्ध्या वर्णन

प्रातः कालीन संध्या रक्तवर्ण की क्यों होती है-इसका समाधान करते हुये वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि सुमेरू पर्वत तथा सूर्य के तेज से युक्त होने पर संध्या रक्तवर्ण की होती है–

कांचनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः।
आविष्टा तेजसा सन्ध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते।।[1]

सांयकालीन सन्ध्याकाल में स्वभावतः होने वाले कार्यो का वर्णन अनसूया ने सीता के प्रति इस प्रकार करते हुये कहा–

दिन में भोजनार्थ जो पक्षी विविध स्थानों में गये हुये थे, अब सन्ध्याकाल में अपने

(1) वा.रा.4/40/63

आवास स्थल पर पहुँच कर निद्रार्थ कलरव कर रहे हैं। स्नान करके कलश हाथ में लिये मुनिजन आश्रम की ओर आ रहे हैं।

ऋषियों के हवन का धूम उड़ रहा है। दिशायें अब प्रकाशित नहीं हो पार रही हैं। तपोवन के मृग वेदियों पर आकर शयन करने लगे हैं तथा रजनीचरों का भ्रमण अब प्रारम्भ हो गया है-

दिवसे परिकीर्णानामाहारार्थं पतीत्रणाम्।
सन्ध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः।।[1]
एते चाप्यभिषेकार्द्रा मुनयः कलशोद्यताः।
सहिता उपवर्तन्ते सलिलाप्लुतवल्कलाः।।
अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम्।
कपोतांगारूणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः।।
अल्पवर्णा हि तरवो घनीभूताः समन्ततः।
विप्रकृष्टेन्द्रिये देशे न प्रकाशान्ति वैदिशः।।
रजनीचर सत्वानि प्रचरन्ति समन्ततः।
तपोवनमृगा ह्येते वेदितीर्थेषु शेरते।।

आकाश में (पूर्व और पश्चिम दिशा में) रक्त वर्ण की आभा का फैल जाना सन्ध्याकाल का विशेष लक्षण माना जाता है अतः रक्तवर्ण की आभा जब दिन में कभी आकाश में दिखाई पड़ती है तो सन्ध्याकाल की उत्प्रेक्षा की जाती है। युद्धार्थ लंका से रावण के चलने के समय लंका की आभा का इस प्रकार वर्णन किया गया है-

सन्ध्यया चावृता लंका जपापुष्पनिकाशया।
दृश्यते संप्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुन्धरा।।[2]

शरदऋतु की सायंकालीन सन्ध्या को नवयुवती वधू के समान बताते हुये कहा गया है-

चंचच्चन्द्रकर स्पर्शहर्षोन्मीलिततारका।
अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम्।।[3]

---

(1) वही 2/119/4-8 (2) वही 6/107.23 (3) वही 4/30.45

इसी प्रकार प्रातः कालीन सन्ध्या जब आती है तो (प्राची दिशा) उस समय आकाश में तारे कम दिखाई पड़ने लगते हैं पूर्व दिशा में सूर्य सारथी अरूण की रक्त किरणों से रंजित हो जाती है और ऐसा लगता है मानो रक्त पुष्पों के रस से रंगे हुये वस्त्र का वह घूंघट लगाये हो। यद्यपि यहाँ आकाश और पूर्व दिशा की स्थिति वताई गयी है तथापि वह सम्पूर्ण दृश्य प्रातः कालीन सन्ध्याकाल का ही है–

इतिकथयति रामे चन्द्रतुल्याननेन।
प्रविरलतरतारं व्योम जज्ञे तदानीम्।।[1]
अरूणकिरण रक्ता दिग्वभौ चैव पूर्वा।
कुसुमरसविमुक्तं वस्त्रमागुष्ठितेव।।

सन्ध्या के इन दोनों वर्णनों में सायंकालीन सन्ध्या का वर्णन तो स्वयं श्रीराम ने लक्ष्मण से किया तथा प्रातः कालीन सन्ध्या का दृश्य श्रीराम के कथा सुनाते हुये उपस्थिति हुआ।

जानकी जीवनम् में भगवान भुवन भास्कर के पश्चिम दिशा के प्रस्थान करने के साथ सन्ध्या का वर्णन मनुष्य के विश्राम करने की ओर संकेत करते हुये किया गया है–

जिगमिषति दिशान्तं वारूणं वाऽरूणोऽयं सपदिनलिन वन्धुस्तन्न युक्तं प्रयातुम।
प्लवगबलसमेतस्साधु विश्रम्य रात्रौ समशितमधुपर्कः श्वः प्रभाते क्रमेथाः।।[2]

सूर्य वर्णन

सूर्य का उदय सर्वप्रथम जहाँ होता है उस दिशा को पूर्व दिशा कहते हैं और वही स्थान प्रथिवीभुवन का द्वारदेश भी है–

पूर्वमेतत् कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च।
सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते।।[3]

हेमन्त ऋतु की शोभा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि इस ऋतु में दक्षिणायन में रहने के कारण सूर्य दक्षिण दिशा का सेवन करता है, इसीलिये उसकी तो शोभाभिवृद्धि होती है, परन्तु तिलकविहीन स्त्री की तरह उत्तरदिशा की शोभा नहीं हो रही है। हिमवान् का

(1) वही 7/59 23 (2) जा.जी.16/51 (3) वा.रा.4 40/64

नाम इस समय चरितार्थ हो जाता है, क्योंकि उसमें हिमराशि तो विद्यमान है ही इसके अतिरिक्त सूर्य भी अत्यन्त दूर रहता है अतः तज्जन्य उष्णता का प्रभाव व्याप्त नहीं हो पाता-

सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्।
विहीन तिलकेव स्त्री नोत्तरादिक प्रकाशते।।[1]
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम्।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः।।

वर्षा ऋतु में जब आकाश के मेघाच्छन्न होने से सूर्य प्रायः अस्त होते दिखाई नहीं पड़ता तब पक्षियों के छिप जाने, कमलों के बन्द हो जाने तथा मालती के विकसित हो जाने से सूर्य का अस्त हो जाना निश्चित होता है-

विलीयमानैर्विहगेर्निमीलहिमश्च पंकजैः।
विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः।।[2]

मेरू पर्वत को सूर्य का वरदान प्राप्त था। मेरू के अस्ताचल नामक शिखर पर दश सहस्र योजन की दूरी को सूर्य अर्धमुहूर्त=1 घड़ी अर्थात 24 मिनट में तय कर लेते हैं। विश्वेदेव, वसु आदि देवगण पश्चिम सन्ध्या के समय मेरू पर आकर सूर्य का उपस्थान करते हैं-

विश्वदेवाश्च वसवो मरूतश्च दिवौकसः।
आगत्य पश्चिमां सन्ध्यां मेरूमुत्तमपर्वतम्।।[3]
आदित्यमुपतिष्ठन्ति तैश्च सूर्योऽभिपूजितः।
अदृश्वः सर्वभूतानामस्तं गच्छति पर्वतम्।।
योजनानां सहस्राणि दश तानि दिवाकरः।
मुहूर्तार्धेन तं शीघ्रमभियाति शिलोच्चयम्।।

राजेन्द्र मिश्र ने आकाश मण्डल स्थित मंजीष्ठ रागोपेत भगवान मारीचि का बिम्बात्मक चित्रण इस प्रकार किया है-

अथांशुमालिन्यपहाय किंचन्मांजिष्ठरागं नभसि प्ररूढे।
विदेहराजस्य सुतेन सार्धं मुनिः प्रतस्थे मखदर्शनाय।।[4]

---

(1) वही 4/16/8,9 (2) वही 4/28.52 (3) वही 4 42/41,43 (4) जा.जी.7/20

वाल्मीकि रामायण में सूर्य को पृथ्वी का द्वारेश भी कहा गया है जबकि जानकी जीवनम् में सूर्योदय जगतिक चेतना के साथ भूपतियों के विरूदावली विस्तार की चर्चा की गयी है-

समुदिते नलिनीदयिते रवौ प्रथितमागध चारण वन्दिनः।
गृहमुपेत्य जगुर्विरूदावलीं रघुनृपान्वय कीर्ति विसारिणीम्।।[1]

चन्द्र वर्णन

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण श्रीराम से चन्द्रमा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि चन्द्रमा की ज्योत्स्ना उसी प्रकार सुशोभित नहीं होती है, जैसे आतप के प्रभाव से श्यामवर्णा यह सीता शोभा प्राप्त नही कर रही है-

रविसंक्रान्त सौभाग्यवस्तुषारारूणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवार्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।।[2]
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते।।

रात्रि में जिस समय हनुमान लंका का निरीक्षण कर रहे थे उस समय उन्हें आकाश में उदित होकर ऊपर की ओर चलने वाला चन्द्रमा उसी प्रकार दिखाई पड़ा, मानो किसी सरोवर में हंस तैर रहा हो-

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वंस्तारागणैर्मध्यगतोविराजन्।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकानुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः।।[3]
शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णमुद्गच्छमानं व्यवभासमानम्।
ददर्श चन्द्र स कपिप्रवीरः पोप्लूयकानं सरसीव हंसम्।।

रात्रि में लंका का निरीक्षण करते हुये हनुमान ने रावण के अन्तःपुर में प्रवेश करके आकाश के मध्य में स्थित हुये चन्द्रमा की जिस शोभा को देखा, उसका अनुभवपूर्ण विशद वर्णन उपमा अलंकार में अत्यन्त सरस और आकर्पक शैली में कवि ने किया है। उसमें कहा गया है कि जैसे गोशाला में मत्त वृषभ भ्रमण करता है उसी प्रकार आकाश में चन्द्रमा गतिशील हो रहा है। चन्द्रोदय से तीन कार्य होते हैं-1.लोक में फैले पाप=अन्धकार का विनाश,

(1) वही 19.8 (2) वा.रा.3 16/13.14 (3) वही 5/2/54,55

2.समुद्र की वृद्धि तथा 3. सभी प्राणियों की शोभा में अभिवृद्धि। पृथ्वीलोक में मन्दर पर्वत की, प्रदोषकाल में समुद्र की, जल के मध्य कमलों की, चाँदी के पिंजड़े में बैठे हुये हंस की, मन्दर पर्वत की कन्दरा में बैठे हुये सिंह की तथा मत्त हाथी पर बैठे हुये वीर की जैसी शोभा है, वहीं आकाश में स्थित चन्द्रमा की होती है। (वा0रा05/5/1-7)

कैलाश पर्वत पर जाते हुये सूर्यास्त हो जाने पर रावण ने उच्च शिखर पर बैठकर चन्द्रकिरणों के गुणों का अवलोकन किया-

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि।
प्रसुप्तं सुमहत्सैन्यं नानाप्रहरणायुधम्।।[1]
रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धमि।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादपशोभितान्।।

वाल्मीकि रामायण में विभिन्न ऋतु अनुसार चन्द्रमा, रात्रि, ज्योत्स्ना, चन्द्र प्रभावित ओषधियाँ, मेघाच्छदित चन्द्र तथा कुमुदनियों की चर्चा की गयी है। इसी प्रकार जानकी जीवनम् में कुमुद पुष्पों से अभिनन्दित घन घटा को विध्वंस कर निकलते हुये चन्द्र बिम्ब का चित्रांकन कुछ स्थलों पर अत्यन्त मार्मिक ढंग से हुआ है-

चन्द्रिका विधुसंगतेव दधत्प्रकाशा मेघवारितवैभवाकुमुदाभिनन्द्या।
मैथिली प्रययौ वनं रघुनाथ नाथा सौध सौरत्यमपास्थ कान्तपदानुरागा।।[2]

आलांकारिक रूप में चन्द्र बिम्ब का ऐन्द्रिय प्रत्यक्षीरकण राजेन्द्र मिश्र ने इस प्रकार कराया है-

घनोपरूद्धार्थ विद्यौ प्रियाया विलम्विकेशावृतचारूवक्त्रम्।[3]

रात्रि (रजनी) वर्णन

वाल्मीकि रामायण में रात्रि की शोभा का वर्णन इस प्रकार किया गया है-चन्द्रमा ही उसका सौम्य मुख, तारागण ही नेत्र तथा चन्द्र ज्योत्स्ना ही रेशमी वस्त्र बताया गया है। अतः शरद् ऋतु नें जब चन्द्रमा सुशोभित होता है, तारागणों की दिव्य छटा तथा चन्द्रज्योत्स्ना भी प्राणियों के सन्ताप कर शमन करती है, उस समय रात्रि की शोभा इस प्रकार की होती है मानो वह शुक्ल वर्ण का रेशमी वस्त्र पहने कोई स्त्री हो-

(1) वही 7/26/2-3 (2) जा.जी.11/1 (3) जा.जी.13/19

रात्रिः शशांकोदित सौम्य वक्त्रा।
तारागणोन्मीलित चारूनेत्रा।।[1]
ज्योत्स्नांशुक्रप्रावरणा विभाति।
नारीव शुक्लांशुकसंवृांगी।।

हनुमान् द्वारा श्रीराम कथा सुनकर जिनका शोक समाप्त हो गया है तथा श्रीराम द्वारा सहन किये जाने वाले दुःखों को सुनकर श्रीराम के ही समान शोक का अनुभव करने वाली सीता उस प्रकार दिखाई पड़ने लगी जैसे शरद् ऋतु के प्रारम्भ में मेघों के मध्य से निकलते हुये चन्द्रमा आकाश में दिखाई पड़ता है–

सा रामसंकीर्तनवीत शोका।
रामस्य शोकेन समानशोका।।[2]
शरन्मुखोनाम्बुदशेषचन्द्रा।
निशेव वैदेहसुता बभूव।।

लंका में रात्रियुद्ध के समय रात्रि को प्राणहारिणी कहा गया है–

रविस्तंगतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी।[3]

वाल्मीकि ने ''प्रदोषो रजनी मुखं' के अनुसार रात्रि राका या कुहुनिशा का सजीव और यथार्थ चित्रण किया है। राजेन्द्र मिश्र ने भी चांदनी रात का वर्णन इस प्रकार किया है जिसमें क्रमशः अस्तंगत होते सूर्य और वृद्धिमगत चाँदनी का कोमल प्रकाश चतुर्दिक विकीर्ण होता है–

अथशनैर्दिवसा रविदीपिता विधुसिता मृदुशीतलरात्रयः।[4]

प्रदोष वर्णन

प्रदोषो रजनीमुखम्! रात्रि के प्रथन प्रहर को प्रदोष कहते हैं। इसी समय शीघ्रता से उछलकर हनुमान रम्य लंकापुरी में प्रविष्ट हुये थे और उसका सिंहावलोकन किया था–

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम्।।[5]

प्रदोष कोल में समुद्र की विशेष शोभा होती है–

(1) वा.रा.4 30/46 (2) वही 5/36/47 (3) 6 44 1 (4) जा.जी.19/23/1 (5) वा.रा.5 2 48

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्या यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।।[1]

जानकी जीवन में प्रदोष काल का वर्णन इस प्रकार है-

अपूपुजद्धैमवतीं सहालिभिः प्रदोष काले स्वसृभिर्वि मण्डिता।।[2]

ध्वान्त वर्णन

वर्षा ऋतु की रात्रि में जब दशरथ सरयू नदी के तट पर आये हुये किसी महिष, गज अथवा मृग को मारने की इच्छा कर रहे थे, उसी समय उन्हें श्रवणकुमार द्वारा घड़े में जल भलने की ध्वनि सुनाई पड़ी। उन्हें वह ध्वनि किसी हाथी की मालूम पड़ी और उन्होंने उसी शब्द को लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया।

इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि अन्धकार में शूरवीरों द्वारा भी कुछ अहितकर कार्य हो जाते हैं। इसका प्रबल उदाहरण है-दशरथ के वाण से श्रवण कुमार की मृत्यु हो जाना-

अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः।
अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः।।

लंका में रात्रियुद्ध के समय अन्धकार में वानरों ने राक्षसों की सेना तथा राक्षसों ने वानर सेना का पर्याप्त विनाश किया। उस समय राक्षस सुवर्णमय कवचों को धारण किये हुये प्रज्वलित ओषधियों के वन की तरह लग रहे थे-

राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारूणे।।[3]
हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन् सैन्य तु शुश्रुवे।।
कालाः कांचन संनाहास्तस्मिस्तमसि राक्षसाः।
सम्प्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव।।
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः पल्वंगमान्।।

दिवस वर्णन

सूर्य की उपस्थिति काल को दिवस कहते हैं। इसलिये सूर्य को दिनकर, अहस्कर आदि

(1) वही 5/5 2 (2) जा.जी.2/41/1 (3) वा.रा.6/44 3-6

कहा जाता है। रात्रि की शोभा जैसे शरद् ऋतु में सर्वाधिक होती है वैसे ही दिवस की शोभा हेमन्त ऋतु मं अधिक मानी गयी है। इसमें सूर्य तीक्ष्ण प्रतीत नहीं होता अर्थात शीत पड़ने के कारण सूर्य का आतप प्रिय लगता है और उसके सेवन की सदैव इच्छा वनी रहती है इसमें छाया और जल अधिक अच्छे नहीं लगते। फलस्वरूप हेमन्तऋतु के दिनों में अत्यन्त सुखपूर्वक संचरण किया जा सकता है-

अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिल-दुर्भगाः।।[1]
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समाहिताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम।।

पूर्वाह्न में सूर्य का आतप कुछ मात्रा में गृहीत हो पाता है। मध्याह्न में उसका स्पर्श सुखकर प्रतीत होता है। इस प्रकार कुछ पाण्डुरवर्ण का सूर्यातप पृथ्वी पर हेमन्त ऋतु के दिनों में अत्यन्त शोभा प्राप्त करता है-

आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्ने मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः।
संसक्तः किचिंदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ।।[2]

प्रातः-वर्णन

रात्रि की समाप्ति पर जव प्रातः काल हुआ तो विश्वामित्र ने श्रीराम-लक्ष्मण को जगाया उनसे प्रातः कालिक कार्य सम्पन्न करने को कहा। श्रीराम-लक्ष्मण ने स्नान क़रके जप किया-

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे।।[3]
कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्।।
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतु परमं जपम्।।

भगवान श्रीराम ने सीता-लक्ष्मण के साथ गंगा तट पर रात्रि व्यतीत की और प्रातः

(1) वा.रा.4/16/10,11 (2) वही 4/16 18,19 (3) 1/23/1-3

काल होने पर लक्ष्मण से कहा कि अब सूर्योदय होने वाला है। इस समय कृष्णवर्ण वाला कोकिल मधुरवाणी में बोल रहा है, मयूरों का घोष सुनाई पड़ रहा है अब हमें सागर-गामिनी गंगा को पार करना है। यहाँ प्रातः कालीन दो कार्यो का उल्लेख है-

1. कोकिल का कूजन करना तथा
2. मयूरों का अव्यक्त शब्द करना-

भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा।
असौ सकृष्णौ विहगाः कोकिलस्तात! कूजति।।[1]
बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने।

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में वर्णित प्रातः वर्णन का यह वैशिष्ट्य है कि आकाशीय परिवर्तन के साथ ही साथ मानव जीवन में दिवसारम्भ के कारण शरीर में उत्पन्न हर्ष-उत्साह, आदि का वर्णन प्रातःकाल के परिप्रेक्ष्य में किया है जिस प्रकार रात्रि का अवसान नये सुखद सवेरे में परिवर्तित होता है उसी प्रकार श्रान्त, क्लान्त, निद्रित मनुष्य प्रातः काल के रमणीय सुखद वातावरण से उत्साह का अनुभव करता है। राजेन्द्र मिश्र ने सीताराम के दाम्पत्य जीवन में आये प्रभात वेला का वर्णन इस प्रकार किया है-

अथ प्रभातोन्मुखरात्रिकालेविनिद्रनेत्रा विगतं स्मरन्ती।
शुश्राव वाणीमभलाऽनवद्यां कुतोऽपि सीता सहसैव दिव्याम्।।[2]

मध्याह्न-वर्णन

शरत् काल की समाप्ति पर जब हेमन्त ऋतु आती है तो मध्याह्नकाल में सूर्य की धूप का स्पर्श अत्यन्त प्रिय लगता है, उस समय छाया और जल का स्पर्श अच्छा नहीं लगता है-

अत्यन्त सुख संचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिल दुर्भगाः।।[3]

महर्षि वाल्मीकि ने आश्रम में सीता को छोड़कर सुमन्त के साथ लक्ष्मण ने अग्रिम रात्रि केशिनी नामक नगर में व्यतीत की और दूसरे मध्याह्न में रत्नों से परिपूर्ण अयोध्या में वे लौटे-

(1) 2/52/1-3 (2) जा.जी.13/1 (3) वा.रा.3/16/10

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः।
अयोध्यां रत्नसम्पूर्णा हृष्टपुष्ट जनावृताम्।।[1]

लवणासुर का वध करने के उद्देश्य से यमुना नदी पार करके धनुर्वाण लिये हुये शत्रुघ्न मधुपुर के द्वार पर खड़े थे, तो मध्याह्न में सहस्रों प्राणियों को मारकर उन्हें साथ लिये लवणासुर वहाँ आया और शत्रुघ्न के साथ उसकी बातचीत हुयी। युद्ध में शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर मारा गया–

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते क्रूरकर्मा स राक्षसः।
आगच्छद बहुसाहस्रप्राणिनां भार मुदवहन्।।[2]

मृगया–वर्णन

वन में धनुर्धर वीर मांस प्राप्ति के लिये तथा वन–विहार के लिये मृगया–आखेट के प्रसंग में मृगों का वध करते हैं, परन्तु मृगरूपधारी इस मारीच ने मृगया में आय हुये अनेक राजाओं को भी मार डाला है अतः इसका वध करना आवश्यक है–श्रीराम अपना यह अभिमत लक्ष्मण से कहा–

मांसहेतोरपि मृगान विहारार्थं च धन्विनः।
ध्वन्ति लक्ष्मण! राजानो मृगयायां महावने।।[3]
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः।
निहताः परमेष्वासास्तस्माद् वध्यस्त्वयं मृगः।।

राक्षस राजा रावण लंका में अभिषिक्त होकर तथा बहिन शूर्पणखा को दानवेन्द्र कालकेन्द्र को देखकर मृगया करते हुये भ्रमण कर रहा था, उस समय उसने दिति के पुत्र मय नामक दानव को अपनी कन्या के साथ वन में घूमते हुये देखा–

अथ दत्वा स्वयं रक्षो मृगयामतटे स्मतत्।
तत्रापश्यत् ततो राम! मयं नाम दितैः सुतम्।।[4]

वन–वर्णन

वाल्मीकि रामायण में अनेक प्रकार के वन बताये गये हैं–रमणीय, भंयकर, दुर्गम आदि। विराध नामक राक्षस अपने स्कन्ध पर श्रीराम–लक्ष्मण को बैठाकर विशाल मेघ के सदृश

(1) वही 7/52/2 (2) वही 7/68/4 (3) वा.रा.3 4 31,40 (4) वही 7/12/3

श्यामवर्ण वाले भयंकर वन में ले गया, जो नाना प्रकार के वृक्ष-पक्षिगण-हिंसक जन्तुओं से भरा होने के कारण विचित्र लग रहा था जिसमें स्थान-स्थान पर शिवायें भी रह रही थी-

वनं महामेघनिभं प्रविष्टो
द्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम्।[1]
नानाविधैः पक्षिकुलैर्विचित्रं
शिवायुतं व्यालमृगैर्विकीर्णम्।।

महर्षि अगस्त्य के आश्रम की ओर जाते हुये भगवान श्रीराम ने मार्ग में रमणीय वन देखा, जिसमें पनस-शाल-मधूक-बिल्व आदि के वृक्ष, पुष्पित लतायें दिखाई पड़ रही थी, हाथी-वानरों के द्वारा छिन्न किये गये तथा पक्षिगणों द्वारा प्रतिध्वनित पौधों के झुण्ड के झुण्ड खड़े थे। वहाँ पशु भी विचरण कर रहे थे।[2]

जानकी जीवनम् में राम और लक्ष्मण के विलास वन में प्रवेश पर उनके द्वारा देखे गये रमणीय वन का चित्रांकन कवि राजेन्द्र मिश्र ने इस प्रकार किया है-

मदमत्तपिकाभिनन्दितौ कलहंसारवभूरि सत्कृतौ।
वनकेकिकुलाभिवान्दितौ शुकपारावत सारिके क्षितौ।।[3]
वन पुष्करिणी विहारि भिर्विहगैश्चापि रिंरसुंभिश्चिरम्।
उपजातकुतूहलौ तदा शनकैः प्राविविशुर्वनान्तरम्।।

राज्याभिषेक हो जाने पर श्रीराम उस अशोकवाटिका में प्रविष्ट हुये, जिसमें चन्दन-आम्र-मधूक-पारिजात के वृक्ष खड़े थे, रम्य कुसुम-पल्लव-फलों से जो अलंकृत थी, जिसमें कोकिल आदि विचित्र पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे, निर्मल जल राशि से परिपूर्ण विविध आकार वाली वापियाँ जिसमें बनी थीं। ऐसा वह श्रीराम का गृह-कानन तारागणों से विभूषित आकाश, इन्द्र के नन्दन वन, ब्रह्मा तथा चित्ररथ के वन की तरह सुशोभित हो रहा था। वहाँ सीता के साथ लताओं के आसन पर बैठकर उन्होंने मधुपानादि कार्य सम्पन्न किये।[4]

समुद्र-वर्णन

वरुणालय समुद्र सलिल राशि से तो समाकुल दिखाई ही पड़ता है, परन्तु उस सलिलराशि के अन्दर मुख्यतः रत्न और जलजन्तु निवास करते हैं। जिस समय भगवान राम

(1) वा.रा.3/3/26 (2) 3/11/73-78 (3) जा.जी.5/46-47 (4) वही 7/42/1-25

सुग्रीव-सेना को साथ लेकर लंका विजयी के उद्देश्य से समुद्र के वेलातट पर आये तो उन्होंने देखा कि यह वरूणालय-सरित्पति समुद्र कूर्म-मीनादिकों से व्याप्त है तथा सहसा उठने वाली लहरों में भयंकर गर्जन की ध्वनि हो रही है, जिसके कारण विना किसी उपमा का अवलम्वन किये इसके दूसरे तट को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

सुग्रीव द्वारा रक्षित वानरों की त्रिविध सेना ने समुद्र को देखा कि इसका दूसरा तीर बहुत दूर है, मध्य में पर्वत आदि आश्रय भी नहीं हैं। प्रचण्ड मकररूपी ग्रहों से व्याप्त होने के कारण जिसकी उग्रता और वढ़ जाती है। प्रदोप-काल में चन्द्रोदय होने पर फेनराशि से हंसता हुआ सा और तरंगों से नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। आकाशस्थित चन्द्रमा इसकी प्रत्येक तरंग में प्रतिबिम्बित हो रहा है। प्रचण्ड वायु के समान वेगशाली तिमि-तिमिङ्गल प्रभृति महाग्राहों तथा भुजंगों से आकीर्ण यह वरूणालय अत्यन्त दुर्गम मार्ग वाला है तथा अगाध भी है। अनेक सादृश्यों के कारण सागर की उपमा अम्बर (आकाश) से तथा अम्वर की उपमा सागर से दी जा सकती है-

> सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम्।
> सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषम दृश्यत।।[1]

समुद्र का जल नभ से सम्प्रक्त रहता है और नभ समुद्र के जल से। आकाशवर्ती तारागण भी समुद्रवर्ती रत्नों की तरह चमकते दिखाई पड़ते हैं। आकाश में मेघ उड़ते हैं तो समुद्र में भी लहरें उठती हैं। इसीलिये दोनों में कोई भेद नहीं कहा जा सकता है-

> संप्रक्तं नभसाऽप्यम्भः संप्रक्तं च नभोऽम्भसा।
> तादृग्रूपे स्म दृश्यते तारा रत्नसमाकुले।।[2]
> समुत्पतित मेघस्य वीचिमाला कुलस्य च।
> विशेषो न दूयोरासीत् सागरस्याम्बरस्य च।।

समुद्र की लहरें परस्पर आहत होकर उसी प्रकार भंयकर शब्द कर रही थीं, जैसे आकाश में महाभेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। ऐसे महाभयंकर समुद्र को देखकर सभी वानर सेना परम विस्मय करने लगी।[3]

सीता की खोज के लिये दक्षिण दिशा की ओर गये हुये वानराधिपतियों को तो

(1) वा.रा.6/4/115 (2) वही 6/4/116,117 (3) वा.रा.6/4/93-121

पातालनिवासी दानवेन्द्रों से संकुल तथा आकाश की तरह जिसका पार नहीं पाया जा सकता है ऐसे महाजलराशि से आवृत समुद्र को देखकर रोमांच होने लगा था और वे यह कहते हुये विषाद भी करने लगे थे कि अब कार्य कैसे सम्पन्न होगा। इसी समुद्र के उल्लंघन का निश्चय कर लेने पर हनुमान ने कहा था कि मेरे भुजावेग से प्रेरित हुये समुद्र के द्वारा मैं पर्वत-नदी-सरोवरों सहित भूलोक को डुवा सकता हूँ। मेरे ऊरू जंघाओं के वेग से यह वरूणालय समुद्र ऊपर की ओर खड़ा हो जायेगा। उन्होंने यह भी कहा कि श्रीराम के कार्यार्थ मैं समुद्र को सुखा भी दूँगा। उन्होंने श्रीराम तथा वानरों के हित के लिये दुष्पार समुद्र का उल्लंघन किया था। यह समुद्र इक्ष्वाकुनाथ सगर द्वारा बढ़ाया गया था इसी समुद्र का उल्लंघन कर हनुमान जब उसके दूसरे तट पर पहुँचे तो उन्हें लंका ऐसी दिखाई पड़ी मानों वह अमरावती हो-

स सागरं दानवपन्नगायुतं

वलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम्।[1]

निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा

ददर्श लड्.काममरावतीमिव।।

जानकी जीवनम् में लंका से प्रस्थान के उपरान्त पुष्पक विमान में आरूढ़ राम द्वारा सीता से सागर का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

जलधिनिधिचलवेलालोलखेलाखलीनं पुलिनमिदमनूनं सैकतं पश्य सीते!।

जलधिधनुषि रूढोऽमोघबाणप्रभोऽयं दशवदनजिघत्सुः सेतुरालो क्यतेऽत्र।
इह खलु नल नील स्पर्शमात्रेण सिन्धौगिरिशिखर निकायः पुप्लुवे फेनतुल्यः।।
वियदुपरिसुनीलं नीलसिन्धु नीचैरूभयमपि समानं पश्य कान्ते विचित्रम्।
इह गगनपृथिव्योर्लक्ष्यते नैव भेदो निखिलमपि विहायस्सागरो वा विभाति।।

इह सुमुखि धरायां यावती सृष्टिरास्ते ह्यधि जलधि ततोऽपि प्राज्यमात्रा विचित्रा।
त्रिगुणमधिकमस्ति व्यायतं सिन्धुवक्षो जलनिधिरशनाया देवि! पदांश भूमेः।।

(1) वही 5/1/202

झषमकरभुजंगग्राहनक्रप्रविद्धं प्रहसदिव निकामं शुभ्र डिण्डी रपुंजैः।
लुठ दिव चलवीचिक्षोभवेगात्प्रमत्तं जलधिविकलरूपं रूपम प्रेयसीदम्।।[1]

ऋतु–वर्णन

सामान्यतः एक वर्ष में छह ऋतुयें मानी जाती हैं। अधिक शीत प्रदेशों में ग्रीष्म के न होने से, अधिक उष्ण प्रदेशों में शीत न होने से तथा मरूस्थल में वर्षा के न होने से वहाँ पाँच ऋतुयें ही मानी गयी है।

जिस प्रकार इस दृश्यमान संसार में भौगोलिक परिवर्तन होते हैं और मानव जीवन इससे कई रूपों में प्रभावित होता है उसी प्रकार स्वयंभू कवि रचित काव्य संसार के ऋतु वर्णन या तो पद्धति के रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप में चित्रित होते हैं और रचनाकार के पात्र उससे प्रभावित होते दिखाई देते हैं।

रामकथा में ऋतु वर्णन के अनेक अवकाश कवियों की कल्पना अनुसार उपलब्ध है क्योंकि राम का अधिकांश जीवन वनों में व्यतीत हुआ है। वाल्मीकि रामायण में प्रकृति के अनेक रूप पिछले पृष्ठों में चित्रित करायें हैं यहाँ तो षट् ऋतुओं के अन्तर्गत कुछ ऋतुओं के विशिष्ट चित्रांकन का मूल्यांकन करना है। षट् ऋतुओं के अन्तर्गत वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध है। वे परिवर्ती कवियों के लिये उपजीवी सिद्ध हुये हैं। उठते हुये मेघों, मेघाच्छादित आकाश की विविध रूपता, शीतलमन्द सुगन्ध वायु का संचरण, वर्षागमन से उत्फुल्ल कुटज, कदम्ब पुष्पों का खिलना, नदियों का वेगमय प्रवाह, वनान्त शोभा, उड़ती हुई वलाका पंक्ति से बादलों की शोभा वृद्धि, मस्त मयूरों का नर्तन, मधुमाते हाथियों की वप्रक्रीड़ा, प्यासे पक्षियों में चातक और पपीहों की आकुल पुकार एवं तृप्ति आदि के दृश्य वाल्मीकि रामायण में भरे पड़े हैं–

नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गर्भास्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्।।
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः।
कुटजार्जुनमालाभिरलं कर्तुं दिवाकरः।।
सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्ते ष्वचि पाण्डुभिः।
स्निग्धैरभ्रपटच्छदैर्वद्ध व्रणामि वाम्वरम्।।

(1) जा.जी.16/17–21

मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदल शीतलाः।
शक्यमंजलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः।।
मेघकृष्णाजिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः।
मारूतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः।।
नील मेघाश्रिता विद्युत स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी।।
रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायु-
निर्दाधदोषप्रसराः प्रशान्ताः।
स्थिताहि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्।।
क्वचित् प्रकाशं क्वचित् प्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित्क्वचित् पर्वतसंनिरूद्धं
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य।।
जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः।
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा।।
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियविहीनाः शिखिनः पल्वंगमाः।।
कदम्बसर्जार्जुन कन्दलाढ़्या
वनान्त भूनिर्मधुवारि पूर्णा।
मयूर मत्ताभिरूत प्रनृत्तै-
रापानभूमिप्रतिमा विभाति।।[1]

(1) वा.रा.4/28/3,4,5,8,10,12,15,17,26,27,34

जानकी जीवन में प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण के लिये कवि को उतना अवकाश नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि यहाँ कथा का प्रवाह अति तीव्र है फिर भी स्वतन्त्र एवं अलंकार रूप में प्रकृति के कुछ वर्णन मिलते हैं। वर्षाकाल में उमड़ने वाले बादल हंस, कोकिल, मयूर और कपोतों के नृत्य, पर्वत शिखर से गिरती जलधारा एवं रमणीय सरिता प्रपातों, बावलियों, वृक्षों, कुंजों और पर्वत कन्दराओं की शोभा का निरूपण कवि ने किया है–

यथा प्राप्तकालोऽम्बुदो वृष्टि मेति प्रभो! तावकी धर्म वृद्धिस्तथैव।
हंसकोकिलकीरचातकगीतिकाभिर्नेत्रसौख्यकरैर्मयूरकपोत नृत्यैः।
अद्रिश्रृंगपतज्जलाहतंत्र वाद्यैः किन्न मे सुलभं वनेऽपि सुखं त्रयाणाम्।।
रम्यनिर्झरिणीप्रपातनिपानवापीवृक्षगुल्मलताद्रिरन्ध्रविमण्डिताऽपि।
घनोपरूद्धार्धविधौ प्रियाया विलम्बिकेशावृतचारुवक्त्रम्।
कलापिनां नृत्ययुतां कलापे पर्याकुलं कुन्तल लोल भारम्।।[1]

डा0 जगदीश शर्मा ने वाल्मीकि वर्णित वर्षा ऋतु के सन्दर्भ में लिखा है कि "वाल्मीकि रामायण का वर्षा वर्णन एक व्यापक परिदृश्य के रूप में अंकित हुआ है जिसमें कवि की व्यापक दृष्टि के साथ ही विभिन्न दृश्यों के परस्पर सगुम्फन से परिदृश्य की समग्रता का वोध होता है। वाल्मीकि द्वारा अंकित विभिन्न दृश्य प्रकृति से घनिष्ठ सम्पर्क के सूचक हैं क्योंकि उन्होंने जो दृश्य अंकित किये हैं उनमें प्रकृति व्यापार की सूक्ष्म लीलाएँ और रमणीय दृश्य ही नही अत्यन्त दुर्लभ चित्र भी दिखाई देते हैं जिन्हें प्रकृति साक्षात्कार से वंचित कवि की कल्पना कदाचित ही अंकित कर पाती।"[2]

इसी प्रकार शरद ऋतु के वर्णन में आकाश की स्वच्छता, उत्फुल्ल कमलों की शोभा, धेनु समूहों के मध्य खड़े सांडों का निनाद, कमलाच्छादित सरोवरों में हाथियों का जलपान और हंस सारस कलरव का जीवन्त चित्रण हुआ है–

पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम्।
शारदीं रजनीं चैवं दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम्।।
दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम्।
सारसारावसंघुष्टं विललापर्तया गिरा।।

---

(1) जा.जी.1/18/1,11/33,42/1,13/19 (2) वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस सौन्दर्य विधान का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ–265

सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी।
याऽऽश्रमे रमते वाला साद्य मे रमते कथम्।।
शरद् गुणाप्यायित रूपशोभाः
प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थितांगाः।
मदोत्कटाः सम्प्रति युद्धलुब्धा
वृषा गवां मध्यगता नदन्ति।।[1]

ऋतुराज वसन्त वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों के परिवर्तन, खेतों की नयी शोभा, मनुष्यों की दिनचर्या में परिवर्तन, पशु पक्षियों आदि के क्रीड़ाओं के कारण मन पर पड़े हुये विभिन्न प्रभावों का चित्रांकन हुआ है-

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम।।[2]
अशोकस्तबकांगारः षट्पदस्वननिः स्वनः।
मा हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।।

जानकी जीवनम् में आम की बौर से गदराये वृक्ष, सरसों से सजे संवरे महिमा मण्डित बसन्त का चित्रांकन राम-सीता के होली खेलने के उपलक्ष्य में हुआ है-

यदा जातु वसन्ततौं फाल्गुने धृतवैभवे।
माकन्दमंजरी रम्ये पीतसर्षपमण्डिते।।

त एव द्रुमास्ताश्च शाखास्त एव क्षुपास्ताश्च वल्ल्यो न किंचिद द्वितीयम्।
·तथाप्यगते भाति नव्या वनाली बसन्ते यथा राजधानी तथैव।।[3]

ऋतु वर्णन की दृष्टि से उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर यह कहा जा सकता है कि वर्षा ऋतु में नदियों का उद्दाम वेग, मेघ गर्जन, विद्युत नर्तन, तालाबों का गौरव, चतुर्दिक हरियाली तो वसन्त ऋतु में कमलों की शोभा के साथ उन्मद मधुप गुंजार, तो हेमन्त ऋतु के वर्णन में कवि वाल्मीकि ने पशुओं की क्रियाओं का सूक्ष्म चित्रांकन किया है जिसमें सूर्य का दक्षिणायन होना अत्यधिक शीत विभावरी वर्धन, क्रौंच कलरव, ओस की बूंदों से भीगी घास, प्यासे हाथी का जल स्पर्श कर सूंड का प्रतिसंघार, वाष्पाच्छादित सरिताओं का चित्रांकन हुआ है-

(1) वा.रा.4/30/2, 5,7,38 (2) 4/1 22,29 (3) 9 87,10 22

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम्।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः।।
निवृत्ताकाशशयनाः पुण्यनीता हिमारूणाः।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम्।।
प्रकृत्या शीतल स्पर्शो विद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः।।
अवश्याय निपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरूणातपा।।
स्पृशन् सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रति संहरते करम्।।
वाष्प संछन्दसलिला रूतविज्ञेयसारसाः।
हिमार्दवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्।।[1]

कहना नहीं होगा कि प्रकृति का जितना सूक्ष्म पर्यवेक्षण वाल्मीकि ने किया है उतना राजेन्द्र मिश्र ने नहीं किया। वाल्मीकि ने प्रकृति के रमणीय दृश्यों उससे प्रभावित कृषि एवं कृषकों की चेतना, मोहक प्रकृति परिवर्तन ऋतु वर्णन के परिप्रेक्ष्य में आकाशीय, पार्थिव, जलीय जीव-जन्तुओं एवं वस्तुओं में पड़े हुये प्रभावों का संश्लिष्ट एवं प्रभावोत्पादक चित्रांकन किया है ऐसा लगता है कि रामकथा पात्रों के साथ ही कवियों ने मनोहृदय से प्रकृति के साहचर्य का अनुभव किया है। वाल्मीकि ने पात्र के भाव जगत तथा दृश्य जगत वैशिष्ट्य का उन्मुक्त चित्रांकन किया है जिसका जानकी जीवनम् में सर्वथा अभाव है। वाल्मीकि के चित्र ऋतुओं के गत्यात्मक जीवन से सम्बन्धित चित्र हैं साथ ही उद्दीपन विभाव के रूप में भी यह चित्र अत्यन्त प्रभावशाली हैं। डा0 राम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है-"वाल्मीकि रामायण में प्रकृति विशाल और विज्ञात, सूक्ष्म और सुकुमार, कोमल और कठोर, स्निग्ध और कर्कश, नैसर्गिक एवं कृत्रिम सहज एवं चमत्कारिक सभी प्रकार के चित्र देखने को मिलते हैं। ये ऋतु वर्णन संगीतमय चित्र से प्रतीत होते हैं। मानव प्रकृति के मंच पर नवीन ऋतु के साथ पट परिवर्तन सा होता है। कवि की भावुकता के साथ उसके काव्य में अलंकारण और संगीतमयता की वृद्धि दिखाई पड़ती है।"[2]

---

(1) वा.रा.3/16 9,12,15,20,21,24 (2) वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन पृष्ठ-295

सरोवर वर्णन

रामकथा से सम्बन्धित एक ही सरोवर मुख्य है जिसका नाम पम्पा है। वाल्मीकि ने सरोवर के निर्मल जल, सद्यः विकसित कमल उसके तट पर लतावृक्षों के नाम का वर्णन परिगणनात्मक एवं सश्लिष्ट शैली में किया है-

वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासलिल गोचराः।
नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः शुभाः।।
पम्पायामिपुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान् हतान्।
निस्त्वक्पपक्षानयस्तप्तानकृशानैककण्टकान्।।
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः सम्प्रदास्यति।
भृशं तान् खादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसंचये।।
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम्।
उद्धृत्य स तदक्लिष्टं रूप्यस्फटिकसं निभम्।।[1]

आश्रम वर्णन

वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति घर-द्वार का परित्याग कर जंगल में आश्रम वनाकर रहता था। वाल्मीकि रामायण में वशिष्ठ, गौतम, भरद्वाज, अत्रि, अगस्त्य, मतंग, विश्वामित्र आदि ऋषियों के आश्रमों का उल्लेख है। जानकी जीवन में वशिष्ठ और विश्वामित्र के आश्रमों का वर्णन है दोनो कवियों ने व्यास समास शैली में आश्रमों की शोभा, ऋषि की तपश्चर्या उसके प्रभाव का चित्रांकन किया है। एक दो उदाहरण द्रष्ट्व्य है-वाल्मीकि में चित्रित भरद्वाज आश्रम का वर्णन इस प्रकार है-

प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्।
भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा।।
चिरस्य खलु काकुत्स्य पश्याम्हमुपगतम्।
श्रुतं तव मया चैव विवासमकारणम्।।[2]

राजेन्द्र मिश्र ने जानकी जीवनम नें वशिष्ठ आश्रम का उल्लेख करते हुये यज्ञाग्निजन्य धूम्रविम्ब, पुरोडास सुरभित वायु, योग सिद्धि सम्पन्न ऋषि तथा अनियन्त्रित मनोवृत्ति वाले

(1) वा.रा.3/73/13,15,16,17 (2) 2 19 20,21

कोकिलो का उल्लेख किया है-

मखोत्थधूमावलिसम्परीतं ज्वलत्पुरोडशलसत्समीरम्।
विलोल खेलोपनत प्रबन्धैर्महर्षिभिश्चार्थित योगचर्यम्।।
सुपक्व जम्बूफलरक्त नेत्रैः पिकैर्मदोन्मत्तमनोभिराप्तम्।
वसन्त एवालधु याचमानैर्गृहीकृतं चातकपक्षिभिः कम्।।[1]

शैल वर्णन

वाल्मीकि रामायण में शैल, भूधर, अचल आदि के रूप में यदि सामान्य पर्वतों का वर्णन किया है तो सुमेरू, मन्दर, महेन्द्र, हिमवान और आलोच्य दोनों कवियों ने चित्रकूट और उस पर स्थित विविध वृक्ष-लताओं, पशु-पक्षी, रत्न, ओषधियों का वर्णन विस्तृत रूप में किया है। इसी प्रकार प्रस्रवण गिरि तथा सुमेरू पर्वत का वर्णन भी दोनों कवियों ने समान रूप से किया है।

चित्रकूट—अचलेन्द्र चित्रकूट की विशेषताओं का अत्यन्त मनोहरी तथा विस्तृत वर्णन वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार किया गया है-

न राज्यभ्रंशनं भद्रे! न सुहृद्भिर्विना भवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीममिमं गिरिः।।[2]
यदीह शरदोऽनेकांस्त्वया सार्धमनिन्दिते।
लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति।।
भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः।
चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः।।

जानकी जीवनम् में चित्रकूट और कामदगिरि उसमें स्थित पुष्पों के गन्धभार से बोझिल, धनसार के समान शीतल, पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन नेत्रों के समक्ष बिम्व उपस्थित करने में सर्वथा समर्थ है-

दुष्प्रवेशवनं लताग्रहकुंजरम्यं पुष्पगन्धभारांचितं घनसार शीतम्।
पक्षिभिर्मृदुकूजितैः पशुभिश्च नद्धं मैथिली प्रकृतिप्रियां विपुलं ननन्दा।।[3]

प्रस्रवण गिरि—आलोच्य दोनों कवियों ने प्रस्रवण गिरि की रमणीयता का प्रतिपादन

(1) जा.जी.1/12,13 (2) वा.रा.2/94 3,15,23 (3) जा.जी.11 5

करते हुये यह बताया है कि राम ने इस पर्वत की गुफा को अपने निवास के लिये चुना था-

गगनधुरि विलग्नः शान्तकान्तारकान्तो मुखरसलिलपातोभूरिंगद्विहंग।
गिरिरयमति रम्यः प्रस्रवाख्यो विशालो ह्यधिदरि घनकालो यत्र सीते व्यतीतः।।[1]

एषः फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते।।[2]

नदी वर्णन

रामकथा में गंगा-यमुना, तमसा, सरयू, मन्दाकिनी और गोदावरी का उल्लेख है। सरयु तट का कल-कल निनाद, गंगा (मन्दाकिनी) का साहचर्य वाल्मीकि में सजीव चित्रित हुआ है-

तौ प्रयान्तौ महावीर्यो दिव्यां त्रिपथगां नदीम्।
ददृशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगम शुभे।।[3]

राजेन्द्र मिश्र ने प्रवाहमयी सरयू तथा चन्दन सुरभि से आवेष्टित हवाओं का वर्णन सरयु प्रसंग में किया है। यद्यपि उन्होंने त्रिपथगा का भी उल्लेख मात्र किया है जो अलंकृत रूप में है-

त्रिपथगेव सरिन्निकरान्विता गगनमेव शचीन्द्रधनुर्युता।[4]

पुष्यैर्जलैर्गतिमती सरयूरयोध्यां
पादाम्बुज प्रणयिनी नितरां सिषेव।
देवो ववर्ष सलिलं समये निकामं
नित्यं ववौ मलयजान्वितगन्धवाहः।।[5]

राम के वन मार्ग में पड़ने वाली स्यंदिका, वेदश्रुति और गोमती का भी उल्लेख है, जिसके किनारे गौवे विचरण करती थी और जो शीतल जल का स्रोत बहाती थी-

ततो वेदश्रुति नाम शिववारिवहां नदीम्।
गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम्।
गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम्।।[6]

इसी प्रकार जानकी जीवनम् में गंगा-यमुना का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

शर्वरीं समतीत्य ते तमसा तटान्ते शृंगवेरपुरे प्रतीर्य च जह्नुकन्याम्।
पूतयामुनगांग संगमनेऽभिषिक्ता भरद्वाजमुपाश्रिताः पदवन्दनायै।।[7]

---

(1) जा.जी.16 31 (2) वा.रा.4/28/9 (3) वा.रा.1 23 5 (4) जा.जी.6/18/1 (5) वही 4/5 (6) वा.रा.2 49 30 1,1?
(7) जा.जी.11 2

जानकी जीवनम् में सीता, हरण जन्य विपत्ति का निवेदन गोदावरी से करती है-

देवता विहगा लतास्तरवो न गोदे! जानकी विपदं प्रवक्त समेत्य यूयम्।
राघवं दयितं परं हृदयेश्वरम्भे बोधयेध्वमिदं दशास्यनृशंस कर्म।।[1]

नगर वर्णन

रामकथा में मुख्य रूप से अयोध्या, मिथिला, किष्किन्धा, एवं लंका पुरियों का आधिकारिक कथा से सम्वन्ध है इसके साथ ही प्रासंगिक या उपकथाओं में अनेक जनपदों, नगरों का वर्णन उनके निवासियों इसी परिप्रेक्ष्य में महलों की शोभा का वर्णन प्राकृतिक रूप से किया है कुछ उदाहरण द्रष्ट्व्य हैं-

अयोध्या

वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में ही दशरथ द्वारा सुरक्षित अमरावती के समान वैभव सम्पन्न अयोध्या के नगर, महल, कपाट, निवासियों की शारीरिक शोभा और वैभव का वर्णन किया गया है-

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निशिष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।[2]
अयोध्या नाम नगरी तत्रासल्लिोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्र या पुरी निर्मिता स्वयं।।
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तः पुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः।।
कपाटतोरणवर्ती सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीभूषिता सर्वशिल्पिभिः।।

जानकी जीवन में वधुओं सहित रामादिक भाईयों के प्रवेश के समय अयोध्या की शोभा-सम्पन्नता का सूक्ष्म एवं सजीव चित्रांकन हुआ है[3] जिसमें बाजार, भरी पूरी दुकान, रमणीय सौदा मण्डी, यज्ञशाला, राजमहल, आंगन, मण्डप, सीढ़ी, परकोटा आदि का उल्लेख करके उसके सौन्दर्य का चित्रांकन इस प्रकार किया है-

भोगावती न नागानां द्युसदां नामरावती।
नालका राजराजस्याप्ययोध्यातुल्यतांगता।।[4]

---

(1) जा.जी.11/109 (2) वा.रा.1 5 5,6,8,10 (3) जा.जी.9 5-8 (4) जा.जी.9/9,11

राजधानी रघूणां सा साक्षान्मनुविनिर्मिता।

विच्छिन्तिं न कथं दध्याद्यत्र राजाऽजनन्दनः।।

लंकापुरी

स्वर्णमयी लंका रावण की राजधानी ही नहीं अपितु भौतिक सम्पदा से सम्पन्न सागर वेष्टित ऐसी पुरी है जिसे सूक्ष्म वेशधारी हनुमान जैसे समर्थ वानर ही देख सकते हैं। वाल्मीकि ने पर्वत शिखर पर स्थित लंका और वहाँ प्राप्त होने वाले पुष्पों जलाशयों का इतिवृत्तात्मक रूप में वर्णन किया है-

सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।

प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि।।[1]

प्रियंगन् गन्धपूर्णाश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा।

असनान् कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान्।।

पुष्पभारं निबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि।

पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाद्धूतमस्तान्।।

जानकी जीवनम् में लंका के मणिखचित राज प्रसाद, रक्ताशोक, शुक-सारस, चक्रवाक आदि का चित्रांकन कर लंका का वर्णन किया है-

लसदुन्मदभृंगमण्डिते शतरुपद्रुमवीरुदंच्चिते।

शुकसारस कोककोकिलोरगभुक्चातक हंस मण्डिते।।[2]

स्फुट पार्वण चन्द्र चन्द्रिके सुख सह्यदिति नन्दनातपे।

सुरसौध निपान भूपितेऽकरूण कंकेलिकदम्बनन्दिते।।

सुरसौध निपान भूपितेऽकरूणकंकेलिकदम्बनन्दिते।।

लंका एवं अयोध्या नगर के अतिरिक्त गौण पात्रों से सवन्धित अनेक नगरों का वर्णन वाल्मीकि ने किया है जिसमें वहाँ के भवन एवं प्रासादों की शोभा, मंदिर, गोपुर, नगर निवासियों के क्रियाकलापों का चित्रांकन है ऐसे देशों-नगरों में वत्स, कोसल, श्रृंगवेरपुर, किष्किन्धा, विशालाप्रमुख हैं-

(क) ततः समृद्धांशुभसस्यमालिनः, क्रमेण वत्सान् मुदितानुपागतम्।।[3]

---

(1) वा.रा.5/2.9-11 (2) जा.जी.12/3,4 (3) वा.रा.2/52/101

(ख) ततो धान्यधनोपेतान् दानशीलजनांशिवान्।
अकुतश्चिद्भयान् रम्यांश्चैत्ययूपसभावृतान्।।
उद्यानाम्रवणोपेतान् सम्पन्न सलिलाशयान्।
तुष्टपुष्टजनाकीर्णान् गोकुलाकुलसेवितान्।।
रक्षणीयान् नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषाभिनादितान्।
रथेन पुरूष व्याघ्रः कोसलानत्यवर्तत।।[1]

(ग) तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषाद जात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः।।[2]

(घ) श्रृंगवेरपुरमेत्य सुरनदीं गुहकृपया य ततार।[3]

(ङ.) अथ प्रति समादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात्।।
द्वारस्था हारयस्तत्र महाकाया महाबलाः।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्रांजलयः स्थितः।।[4]

(च) अथ दूरत एव सा पुरी समदर्शि प्रयुतादृमण्डिता।
ध्वजतोरणमन्दुरालयैर्वलभीतुंग विटङ्.ककैर्युता।।
प्रतिबीथि कृताभिषेचना सलिलैश्चन्दनगन्धवासितैः।
सितदीप्रवितान मण्डलैः प्रतिश्रंगारकमंचिच्छविः।।[5]

तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि रामायण में किष्किन्धा, कोसल, राजगृह आदि अनेक पुरियों का उल्लेख हुआ है, यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि इन नगरों के वर्णन में कवि ने इतिवृत्तात्मक शैली का आश्रय लेकर नगरों के शोभा सौन्दर्य के साथ उसकी प्राकृतिक छटा, कृत्रिम बने हुये जलासय उसमें निवास करने वाले पक्षियों का यथार्थ चित्रण किया है। इसमें कवि की यथार्थ दृष्टि के व्यापक फलक का अनुभव सहज ही पाठक को हो जाता है जबकि जानकी जीवन में सीमित कथा के कारण कुछ ही नगरों का वर्णन है जिसमें ऐश्वर्यमयता, सान्द्रता, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का अलंकृत रूप में वर्णन है।

सारांश यह है कि कवि प्रतिपाद्य को विशिष्ट परिवेश में प्रस्तुत करने के लिये मानव

---

(1) वही 2/50/8-10 (2) वही 2/50/33 (3) जा.जी.21/52 (4) वा.रा.4/33/1-2 (5) जा.जी.5/17,18

जगत की तरह काव्य जगत की रचना करता है, इसे हम कवि द्वारा वर्णित काल प्रकृति वर्णन कहते हैं। प्रवन्ध काव्यों में भावुकता, रागात्मकता, सहृदयता और संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण को स्थान दिया जाता है। काव्य में प्रकृति को दो प्रकार से यह स्थान मिलता है-वर्णित वस्तु के अपने सौन्दर्य के कारण दूसरा कवि के वर्णन नैपुण्य, चमत्कार प्रदर्शन तथा अपनी वहुज्ञता निदर्शन हेतु। प्रकृति के वाह्य और अभ्यान्तर वर्णन में जहाँ नाम परिगणन प्रणाली कवि की वहुज्ञता का घोतक है वहीं उसके संश्लिष्ट चित्रण में कवि की कल्पना पाठ्क के समक्ष चाक्षुष् गोचर ऐन्द्रिय विन्दु उपस्थित करती है। वाल्मीकि ने अपना जीवन प्राकृतिक नैसर्गिक रूप से सुन्दर अरण्य प्रदेश में व्यतीत किया होगा क्योंकि गृहीत वस्तु को कन्टेन्ट (विषयवस्तु) तथा फार्म (प्रकाशभंगी) रूप में अपनी कल्पना के वल पर चित्रित किया है इतना ही नही प्रकृति के सौन्दर्य का केवल उसकी आकपर्ण शक्ति, सौकुमार्य, माधुर्य या कोमल रूप का चित्रांकन कर उसी पर निर्भर नहीं रहे अपितु वस्तुओं के वर्णन में विकषर्ण शक्ति या कठोर भयंकर रूप का भी सफल चित्रण किया है। बात यह है कि कभी-कभी कुरूप, वीमत्स, भयप्रद वस्तुओं में भी एक अद्‌भुत आकषर्ण होता है। आलोच्य कवि वाल्मीकि तथा राजेन्द्र मिश्र ने निरीक्षण में सूक्ष्मता, का उपयोग कर प्रकृति के चित्रों को प्रस्तुत किया है। आलम्बन रूप के साथ उद्‌दीपन, आलंकारिक मानव के मनोवेगों में सहानुभूति व्यक्त करने वाली इत्यादि रूपों का चित्रांकन कर शोधकर्त्री ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वाल्मीकि का प्राकृतिक काव्य फलक अत्यन्त विशाल और बहुआयामीय है जिसके रंग अत्यन्त चटक और आकपर्क हैं तो जानकी जीवन में प्राकृतिक चित्रण के कम अवसर हैं फिर भी जो प्राप्य स्थल हैं उनमें आलांकारिकता अधिक है। ऋतु वर्णन में जो स्वाभाविकता वाल्मीकि में दिखाई देती है जानकी जीवन में वह अनुपलब्ध है। कवि वाल्मीकि ने षट्ऋतुओं में से चार ऋतुओं का विस्तृत वर्णन किया है उनमें समग्रता है, सग्रन्थन शैली है ऐसे संश्लिष्ट चित्र ही परवर्ती काव्यों के लिये उपजीव्य वने हैं।

दोनों कवियों ने प्रकृति के अतिरिक्त अन्य वस्तु वर्णनों का उपयोग अपने परिदृश्य को विस्तृत करने के लिये किया है ऐसे वर्णन वाल्मीकि रामायण में बहुत अधिक है। मानव जीवन से सम्बन्धित सामाजिक संस्कार, राजनीतिक दशा, धार्मिक रीति-रिवाज, खान-पान, शृंगार सामग्री सांस्कृतिक तत्व, युद्ध आदि के चित्रांकन वाल्मीकि ने वड़ी कुशलता से किया है।[1]

---

(1) विशेष अध्ययन लिये रामायण कालीन समाज-डा0 शान्ति कुमार नानूराम व्यास दृष्टव्य है।

राजेन्द्र मिश्र ने महाकाव्यों हेतु उल्लखित तत्वों का लक्षणानुधावन हेतु अन्य वस्तुओं का वर्णन किया है। ऐसे वर्णन कहीं पात्र के भावजगत से उद्भूत हैं अथवा कथा के आग्रह या दृश्य जगत के वैशिष्ट्य के कारण इन वस्तुओं का उल्लेख मात्र किया गया है, ऐसे वर्णन सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, प्रातः, दिवस, मध्याह्न, रात्रि, सागर, सरोवर, सरिताएँ, निर्झर, जलचर तथा मानव के निवास सम्बन्धी ग्राम, पुर, जनपद, आश्रम, प्रासाद आदि के वर्णन मिलते हैं। कहना नहीं होगा वाल्मीकि का प्रकृति या अन्य वस्तु वर्णन जितना समृद्ध बहुआयामी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से सम्पन्न है राजेन्द्र मिश्र का चित्रांकन वाल्मीकि की तुलना में साधारण और फीका है इतना अवश्य है कि राजेन्द्र मिश्र ने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों में यत्र-तत्र नवीनता का उपयोग कर सफल ऐन्द्रियगोचर बिम्बों की सर्जना की है।

अध्याय–6

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में अभिव्यंजना शिल्प

भाषा स्वरूप

मनुष्य आदि काल से हृदस्थ भावों या विचारों का सम्प्रेषण प्रतीक, संकेत या व्यक्त भाषा के माध्यम से करता चला आ रहा है। इनमें से भावाभिव्यक्ति का सफल और सशक्त माध्यम भाषा है, यदि यह कहा जाए कि भाव प्राण हैं तो भापा उसका शरीर है। भाषा एक सामाजिक अवस्था और उसकी एक निश्चित प्रक्रिया है इसलिए भाषागत सौन्दर्य तथा उसमें सौकर्य लाने के लिए व्यवस्था लानी पड़ती है। यद्यपि भावनाओं का आवेग और विचारों का झंझावान हृदय को आन्दोलित करता है जिसकी अभिव्यंजना नियमबद्ध भाषा से ही सम्भव होती है। यह भाषा दो रूपों में व्यवहृत की जाती है-दैनिक जीवन के कार्य व्यापारों में चलती भाषा प्रयुक्त होती है इसे हम साधारण भाषा कहते हैं। जो भाषा कलात्मक अभिव्यंजना से युक्त होती है वह काव्य भाषा के पद पर अभिषिक्त होती है। काव्य भाषा का मूल स्रोत देनन्दिन प्रयोग में आने वाली साधारण भाषा ही होती है। किन्तु कवि उसे विशिष्ट या काव्य भाषा बनाने के लिए व्याकरण का बन्धन तो अवश्य स्वीकार करता है किन्तु उसमें विशिष्ट अर्थाभिव्यंजना, वक्रव्यापार, या वैदग्धपूर्ण कथन का समावेश करता है। साहित्यिक भाषा सामान्य जन भाषा से विशिष्ट रूप में प्रयुक्त होती है। कवि को एक ओर व्याकरणगत नियमों के बन्धन को स्वीकार करना पड़ता है तो दूसरी तरफ शब्दों के समाजगत अर्थ का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार काव्य की भाषा में स्थिरता रहती है और सामान्य बोल-चाल की भाषा में गतिमयता। लोक भाषा या जन भाषा में शब्द समूह की प्रधानता होती है। तो काव्य भाषा में शब्द की इकाई के साथ अर्थ सौरस्य का प्राधान्य रहता है। रेनबेलेन ने लिखा है कि–

''कविता की भाषा वोलचाल की भाषा से प्रथक रहती है यह विभेद रुपगत होता है।''[1]

जनभाषा और साहित्यिक भाषा या काव्य भाषा का अन्तर निरूपित करते हुए डा0 शान्ति गुप्त ने लिखा है–कि ''कविता में शब्द तो लोक भाषा के ही होते हैं पर काव्य भाषा का इसमें अपना प्रयोग रहता है। दैनिक जीवन में प्रयुक्त एक शब्द प्रायः एक ही अर्थ देता है

(1) ए हिस्ट्र ऑफ मार्डन क्रिटिसिज्म पृ0-41

पर काव्य भाषा में अनेक अर्थ हो जाते हैं। काव्य भाषा के शब्द नादात्मक, बिम्बात्मक तथा सांकेतिक होते हैं पर साधारण भाषा में यह गुण नहीं मिलते। अपनी लयालकता के कारण जाती है। तीव्र भाविभिव्यक्ति की भाषा स्वतः अलंकार मयी हो जाती है क्योंकि वह साधारण क्षणों की भाषा नहीं है।''[1]

उपर्युक्त विवेचना से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि काव्य भाषा का मूल स्रोत जन भाषा ही है किन्तु विशिष्ट क्षणों के कारण वह उससे भिन्न हो जाती है। श्रेष्ठ साहित्यकार का यह प्रयास रहता है कि वह लोक भाषा के निकट रहे और उसके तत्वों से अनुप्राणित रहे यह बात हम वाल्मीकि के मुख से निःसृत–'मा निषाद' वाले श्लोक से सहज ही समझ सकते है प्राकृतिक सुरम्य परिवेश मे मिथुनरत क्रौंचयुग्म से एक के वध हो जाने पर दूसरे के कारुणिक विलाप से द्रवित कवि का श्लोक जितना भावस्फूर्त और स्वाभाविक है उतना सहज और प्रतीकात्मक भी।

यहाँ हम आलोच्य काव्यों की भाषा स्वरूप का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करेंगे। जिसमें शब्द प्रयोग, संवाद योजना, भावानुकूल भाषा, अर्थाभिव्यंजना की विभिन्न प्रणालियाँ, छन्दगत वैविध्य, रसानुकूल भाषागत प्रयोग और शब्द शक्तियों की दृष्टि से उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। यद्यपि दोनों कवियों की भाषा संस्कृत है तथापि दोनों कवियों के मध्य लम्बा अन्तराल होने के साथ ही कथागत दृष्टि वैभिन्य होते हुये भी भाषा स्वरूप में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। वाल्मीकि की भाषा संप्रेषण प्रधान, प्रश्लिष्ट भाषा है तो राजेन्द्र मिश्र की अलंकृत, लम्बे वाक्य से युक्त संश्लिष्ट भाषा दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि की भाषा में जो नैसर्गिक व्यापार दिखाई पड़ता है। जानकी जीवनम् में उसका अभाव है। प्रकृति के उन्मुक्त या वन्य जीवन के निकट रहने के कारण प्रायः वाल्मीकि की भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रवाहमयी हैं। यत्र-तत्र नैपुण्य प्रदर्शन अवश्य दिखाई पड़ता है। जबकि जानकी जीवनम् में आधुनिक अभिव्यंजना प्रणालीगत प्रभाव परिलक्षित होता है। यहाँ हम अपनी बात संवाद योजना से प्रारम्भ करेंगे।

संवाद योजना

जिस प्रकार जागतिक मनुष्य परस्पर सम्भाषण से अपने भाव एवं विचारों को सम्प्रेषित

---

(1) पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त पृ0-130

करता है। उसी प्रकार साहित्यकार द्वारा निर्मित संसार के पात्र भी हृदयस्थ भावों एवं विचारों को संवादों के ही माध्यम से व्यक्त करता है। इन संवादों के माध्यम से जहाँ एक ओर कथावस्तु और पात्रों का चरित्र चित्रांकित होता है वहीं पात्रस्थ हृदय के सद्-असद् विचारों का ज्ञापन भी होता चलता है। साहित्य शास्त्र में यह शैली प्रत्यक्ष कथन शैली कहलाती है क्योंकि अप्रत्यक्ष कथन में कवि स्वयं वातावरण या पात्र का बर्हिरंग स्वरूप या उसकी आन्तरिक भाव दशा तथा अपने उद्देश्य का वर्णन करता चलता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष कथन के अन्तर्गत आने वाले संवादों से पात्रों की आन्तरिक दशा का भी बोध होता चलता है। संवादों के वर्गीकरण के लिए अनेक आधार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

छोटे संवाद- घटना की तीव्रता या पात्रस्थ मनोदशा की तीव्रता के कारण साहित्यकार छोटे संवादों का आश्रय लेता है। वाल्मीकि रामायण में ऋष्यश्रृंग, पुत्रेष्टि, यज्ञ, विश्वामित्र-याचना, विश्वामित्र-त्रिशंकु, मेनका प्रेम, अयोध्या काण्ड में कैकेयी की वर याचना, लक्ष्मण सन्देश, भरतद्वाज-राम संवाद, सूर्पणखा-लक्ष्मण-राम संवाद से लेकर उत्तर काण्ड में अनेक छोटे संवाद प्रयुक्त हैं। ऋष्यश्रृंग और सुमन्त्रा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

ऋष्यश्रृंगस्तु जमाता पुत्रांस्तव विधास्यति।
सनत्कुमार कथितमेतावद् व्यादूतं मया।।[1]
अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत।
यथर्ण्य श्रृंगस्वानीतो येनापायेन सोच्यताम्।।

इसी प्रकार विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना के समय वृद्धावस्था में प्राप्त पुत्रों के मोह का वर्णन कवि ने संक्षिप्त किन्तु प्रभावी ढंग से किया है जिसमे एक ओर आगत का असम्मान भी न हो और पुत्रों के प्रति आसक्ति भी प्रकट हो जाए-

कथं प्रमाणाः के चैतान् रक्षन्ति मुनिपुंगव।
कथं च प्रतिकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम्।।[2]
मामकैर्वा वलैर्ब्रैह्मन् मया वा कूटयोधिनाम्।
सर्व मे शंस भगवान् कथं तेषां मया रणे।।

इसी प्रकार कामाभिभूत मन अपनी बात अत्यन्त क्षिप्रता से कहना चाहता है। सुन्दरी

(1) वा.रा. 1/9 9,10 (2) वही 1/20 13,14

शूर्पणखा की रति याचना इसका श्रेष्ठ उदाहरण है-

विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव।
अहमेवानुरूपा हे भार्यारूपेण पश्य माम्।।[1]
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षमिष्यामि मानुषीम्।।

राम द्वारा दिया गया उत्तर संक्षिप्त प्रभविष्णु तो है ही उनके एक पत्नी व्रत या सीता के प्रति अनन्य निष्ठा तो व्यक्त ही करता है और निर्लज्जा शूर्पणखा के प्रति विगर्हषा और उपहास भी-

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमान कृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।।[2]
अपूर्वी भार्यया चार्थी तरूणः प्रियदर्शनः।
अनुरूपश्च ते भर्ता रुपस्यास्थ भविष्यति।।
एनं भज विशाललाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम।
असपन्ना वरारोहे मेरूमर्कप्रभा यथा।।

इसी प्रकार जानकी जीवनम् में अनावृष्टि से त्रस्त प्रजा को देख द्रवीभूत राजा आवेश के कारण जिस अलंकृत भाषा में अपने गुरु से उपाय पूछता है उससे कथा का विकास, राजा का चरित्र और उसके पाण्डित्य का वोध प्रदर्शित होता है-

दुरन्त दुर्भिक्षनिदाघदाहो दहत्यजस्रं जनतालताजीम्।
न भत्यमारान इवाकेशी विधातुमीशः प्रभवामि तत्याः।।[3]
वसन्त हे पंचशरद्विितीय प्रभुर्भवानेव ममास्ति मान्यः।
न मे यथा स्याच्चरितं विलीनं कलंक पंके क्रितयां तदेव।।

मुग्धा किशोरी की आँखों में अचानक आ वसने वाले प्रथम पुरूष के प्रति हृदयाकर्षण और जड़ता जहाँ उसे मध्या बनाती है वहीं पुरुष का प्रणय निवेदन सीमित होते हुए भी उसके लिए अपार हर्ष का द्योतक होता है। पुष्प वाटिका प्रसंग में सीता-राम के प्रथम अयोग दर्शन में राम का सीमित शब्दों के प्रयोग में जहाँ राम की व्याकुलता, प्रणयाभिलाषा प्रकट हुई है।

(1) वही 3/17/20,26 (2) वही 3.18.3-5 (3) जा.जी. 1/20,21

उस समय लेखक शब्द कथन का आश्रय न लेकर सात्विक और कायिक अनुभावों से अपने मनोभावों को व्यक्त किया। राम का कथन और सीता का प्रत्युत्तर अत्यन्त छोटे होते हुए भी चटुल और प्रभविष्णु है-

भवतु गच्छ न ते पथि पोडये सममि मन्त्र्य शनैरिति शं ययौ।

X X X X X X X X X

अपि दया च मयि स्मर सुन्दर! ननु सखीनि करैरूपहस्यते।।[1]

प्रश्नोत्तर के रूप में एक-एक वाक्य के छोटे संवाद वयः सन्धि नायिका को हार्दिक सुख ही नहीं उत्पन्न करते। हृदय जहाँ हाँ कहने वाला है वाणी वहाँ निषेध करती है। इस विपर्यास में भावों की समकुलता, मनोवेगों की तीव्रता, प्रेम की प्रथम अनुभूति आगे चलकर अनन्य निष्ठा में परिवर्तित हुई है। दोनों के मध्य मर्यादा की रेखा खींची है और कवि ने अत्यन्त सीमित और संयत शब्दों के द्वारा निषेधात्मक वाक्य से सीता के तीव्र गाढ़ानुबन्ध को प्रकट किया है।

दीर्घ संवाद— इसके अन्तर्गत लक्ष्मण-परशुराम, दशरथ-कैकेयी, हनुमान-रावण, अंगद-रावण जैसे स्थल आयेंगे जिसमें वक्ता बड़ी देर तक अपनी विपिक्षा व्यक्त करता है वात यह है कि विपरीत भावों के कारण वक्ता का हृदयावेश अत्यन्त विस्तृत हो जाता है जिसके कारण वह अपने तर्क, विचार या मनोभावों को देर तक व्यक्त करता है। कुछ उदाहरण आलोच्य काव्यों से द्रष्टव्य हैं-धनुर्भंग पश्चात हर्ष, हास और आनन्दोदधि में निमग्न बारातियों के समक्ष अचानक परशुराम के आगमन से सेना में भय, त्रास और आतंक छा गया ऐसे समय दशरथ तक एक तरफ परशुराम से भयभीत भी हैं तो दूसरी तरफ पुत्र आसक्ति के कारण अभय की आशंका में दीर्घ संवाद प्रयुक्त करते हैं-

क्षत्ररोषात् प्रशान्नस्त्वं व्रह्मणश्च महातपाः।
बलानां मम पुत्राणाम् भयं दातुमर्हसि।।[2]
भार्गवाणां कुले जातः स्वाध्याय व्रतशालिनाम्।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्रतिक्षप्त वानसि।।
स त्वं धर्मपरो भूत्वा कश्यपाय वसुंधराम्।
दत्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृत केतनः।।

---

(1) वही 6/58 2, 61/1 (2) वा.रा. 1/75/6-10

मम सर्वविनाशाय सम्प्राप्तस्त्वं महामुने।
न चैकस्मिन् हते राम सर्वे जीवामहे वयम्।।
बुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान्।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रामेवाभ्यभाषत।।

इसी प्रकार कैकेयी वर याचना प्रसंग में सरला हृदया कैकेयी की मानसिक दुश्चिन्ता आवेश, प्रेमी किन्तु राजा पर स्वत्व का अधिकार, राजा दशरथ की कामुकता भरी प्रणय याचना, प्रवोध ऐसे भाव हैं। जिन्हें दीर्घ संवादों से व्यक्त किया जा सकता है-

न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम्।
देवि केनाभियुक्तासि केन वासि विमानिता।।[1]
यदिदं मम् दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु।
भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याण चेतसि।।
भूतोपहतचित्तेव मम चित्तप्रूभायिनि।
सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वमभि तुष्टाश्च सर्वशः।।
सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनी।
कस्य वापि प्रियं कार्ये केन वा विप्रियं कृतम्।।

इसी प्रकार रावण-हनुमान संवाद में हनुमान के दुर्धर्ष रूप को देख रावण आशंका ग्रस्त हो जाता है। वाल्मीकि ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के माध्यम से रावण द्वारा हनुमान के रहस्य को जानने का प्रयत्न इस प्रकार किया है। देखने में छोटा किन्तु कार्य में असाधारण हनुमान के प्रति रावण न तो कठोर हो पा रहा न ही उसके साथ कोमलता का व्यवहार कर पा रहा। ऐसी दुविधाजनक स्थिति का आकलन वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है-

यदि तावत् त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम्।
तत्त्वमाश्व्यति मा ते भूद् भयं वानर मोक्ष्यसे।।[2]
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च।
चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीभिमाम्।।
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकांक्षिणा।
नहि ते वानरं तेजो रूप मात्रं तु वानरम्।।

---

(1) वही 2/10/28-31 (2) वही 5/50 8-12

तत्त्वतः कथय स्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम्।।
अथवा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये।
एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम्।।

मनोवैज्ञानिक 'एलिस हैविलक' की यह धारणा है कि काम, क्रोध, उत्साह, भक्ति (प्रभु प्रेम) आदि भावनाएँ हृदय को अत्यन्त तीव्रता से उद्वेलित करती हैं जिनकी विवृत्ति देर तक होती है। सम्भवतः जानकी जीवनम् में प्रेमानुभूति की विवृत्ति के समय राम का लक्ष्मण से कथन इसी बात की पुष्टि करता है। एक तरफ रघुवंशियों का विश्व प्रसिद्ध इन्द्रिय निग्रह-आत्म संयम तो दूसरी तरफ प्रथम काम भाव का उद्दाम आवेग ऐसी दुविधा मयी परिस्थिति में राम समझ नहीं पा रहे कि क्या करणीय-अकरणीय है, वह लक्ष्मण से कहते हैं-

कुशिकनन्दनशंसित कल्पना त्रिदशरूपवतीप्रतियातना।
इयमसौ प्रविभाति विदेहजा नयनयोर्मम कम्रकनीनिका।।[1]
सुभग! किन्तु विलोक्य तनीयसीं स्फुरतिबाहुरयम्भम दक्षिणः।
शकुनसूचितभाग्यमहोदयो भवति नैव वृथेति विनिश्चितम्।।
कथय वत्स! हृदि प्रणयोर्मिभिः किमिवरिंगणमाशु विधीयते।
न खलु कच्चिदियं सुखचन्द्रिका भवति कारणमस्य यथोचितम्।।
किमु निपीय दृशैव सुवासिनीं जनकजामयि लक्ष्मण! साम्प्रतम्।
स्मृतभान्त रसंगत बन्धनोऽयमहमद्य मनोभवमाश्रये।।
लघु तृणं प्रतिकूलदिशं वृजेत् पवनघट्टनयाऽपि खलीकृतम्।
सुदृढ़ चित्तमहो रघुवंशिनां न खलु किन्तु विसंवदति श्रियाम्।।

यद्यपि संवाद योजना नाटक का प्रमुख तत्व होता है किन्तु कवि रचित कथा प्रधान पात्र भी संवादों से ही परिस्थिति का चित्रांकन करते हैं। जानकी जीवनम् में सीता निर्वासन जैसी विषम परिस्थिति में अयोध्या नर-नारियों का प्रबोधन न तो डाँट-फटकार का हो सकता था, न ही राम द्वारा सीता की पवित्रता सम्बन्धी किसी शपथ या सौगन्ध से काम चल सकता था, ऐसे अवसर पर वीतरागी, ब्रह्मर्षि, सर्वपूज्य, सर्वमान्य वशिष्ठ का दीर्घ अभिभाषण ही

(1) जा.जी. 6 33-27

उनकी शंका का निवारण कर सकता था और राजेन्द्र मिश्र ने इस अभिभाषण को तर्क, विज्ञान, सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों तथा समसामयिक परिस्थितियों के वर्णन से ही पुरावासियों के मेघ संकुल हृदय में सतःशम्पा का उपयोग कर बादलों को विदीर्ण किया है-

अहो स रामः किमुमर्त्यं एव युष्मादृशः संशयितात्मशक्तिः ?
अपूर्वकर्मा न च किं स आस्ते आयोध्यकाः! पृच्छतमानसानि।।
मत्स्यादिनं यो गुहमंकपाल्यां संस्कारहीनं कृतवान् सहर्षम्।
स्वसौहृदे तं नियुयोज सद्यः स राघवः किंमनुजों न देवः ?।।[1]
जटायुषं तातसखं वनान्ते सीतार्थमुत्सृष्टशरीर जीवम्।
ददाह तं योऽधिचित्तिं सुतीयन् गृद्ध्रं स रामः किमहो मनुष्यः ?।।
प्रेम्वाशबर्या वशगो जघास यो दण्डकायां बदरीफलानि।
स्वादावबोधाय तथैव पूर्वं भुक्तानि रामः किमसौ मनुष्य ?।।
जानन्नपि प्रीततभां स्वभार्यां चरित्रशुद्धां महितामनन्याम्।
ज्योत्स्नानिभां राघवपूर्णचन्द्रस्तत्याज तां लोक समक्षमेव।।

चरित्र चित्रण बताने वाले संवाद–इसके अन्तर्गत वह संवाद आते हैं जिनके माध्यम से किसी पात्र के चित्रण के किसी न किसी पक्ष को उजागर किया जाता है। ऐसे संवाद जिनसे पात्र स्वयं अथवा दूसरे के चरित्रगत विशेषताओं का उल्लेख करता है। वाल्मीकि रामायण में मेनका -विश्वामित्र, लक्ष्मण-परशुराम, शूर्पणखा-राम, अंगद-हनुमान तथा उत्तर काण्ड के कथावस्तु सम्बन्धी अनेक संवाद चरित्र चित्रित करने वाले संवाद हैं। एकाद्र उदाहरण दृष्टव्य हैं विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा रम्भा से आग्रह करने पर रम्भा विश्वामित्र के क्रोधी स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त करती है-

अयं सुरपते घोरो विश्वामित्रो महामुनिः।
क्रोधमुत्स्रक्ष्यते घोरंमयि देव न संशयः।।[2]
ततो हि मे भयं देव प्रसादं कर्तुमर्हसि।
एवमुक्तस्तया राम सभयं भीतया तदा।।

(1) वही 18 29-33 (2) वा.रा. 1/64 3,4

इसी प्रकार राम के समक्ष हनुमान द्वारा सीता के सतीत्व और ग्रहदशा का निरूपण उनके तेजस्वी रूप को इस प्रकार कवि ने व्यक्त किया है-

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वरामागता।।[1]

इति माम् व्रवीत् सीता कृशांगी धर्मचारिणी।
रावणान्तः पुरे रूद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचनः।।

जानकी जीवनम् में कवि द्वारा वर्णित कथावस्तु का आधिक्य है अतः पात्रगत संवाद कम ही दिखाई पड़ते हैं फिर भी चरित्र-चित्रण करने वाले संवादों की एक-दो झलक दर्शनीय है-वरयाचना के प्रसंग में कैकेयी का उपालम्भ जहाँ एक ओर कैकेयी के क्रोध को व्यक्त करता है वहीं दूसरी ओर दशरथ के कामी रूप की भी व्यंजना करता है-

व्यालोकोपचारैरत्लं कोशलेश प्रभो! नाहमस्मि प्रिया बल्लभाऽसौ।
गतान्येव मे तानि दीप्तद्धिनानि मदायत्तमासीद्यदा मानसं ते।।[2]

मनोध्वंसिनी बुद्धिरासीज्जरायां गतासापि हस्तद्वयेपट्टशशङ्कयाः।
यदीयस्सुतो यौवराज्यं भुनक्ति प्रभो! क्षीरमक्षीव दूरीकृताऽहम्।।

नाटकीय संवाद– नाट्कीयता रूपक या नाटक का प्राणतत्त्व है इसके अन्तर्गत पात्र क्रिया-व्यवहार करता हुआ ऐसे संवादों का उच्चारण करता है जिसके आरोह-अवरोह में स्वतः नाट्कीयता उत्पन्न हो जाती है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार के संवादों के अनेक उदाहरण हैं-हनुमान-रावण संवाद, सीता का पृथ्वी प्रवेश ऐसे ही स्थल हैं जिनमें भावावेश, गतिशीलता, सत्वरता और पात्रों की कायिक क्रियाओं का वर्णन कवि ने किया है। परशुराम-राम संवाद में वैष्णव धनुष के प्रत्यंचा चढ़ाने के समय राम का कथन और धनुष में बाण चढ़ाकर प्रत्यंचा खींचने में जो नाट्कीयता दिखाई पड़ती है उसको देखकर परशुराम हतप्रभ हो जाते हैं-

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्।।[3]

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम्।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः।।

---

(1) वा.रा. 5 65/25,26 (2) जा.जी. 10/57,58 (3) वा.रा. 1.76/3-5

आरोप्य सघन् रामः शरं सज्यं चकार ह।

जामदग्न्यं ततो रामं रामः कुद्धोऽब्रवीद्दिम्।।

सीता के पृथ्वी प्रवेश के समय घटना व्यापार का चित्रांकन कवि ने इस प्रकार किया है जिसमें एक ओर सीता का चरित्र तो दूसरी ओर आश्चर्य व्यक्त करने वाले सिहांसन का प्राकट्य और देवताओं द्वारा पुष्प वर्षा में अपूर्व नाटकीयता दिखाई देती है-

यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्भि रामात् परं न च।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातु मर्हति।।[1]

ध्रियमाण शिरोभिस्तु नारौरमित विक्रमैः।

दिव्यं दिव्येन वपुपा दिव्यरत्नविभूषितैः।।

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।

स्वगतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्।।

तामासनगतां द्वष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्।

पुष्पदृष्टिरविच्छन्ना दिव्या सीतामवाकिरत्।।

जानकी जीवन में प्रयुक्त संवादों के सम्बन्ध में यह पहले ही कहा जा चुका है कि इनमें संवादों का अभाव है किन्तु नाटकीय संवाद अत्यन्त छोटे-सरल, कौतुहलवर्धक है। राम, सीता, लक्ष्मण आदि के गार्हस्थिक जीवन की कुछ झांकियों में कवि ने नाट्ककारों द्वारा प्रयुक्त नाट्कीय संवादों का प्रयोग किया है। प्रिया का समीप्य चाहने वाले राम द्वारा कौशल्या से सीता के प्रति उपालम्भ बनावटी क्रोध का प्रदर्शन करती हुई सीता का कथन तथा भाभियों द्वारा लक्ष्मण को विरूप कर होलिका आनन्द उठाने के वर्णन में लक्ष्मण को विरूप होलिका आनन्द उठाने के वर्णन में कवि ने सचमुच ही नाटकीयता की चरम सीमा प्रदर्शित की है-

पश्याम्व! वधुकेयन्ते मां दुनोति कियच्चिरम्।

सर्वाणि वस्तुजातानि गोपयति ममालये।।[2]

तद्भणाम्व! धनुर्पाणं शीघ्रमेव ददा।

सुद्धदो मां प्रतीक्षन्ते मृगया व्यवसायिनः।।

शरासनं ग्रहाणेदं यदर्थमस्मि विध्निता।

पुनः पुनः भणन्त्येवं कान्तं पूर्ण मनोरथम्।।

---

(1) वा.रा. 7.97.16,18,19,20 (2) जा.जी. 9/50,51,54,95

गच्छ लक्ष्मण् शालायां निजां पश्य मुखच्छविम्।
दर्पणे कृतसंस्कारे लप्स्यसे परमं सुखम्।।

कहना नहीं होगा कि इन संवादों के माध्यम से शोधकर्त्री यह उपपत्ति स्थापित करना चाहती है कि कवि जब स्वतः अपनी बात कहता है तो उसमें भाषा के प्रति सजगता निश्चित रूप चेतन या अचेतन मन में बनी रहती है किन्तु संवादों के समय उसे पात्रानुकूलता, उसकी शिक्षा, संस्कार, परिस्थिति और चरित्र चित्रण के लिए तद्नुकूल भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। इन संवादों के उदाहरण से यह निष्कर्ष सहज रूप से निकाला जा सकता है कि कवि ने संवादों के रूप में भाषा के जिस स्वरूप का प्रयोग किया है उसमें कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। छोटे-बड़े चरित्र चित्रण करने वाले आवेश प्रधान प्रयुत्पन्न मतित्त्व प्रभविष्णु संवादों के प्रयोग में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। दूसरा तथ्य जो सामने उभरकर आया है वह पात्रानुकूल भाषा इसके माध्यम से कवि ने लघु या दीर्घ समासों का प्रयोग किया है। वाल्मीकि का कथा फलक अत्यन्त व्यापक और उसका आकार विशालकाय है। मूलकथा के साथ ही उसमें अनेक प्रासंगिक और अवान्तर पात्र सम्बन्धी घटनाओं का प्रचुर प्रयोग है अतः संवादों की दृष्टि से यह काव्य भव्य प्रथित एवं ग्रथित तो है ही साथ ही इनके माध्यम से संवाद सम्वन्धी अनेक सिद्धान्तों या शास्त्रीय नियमों की रचना की जा सकती है जवकि जानकी जीवन का लघुकाय काव्य है। घटना प्रवाह कवि द्वारा वर्णित है इस कारण प्रत्यक्ष नाटकीयता के अवसर बहुत कम ही हैं फिर भी छोटे, सरल, चटुल, क्रिया प्रधान नाट्कों का सार्थक रूप में प्रयोग हुआ है।

शैली

यहाँ शैली का वह अर्थ नहीं लिया जिसे भारतीय काव्यशास्त्र में रीति या शब्दों के प्रयोग के कारण नामकरण किया जाता है। यहाँ हम कथाप्रवाह, वर्णन पद्धति और वाक्य विन्यास की दृष्टि से आलोच्य काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं।

1. विवरण प्रधान अभिधारक शैली—महाकाव्यों में कथा को सामान्य गति देने के लिए कवि प्रायः इसी शैली का अधिक आश्रय लेता है जिसमें अभिधा प्रधान वाक्यों का सरल रूप, में प्रयोग करता है न तो यहाँ वक्र व्यापार जन्य काव्यात्मकता होती है न ही विदग्धतापूर्ण भणिति दिखाई पड़ती है। कथा पात्र के गुणानुकीर्तन या परिवेश चित्रांकन में

इस शैली का अत्यन्त उपयोग किया जाता है। वाल्मीकि की कथा राजपरिवार के अन्तः महल से लेकर ग्राम, उपवन, अरण्य और एक विस्तृत क्षेत्र में फैली है अतः कवि ने इस शैली का पुष्कल और विविध रूप में प्रयोग किया है। एक-दो उदाहरण दृष्टव्य हैं-काव्य के प्रारम्भ में ही अयोध्या वर्णन, भगीरथ की तपस्या, धनुर्भंग-स्वयंवर सभा, राम-विवाह, वन-गमन से लेकर अनेक प्रासंगिक कथाओं में इसी अभिधा शैली के रूप दिखाई देते हैं जैसे-बालकाण्ड के प्रारम्भ में नारद प्रोक्त रामकथा के संक्षिप्त वर्णन में यह शैली इस प्रकार दिखाई पड़ती है-

राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन सुतम्।
गते तु तस्मिन भरतो वशिष्ठ प्रमुखैर्द्विजैः।।[1]
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद् राज्यं महाबलः।
स जगाम वनं वीरो रामपाद प्रसादकः।।
गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम्।
अयाचद् भ्रातरं रामभार्यभाव पुरस्कृतः।।

कथा के साथ ही नगर, आश्रय, वहाँ के निवासियों के रहन-सहन आदि के वर्णन में भी कहीं छोटे, कहीं बड़े वाक्यों का प्रयोग अत्यन्त सरल भाषा में कवि ने किया है-

सर्वा पूर्वामियं येषामसीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्।।[2]
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः।
षष्टिपुत्र सहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्।।

कहीं-कहीं वाक्य विन्यास अत्यन्त लम्बे, कृदन्त या तद्धितान्त प्रत्ययों का प्रयोग भी इस शैली के अन्तर्गत कवि ने किया है-

गंगायाश्चापि संतारं भरद्वाजस्य दर्शनम्।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञानच्चित्रकूटस्य दर्शनम्।।[3]
वास्तुकर्म निवेशं च भरतागमनं तथा।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिल क्रिया।।

---

1 वा.रा. 1 1 33,34 35 (2) वही 1/5/1,2 (3) वही 1 3 15-17

इस शैली का अत्यन्त उपयोग किया जाता है। वाल्मीकि की कथा राजपरिवार के अन्तः महल से लेकर ग्राम, उपवन, अरण्य और एक विस्तृत क्षेत्र में फैली है अतः कवि ने इस शैली का पुष्कल और विविध रूप में प्रयोग किया है। एक-दो उदाहरण दृष्टव्य हैं-काव्य के प्रारम्भ में ही अयोध्या वर्णन, भगीरथ की तपस्या, धनुर्भंग-स्वयंवर सभा, राम-विवाह, वन-गमन से लेकर अनेक प्रासंगिक कथाओं में इसी अभिधा शैली के रूप दिखाई देते हैं जैसे-बालकाण्ड के प्रारम्भ में नारद प्रोक्त रामकथा के संक्षिप्त वर्णन में यह शैली इस प्रकार दिखाई पड़ती है-

राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन सुतम्।
गते तु तस्मिन भरतो वशिष्ठ प्रमुखैर्द्विजैः।।[1]
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद् राज्यं महाबलः।
स जगाम वनं वीरो रामपाद प्रसादकः।।
गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम्।
अयाचद् भ्रातरं रामभार्यभाव पुरस्कृतः।।

कथा के साथ ही नगर, आश्रय, वहाँ के निवासियों के रहन-सहन आदि के वर्णन में भी कहीं छोटे, कहीं बड़े वाक्यों का प्रयोग अत्यन्त सरल भाषा में कवि ने किया है-

सर्वा पूर्वामियं येषामसीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्।।[2]
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः।
षष्टिपुत्र सहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्।।

कहीं-कहीं वाक्य विन्यास अत्यन्त लम्बे, कृदन्त या तद्धितान्त प्रत्ययों का प्रयोग भी इस शैली के अन्तर्गत कवि ने किया है-

गंगायाश्चापि संतारं भरद्वाजस्य दर्शनम्।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञानच्चित्रकूटस्य दर्शनम्।।[3]
वास्तुकर्म निवेशं च भरतागमनं तथा।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिल क्रिया।।

(1) वा.रा. 1 1 33,34/35 (2) वही 1/5/1,2 (3) वही 1 3 15-17

पादुकाग्रयाभिषेकं च नन्दिग्राम निवासनम्।

दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा।।

शोधकर्त्री की यह उपपत्ति है कि आगे चलकर वाण आदि साहित्यकारों ने दीर्घ समास युक्त लम्वे-लम्वे कृदन्तीय वाक्यों का प्रयोग यहीं से सीखा होगा। यह परम्परा रामकथा में प्रायः सर्वत्र दिखाई देती है। जानकी जीवन में भी कवि ने रूढ़ि अन्तर्गत इसी परम्परा का पालन किया है। तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि ने ऋजु, सरल, सुकुमार या अमिधा प्रधान शैली के अन्तर्गत कथा या विवर्णो का उपयोग किया है, उदाहरण देकर पिष्टपेषण या पृष्ठ भरना उचित नहीं होता।

जानकी जीवनम् में भी इसी इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग एक भिन्न रूप में हुआ है जहाँ कथा का वर्णन कवि स्वयं करता हुआ यत्र-तत्र संयुक्ताक्षरों अथवा लम्वे सामासिक शब्दों का प्रयोग किया है एक-दो उदाहरण द्रष्ट्व्य हैं-पहले सरल शब्दों का उदाहरण देखिए-

पुरा विदेहेषु ववर्षनाभ्रं वहुनि वर्षाणि किल व्यतीयुः।

प्रजासु हाहाकृतवेदनोत्थं निकामदुःखं प्रमुखी बभूव।।[1]

निरन्तरं व्योम्नि ववुः प्रवात्या अदर्शि रात्रावपिधूमकेतुः।

विधे! न जाने भविता किमस्तीत्यनारतं जानपदैर्व्यतर्कि।।

जानकी जीवन में इसी शैली का दूसरा वह रूप दिखाई देता है जिसमें सन्धि या समास के कारण शब्दों को संयुक्त कर एक ही वाक्य में क्रिया पूर्ण कर दी जाती है। जैसे-

इति प्ररुढक्लमविक्लवोऽसौ प्रजागरक्लेश विषण्ण चित्तः।

विनिद्र एवारूण चूडरावैनिशाव्ययेऽहः कलयाम्बभूव।।[2]

मखोत्थधूमानलि सम्परीतं ज्वलत्पुरोडाशलसत्समीरम्।

विलोलखेलोपनत प्रवन्धैर्महर्षिभिश्चार्थितयोगचर्यम्।।

2. अलंकृत शैली– इस शैली के अन्तर्गत कवि अलंकारों का उपयोग कर छोटे या वड़े वाक्यों विन्यासों का प्रयोग करता है। अलंकारों में उपमा, रूपक अथवा द्रष्टान्त अलंकारों का विशेष उपयोग होता है। अलंकृत शैली में विषयवस्तु के साथ मानव या मानवेतर वस्तुओं का चित्रांकन प्रमुख रूप से होता है। वाल्मीकि रामायण में दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ,

(1) जा.जी. 01/1,4 (2) वही 1/8,12

कुशनाम प्रसंग भगीरथ द्वारा गंगा आनयन, कैकेयी-कोप, अरण्यकाण्ड में प्रकृति के चित्रांकन में इस शैली के विशिष्ट स्थल हैं एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

अवश्याय निपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणायता।।[1]
स्पृशन् सु विफलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्ततृषियो वन्यः प्रतिसंहरते करम्।।
अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः।।

इसी प्रकार हनुमान ने रावण के भय से दुःखिता सीता का जो रूप देखा है उसके वर्णन में कवि ने मालोपमा की झड़ी से लगा दी है-

सन्नमिव महाकीर्ति श्रद्धामिव विमानितम्।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव।।[2]
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहतामिव।।
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दु मण्डलाम्।
पद्मिनीनिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव।।
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम्।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव।।

इसके अतिरिक्त किष्किन्धा काण्ड में प्रकृति निरूपण में प्रकृति पर मानवीय रूप का आरोप कर वाल्मीकि ने जिस अलंकृत शैली का उपयोग किया है उसमें एक ओर विम्वात्मकता, ध्वन्यात्मकता है तो दूसरी ओर प्राकृतिक दृश्यों का सजीव नयनाभिराम और हृदयावर्जक वर्णन है-

विद्युत्पताकाः सबला कमालाः
शैलेन्द्रकूटाकृति संनिकाशाः।[3]
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्ण नादा
मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः।।

---

(1) वा.रा.3/16/20,21,23 (2) वही 5/19/11-14 (3) वही 4 18/20,21,23

वर्षोदकाप्यायित शाद्वलानि

प्रवृत्तनृत्तोत्सव वर्हिणनि।

पनानि निर्वृष्टबलाहकानि

पश्यापरोदणषूवधिकं विभान्ति।।

मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती

सम्भोदिताभाति बला पंक्ति।

वातावधूता वरपौण्डरीकी

लम्वेव माला रूचिराम्बरस्य।।

वाल्मीकि रामायण में उपमा, मालोपमा, दृष्टान्त अलंकारों के प्रयोग से इस शैली को सजाया गया है तो जानकी जीवन में रूपक अलंकार का विशेष प्रयोग है साथ ही कई उपवाक्यों के पश्चात् मुख्य क्रिया का उपयोग कर दीर्घ समास वाली भाषा के संवलन से अलंकृत शैली प्रस्तुत की गयी है। कवि अपने काव्य की विशेषता अलंकृत शैली से इस प्रकार व्यक्त करता है–

यत्काव्यं तरूणायते नवनवोन्येषैर्लसद् वैभवं।[1]

सान्द्रानन्दमरन्दविन्दुरूचिरं वाण्याशिषाऽनारतम्।

राजेन्द्रस्य कृतावयंपरिणतिं सर्गस्तुरीयोऽभज्-

च्छ्रीमद्राधवपूर्वराग विपमश्र श्री जानकी जीवने।।

मूलं श्री कवि कालिदास कविता श्री हर्ष वाणी तनुः

पत्रं श्री जयदेव वचनं श्री विल्हणोक्तं सुभम्।

श्रीमत्पण्डितराज काव्यगरिमा यस्मैकपुण्पं फलं

जीव्याद्वन्त निसर्गजोऽयमभिराजेन्द्र काव्य द्रुमः।।

इसी प्रकार जनक की पुष्पवाटिका में एकत्रित युवतियों के सौन्दर्य चित्रांकन में कवि ने अलंकृत शैली का प्रयोग कर संश्लिष्ट वाक्यों का पुष्कल प्रयोग किया है–

विकचपाटल पुष्पकदम्वकं ह्मपुरिसारितकंकणपाणिना।

मुकुलजालमुपेक्ष्य विचिन्वती वरतनू क्कंण रतनूपुरका बभौ।।[2]

---

(1) जा.जी. 4/47,48 (2) वही 6/6-8

समावलम्ढय समुद्गकमूर्द्धवयोयुगपयोधरयोः कमलानना।
मधुनिषद्धरतिं जडरोदरं ह्यपललाप रूषा परूषाक्षरैः।।
कनक दाम निबद्धकुद्यमती नृपतिजा किल काडपि रतिप्रभा।
भुजगवेष्टित केतक गुल्म कान्यभिननन्द ननन्द न कानने।।

बिम्बधर्मिता

साहित्यकार वस्तु जगत को देखकर उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर अपने काव्य का सृजन करता है और उसमें देखी हुई अनुभव की हुई वस्तुओं की पुनर्सृष्टि करता है। यह सर्जना प्रतिकृति न होकर पुर्ननिर्मित है इस हेतु वह भाषा के माध्यम से बिम्वों की सृष्टि करता है। मानव या मानवेतर वस्तुओं का ऐसा चाक्षुष या मानस गोचर दृश्य उपस्थित करता है जो पाठकों के नेत्रेन्द्रिय या श्रवणेन्द्रिय को तृप्त करता हुआ उसका रूप प्रत्यक्षगोचर कराता है। वाल्मीकि का काव्यफलक अत्यन्त व्यापक है। विस्तृत कथाकोष में शेष सृष्टि समाहित हो गयी है इसीलिए उसमें प्रयुक्त भाषा में वस्तुओं के सहज और अलंकृत बिम्वों के साथ नादात्मक या ध्वन्यात्मक बिम्बों के विविध बहुआयामी पुण्कल प्रयोग हैं। उसकी भाषा एक ओर सरल, वाक्य विन्यास एक ही श्लोक में बंधे दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर दीर्घ समास अलंकृत भाषा के साथ बिम्बों के अनेक रूप भाषा को समृद्ध करते दिखाई देते हैं–

नीलेषुनीला नववारिपूर्णा
मेघेपुमेघाः प्रतिभान्तिसक्ताः।[1]
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेपुशैला इव बद्धमूलाः।।
प्रमत्तासंनादितबर्हिणानि
सराक्रगोपाकुलाशाद्वलानि।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि
गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि।।
वनप्रचण्डा मधुपानशौण्डाः
प्रियान्विताः पट्चारणाः पहृष्टाः।

(1) वा.रा.4/28/40,41 4/30/52,53,54

वनेषुमत्ता पवनानुयात्रां

कुर्वन्तिपद्मनानरेणुगौराः।।

जलं प्रसन्नं कुसुम प्रहासं

क्रौंचस्वनं शालिवनं विपक्वम्।

मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः

शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्।।

मीनोपसंदर्शित मेखालानां

नदी वधूनांगतयोऽधमन्दाः।

कान्तोमुक्तलालसगमिनीनां

प्रभातकालेष्वि कामिनीनाम्।।

वाल्मीकि रामायण भाषा की दृष्टि ने नैसर्गिक काव्य हैं जबकि जानकी जीवन अलंकृत प्रधान शिशुपाल वध, नैषधीय चरित या किरातार्जुनीयम परम्परा का काव्य है अतः इसमें वस्तुओं के सहज बिम्बों की अपेक्षा अलंकृत या क्रिया व्यापार युक्त भाषा के माध्यम से अभिव्यंजित हुए हैं–

क्वचिच्च ताम्बूल करंकवाहिन्युपाश्रितारलील कटाक्षलीलम्।

क्वचित्तु क्षत्रव्यजनोपहार प्रवर्तिनीभिर्वृत राजलोकम्।।[1]

प्रयत्तमातंगकचीत्कृतैश्च प्रणोदितं वाहनकिंकणीभिः।

क्वचिच्च काम्वोजतुरंगभाणां ह्वेपारवैर्हादितवालवर्गम्।।

इतिदृशमोदम वापतुस्तौ स्वयंवरक्षेत्रमदोऽवलोक्य।

रघूद्वहौ चापधरौ कुमारौ साकेत वीरौ विदित प्रभावौ।।

यदा च वामनीभूरा पृष्त्तो नीखैः पदैः।

समाक्रम्य स सौमित्रिर्भ्रातुजायां प्रगृह्य च।।

---

(1) जा.जी. 7 27,28,29–9 90,91,92

कपोलमण्डले गौरे कज्जलं कर्दमं मसीम्।
लिम्पति स्म भृशं नृत्यन् चर्चरीं कामिनी प्रियाम्।।
तदान्तःपुर सीमासु महोल्लास महोदधिः।
रिंगदुन्मद कल्लोलो निर्भरं कोऽप्यजायत।।

तात्पर्य यह है कि भाषा वैभव की दृष्टि से यदि हम दोनों आलोच्य काव्यों की तुलना करते हैं तो प्रथम दृष्ट्या यह दिखाई पड़ता है कि वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु विस्तृत होने के कारण भाषा विविध रूपा हो गयी है इसमें विभक्ति सहित या विभक्ति रहित शब्दों के सरल प्रयोग से कथा में इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया गया है जहाँ भावनाओं का उद्दाम आवेग कवि के हृदय के तटबन्धों को तोड़ सका है, वहाँ भाषा प्रवाहमयी, अलंकारों का अधिक्य दीर्घ समास का उपयोग हुआ है। ऐसे स्थलों में श्रृंगार, करूण, रौद्र रसों के कारण भाषा में प्रवाहमयता लयात्मकता, और प्रभविष्णुता स्वतः आ गयी है।

आलंकृत भाषा अनायास ही पाठ्कों को रस समुद्र में निमग्न करने में समर्थ हो सकी है। प्रकृति के रागात्मक सम्बन्धों के कारण प्राकृतिक वस्तुओं के ध्वन्यात्मक या नादात्मकता भाषा में दिखाई पड़ती है। शैली की दृष्टि से वर्णन प्रधान्य होने के कारण इतिवृत्तात्मकता छोटे-बड़े वाक्य प्रयुक्त हैं। जानकी जीवन काव्य शास्त्रज्ञ कवि की रचना और जिसका काव्य फलक वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा छोटा और सीमित है। घटना प्रवाह की क्षिप्रता के कारण शेष प्रकृति के वस्तु वर्णन का अवसर कवि को नहीं प्राप्त हुआ कथा की क्षिप्रता के कारण भाषा में कसाव, आवेग, आयासपूर्ण अलंकारों का प्रचुर प्रयोग, तद्धित एवं कृन्दतीय शब्दों के कारण दीर्घ वाक्यों का बहुत प्रयोग हुआ है। वाल्मीकि रामायण की भाषा सामान्य संस्कृत विज्ञ की भाषा है तो जानकी जीवन वैदग्ध भंगीमणि या वक्रव्यापार युक्त भाषा का निदर्शन है। इसलिए इसमें सन्धि या समासों के कारण संश्लिष्ट वाक्यों का पुष्कल प्रयोग है। इसकी भाषा सायास भाषा है अतः इसमें नैसर्गिकता का अभाव है।

छन्द विधान

आलोच्य काव्यों में छन्दगत वैशिष्ट्य

छन्द शब्द छद् धातु निष्पन्न है जिसका अर्थ है–प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादन करना, बाँधना। वेदांग में छन्द को वेद के चरण कहे गये हैं–

"छंदः पादौ तु वेदस्य" (पाणिनीय शिक्षा)

इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि–छन्दयति आह्लादायति अर्थात् जो हृदय को आह्लादित करे या जिससे प्रसादन हो वही छन्द है। छन्द का मूल आधार उसकी रामदंहिन मिश्र के अनुसार "काव्य में प्रसाद गुण का संचार कराने वावा उपादन छन्द है। सौकर्य की दृष्टि से हमारी रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यंजना का सबसे अधिक प्राचीन वरिष्ठ एवं व्यापक रंगमंच है काव्य और यह अपनी विशद एवं पूर्ण अभिव्यंजना के लिए या अपनी अभिव्यक्ति को दूसरे हृदय में प्रतिष्ठापित करने के लिए जिन अनेक चित्र संगीतमय इंगित मासों का आश्रय ग्रहण किया करता है उसमें नाद सौन्दर्य की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है छन्द। छन्द ही काव्य का संगीत है। संगीत में जो संयम ताल से आता है वही संयम कविता में छन्द से आता है।"[1]

भारतीय वांगमय के सुरक्षित रखने का श्रेय छन्द को ही है, इस सम्बन्ध में डा० रामदेव प्रसाद ने लिखा है कि"काव्य और संगीत दोनों श्रव्य कला है इस नाते काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध है। इस सम्वन्ध को दृढ़ करने के लिये छन्द की आवश्यकता है। छन्द निःसृत कमनीयता एवं आनन्द से मनोवेगों की अभिव्यक्ति में तीव्रता आ जाती है।"[2]

पाश्चात्य विद्वानों में से "सिडनी हॉपकिन्स" ने छन्दों का विरोध किया है तो ड्राइडन, जान्सन, स्टुअर्तमिल ने इनकी आवश्यकता मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है।

वस्तुतः छन्द में लय, गति, चारणानुशासन या जो वन्धन होता है वह वाह्यारोपित न होकर अथवा विजातीय बन्धन न होकर काव्य के स्वेच्छासम्भूत आत्मानुशासन का प्रतीक है। वैदिक साहित्य में गायत्री उष्णिका, अनुष्टुप, जगती आदि छन्द उपर्युक्त सिद्धान्तों की ही पुष्टि करते हैं। भावावेग के कारण शापगत निःसृत श्लोक आगे चलकर अनुष्टुप के नाम से

(1) काव्य दर्पण डा० राम हनि मिश्र, पृ०–32 (2) राम चरित मानस की काव्य भाषा पृ०–124

जाना गया है। यदि वैदिक साहित्य के छन्द अक्षर प्रधान हैं तो संस्कृत के छन्द वर्णवृत्त मात्राओं पर आश्रित हैं क्योकि लौकिक संस्कृत के छन्द ध्वनि तत्त्व प्रधान माने गये हैं इसमें लय का आधार ह्रस्व या दीर्घ ध्वनियाँ होती हैं।

वाल्मीकि रामायण का मुख्य छन्द अनुष्टुप या श्लोक है। तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि ने अनुष्टुप छन्द में सम्पूर्ण रामायण लिखी है। सर्गान्त या काण्ड के अन्त में इसी परिवार का त्रिष्टुप के ही विकास हैं। अनुष्टुप के विकास यात्रा का वर्णन करते हुए डा0 राम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है-"संस्कृत का अधिकांश साहित्य अनुष्टुप बद्ध है वैदिक ऋषि की आदि गीर्वाणी में जन्म लेकर ऋग्वेद की लोरियाँ सुनता हुआ ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्कों और उपनिषदों के पालने में झूलता हुआ और फिर महाकाव्य के विराट प्रागंण में क्रीड़ा कर पुष्ट और प्रौढ़ बनता हुआ रामायण और महाभारत में दिग्विजय करता हुआ पुराणों और स्मृतियों की पुनीत वाणी से अभ्यर्चित तथा रघुवंशादि अलंकृत काव्यों की रागनियों से अभिनन्दित होकर अनुष्टुप छन्द जगत का सम्राट बन बैठा। इसका परिवार विशाल है। इसकी वंश परम्परा सुदीर्घ है। आदि वैदिक ऋषि के मुख से श्लोक बनकर ही यही निकला। वैदिक अनुष्टुप को आदि काव्य में शोक की व्यंजना करते हुए-"मा निषाद" के रूप में श्लोक की संज्ञा प्राप्त हुई। अनुष्टुप के स्थान पर तब से श्लोक शब्द ही चला आ रहा है। यह ऋग्वेद के तीन प्रधान छन्दों में से एक था। वहाँ त्रिष्टुप राजा, जगती मन्त्री, और अनुष्टुप अनुचर मात्र था।"[1]

अनुष्टुप त्रिष्टुप और जगती के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

1. **अनुष्टुप-** श्लोके षष्टं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्विचतुष्पाक्ष्यो र्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

इसके चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं, प्रथम और तृतीय चरण का सातवां दीर्घ एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण का सातवां लघु होना चाहिए-

मद व्यायाम खिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेपुवकाशेषु प्रसुप्तास्तनु मध्यमाः।।[2]
अंगहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्य शालिनी।
विन्यस्तशुभसर्वांगी प्रसुप्ता वरवर्णिनी।।

---

(1) वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन पृ0-437 (2) वा.रा. 5/10/35,36

2. त्रिष्टुप– यह अनुष्टुप का ही विकास है, इसमें चार-चरण होते हैं प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं। कवि ने सर्गान्त में इस छन्द का प्रयोग किया है इसी से आगे चलकर इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रा जैसे छन्द बने हैं।

त्रिष्टुप के नादात्मक लयात्मक तथा गत्यात्मक नाद सौन्दर्य पर मुग्ध याकोबी ने जो लिखा है उसे डा० राम प्रकाश अग्रवाल ने इस प्रकार रूपान्तरित किया है। त्रिष्टुप छन्दों में काव्य सौन्दर्य भी विशेष रूप से निसरा हुआ दिखलाई पड़ता है और उनके लिये चुनाव भी विशेष रूप से भावपूर्ण अद्भुत और मार्मिक प्रसंगों का किया गया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण (किष्किन्धा काण्ड में वर्षा और शरद के वर्णन तथा सुन्दर काण्ड के पाँचवें सर्ग में चन्द्रिका वर्णन) पुष्पक विमान का वर्णन (सुन्दर काण्ड सर्ग-8) और सीता विलाप (सुन्दर काण्ड सर्ग 28) का वर्णन त्रिष्टुप छन्दों में किया गया है–

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।[1]
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ
निदर्शनयन् स्वां प्रकृति कपीनाम्।।
पुनश्च सोऽचिन्तयदात्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता।
अथायमस्यां कृतवान् महात्मा
लंकेश्वरः कष्टमनार्यकर्म।।

जगती– यह भी अनुष्टुप का ही विकास है इसमें चार चरण होते हैं प्रत्येक में बारह वर्ण होते हैं। वैदिक छन्द होने के कारण वहाँ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के रूप में इसे गाया जाता था जिसका विकास संस्कृत के वर्णवृत्तों वंशस्थ, तोतक, द्रुत विलम्बित, भुजंग प्रयात इत्यादि रूपों में हुआ है। वाल्मीकि ने कथा को विराम देने के लिए सर्गान्त में इस का प्रयोग किया है–

तथा तु दीनः कथयन् नराधिपः
प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः।[2]

---

(1) वा.रा. 5 9 73-5/10/54 (2) वा.रा. 2/64/78

गतेऽर्धरात्रे भृशदुःख पीडित-

स्तदा जहाँ प्राणमुदारदर्शनः।।

निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं

प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि।[1]

गमिष्यसि क्षीणबलः सवान्धवो

यमक्षयं रामशरास्त जीवितः।।

सारांश यह है कि रामकथा के मोड, उतार चढ़ाव कथा के मार्मिक स्थल औत्सुक्य प्रधान भावों के अभिव्यक्ति के लिए अनुष्टुप या श्लोक नामधेय प्रमुख छन्द का प्रयोग कवि ने किया है जिसके सर्गान्त में छन्द परिवर्तन की परम्परा दिखाई देती है। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद में यह परम्परा दिखाई है किन्तु ललित काव्यों में सर्गान्त में छन्द परिवर्तन वाल्मीकि से ही प्रारम्भ होता है।

जानकी जीवनम् संस्कृत के वर्णवृत्तों पर आधृत रचना है इसमें एक ओर मात्रा तो दूसरी ओर मगण इत्यादि गणनानुसार छन्दों का प्रयोग हुआ है कुछ प्रमुख छन्दों के लक्षण और उदाहरण दिए जा रहे हैं-

उपेन्द्रवज्रा—यह चरणों का छन्द है प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं इसमें क्रमशः जगण, तगण जगण और अन्त में दो गुरू प्रयुक्त होते हैं-

"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ"।

मखोत्थधूमावलिसम्पीतं ज्वलत्पुरोडाश लसत्समीरम्। (जा.जी.1/12)

विलोल खेलोपनतप्रबन्धैर्महर्षिभिश्चार्थित योग चर्यम्।।

मालिनी— "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो नगण एक मगण और दो यगण हों तथा आठ सात अक्षरों पर विराम होता है उसे मालिनी छन्द कहते हैं। जानकी जीवन का सोलहवां सर्ग मालिनी छन्दबद्ध है-

अथ गगनगिरं तां श्रोत्रयुग्मैर्निपीय

श्रितगुरू परितोषर शोषमेत्य श्रमाणाम्।

---

(1) वही 3/38/33

घनजल कणि काभिस्स्विन्न गात्री गृहीत्वा

कर कमल करंके हर्म्यमेव प्रतस्थे।। (1/53 जा.जी.)

वंशस्थ– "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।"

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण होता है उसे वंशस्थ कहते हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं–

समागते राजनि लब्धलालसे निधाय पाणौ तनुजामयोनिजाम्।

वभूव हर्षः सुमहान नुत्तमः प्रजासु दारेषु च सर्वतो सुखम्।। (जा.जी.2/1)

बसन्ततिलका– "उक्ता बसन्ततिलका तभजा जगौगः।"

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में एक तगण, एक मगण दो जगण, और अन्त में दो गुरू हो उसे बसन्त तिलका छन्द कहते हैं–

दुःखं न जातु ददृशे पुरि नापमृत्यु–

नैंवात्मयोऽपि महतां वचनीय ता नो।

कौलीन भीति रथ वा द्रविणा पहारो

राज्यं प्रशासति नृपे त्वजनन्दनेऽस्मि।। (जा.जी. 4/6)

सुन्दरी– "अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभराल्गौ यदि सुन्दरी तदा।"

यदि प्रथम तथा तृतीय चरण में सगण, एक जगण और एक गुरू हो तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में एक जगण एक मगण, एक रगण, एक लघु और गुरू हो, तो उसे सुन्दरी नामक छन्द कहते हैं–

अभितोऽपि गृहान्तरोत्थितैः कलगीतानुगतैर्धरः।

हृदयैणककूट वा गुरैर्ध्वनिभिर्भूरि सुखं कृतं तयोः।। (जा.जी.5/7)

द्रुत बिलम्बित– "द्रुतविलम्बित नभौ भरौ।"

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है, उसे द्रुत विलम्वित छन्द कहते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं–

कति पयाप्त सखी जनमण्डिता मृदुलमन्थर बन्धुर गामिनी।

परिगता नलिनीव दिनोदये शिथिल कुन्दशतैरनिमीलतैः।। (जा.जी.6/16)

उपजाति– अनन्तरोदीरितलक्ष्यभाजौपादौ यदीयावुप जातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपिमिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

यदि किसी पद्य में पूर्व कहे गये इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के दो-दो चरण हों तो उसे उपजाति छन्द कहते हैं। यदि अन्य छन्द भी इसी तरह मिश्रित हों तो उन्हें भी उपजाति कहा जायेगा। इस छन्द के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं-

अभावपि प्रीतनिशौ कुमारौ मुदा स्मरन्तौ कुलदैव तानि।

पुरन्दराराप वनोद्यातैर्विलालितो वोधभवापतुस्तौ।। (जा.जी.7/2)

भुजंग प्रयात– "भुजंग प्रयातं चतुर्भिर्य कारैः।"

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः चार यगण होते हैं, उसे गुजंग प्रयात छन्द कहते हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं-

चिरव्थायतेनापि यज्जीवितेन क्षमोऽसौ न वेत्तुं विलासै र्वभूव।

रहस्यं तदेव स्फुटं दैवगत्याऽ भवत्कोसलेन्द्रस्य कल्याणकारि।। (जा.जी.10/3)

अनुष्टुप– पूर्वमेव कृतं पौरैस्संविधान कमुत्तमम्।

तेषां सभा जनायैव साग्रहं सपरिश्रमम्।। (जा.जी.9/2)

वर्णरत्नाकर ने अनुष्टुप का लक्षण लिखते हुए लिखा है-

"वक्त्रं नाथान्तसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभि ख्यातम्।।"[1]

अन्यत्र इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

श्लोके षष्टं गुरू ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।

द्विचतुष्पादयो र्हस्वं सप्तमं दीर्घ मन्ययोः।।

अर्थात श्लोक के प्रत्येक चरण में जहाँ आठ अक्षर हैं छन्द के चारों चरणों में पंचम अक्षर लघु, षष्ट गुरु दूसरे तथा चौथे चरण में सप्तम अक्षर हृस्व हो उसे अनुष्टुप कहते हैं।

प्रगीतात्मक छन्द–कवि लक्षणानुधावन प्रवृत्ति का नहीं होता। हृदयस्थ आवेगमयी ऊर्मियाँ छन्द के बन्ध को तोड़कर प्रकट होती रहती हैं ऐसी कविता में आवेग, आरोह, अवरोह और संगीतात्मकता अधिक होती है। ऐसे श्लोकों को हम प्रगीत छन्द कहते हैं जिनमें छन्दों का मिश्रण होता है। अभिराज राजेन्द्र ने ऐसे छन्दों में एक पंक्ति टेक के रूप में प्रयुक्त किया है शेष पंक्तियाँ अन्तरा कहलायेंगी। इक्कीसवें सर्ग में इस प्रकार के छन्द हैं-

---

(1) वर्णरत्नाकर पृ0-48

रामो रामकथाऽमृत मूलम्।

सगरेक्ष्वाकुसुदाभगीरथरघु चरिताम्बुधिकूलम्!!

स्फीतमुदित कोसल जनपद नगरी मनोरयोध्या।

बहुधन धान्यवती सुविशालानृपदशरपभुज भाग्या।। (21/6 जा.जी.)

इस छन्द में कवि ने आरोह-अवरोह का विशेष ध्यान रखा है। क्योंकि टेक या मुखड़े के रूप में समश्रुतिमूलक "रामोरामकथाऽमृतमूलम्" से जो आरोह उत्पन्न होगा वह "नृपदरारथभुजभोग्या" में समाप्त होकर पुनः तक की पंक्ति अवरोह रूप में प्रयुक्त होगी।

इसी प्रकारः-

"सखि! मालय कोशल भूप गृहम्।" (जा.जी.21/24)

छन्द में नादात्मकता और तथात्मकता का ऐसा मिश्रण है जिसमें दर्शन ध्वनि प्रधान शब्द बहुलता है-

पुरूषार्थ चतुष्टय रूपधराः सदुपाय चतुष्टय रूपधराः। (जा.जी.21/24)

में छोटी-छोटी शब्द लहरियों का निर्माण हुआ है। इसी छन्द के अन्तरा में छोटे अनुप्रासिक शब्द स्वयं लय बनाने में समर्थ हो सके हैं। क्रिया प्रधान पंक्ति देखिए-

नर्टितं वलितं लपितं स्खलितं हसितं क्वचिदालय गोपितकम्। (जा.जी.21/25/1)

तात्पर्य यह है कि महाकाव्यों में एक निश्चित लक्षणबद्ध छन्दों का प्रयोग होता है इसके विपरीत राजेन्द्र मिश्र ने मुक्तक काव्य के लिए उपयुक्त छन्द बद्ध किन्तु लयप्रधान ऐसे वर्णवृत्तों का उपयोग किया है जिससे काव्य में एकतानता, एकरसता तो टूटती ही है लयात्मकता और संगीतात्मकता पाठकों को आत्यायित करने में पूर्ण समर्थ है।

सारांश यह है कि जानकी जीवन में वंशस्थ, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्वित, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, भुजंग प्रयात, अनुष्टुप, सुन्दरी, उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्दों के प्रयोग में रस और भाव का विशेष ध्यान रखा गया है। जहाँ कोमल भावों के लिए मालिनी वंशस्य, उपेन्द्रवज्रा प्रयुक्त हैं वहीं आवेग प्रधान भावों की अभिव्यक्ति के लिए भुजंग प्रयात और द्रुत विलम्बित छन्द का प्रयोग किया है। श्रृंगार, करूण आदि रसों के लिए वंशस्य मालिनी छन्द प्रयुक्त है तो वीर भयानक रसों के लिए भुजंग प्रयात छन्द का प्रयोग है। कवि ने लक्षणानुधावन से रहित होकर इक्कीसवें सर्ग में वंशस्थ के प्रयोग के साथ टेक प्रधान

प्रगीतमुक्तक छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। जिसमें सौशब्द के साथ ध्वन्यात्मकता, गत्यात्मकता, नादात्मकता का अद्भुत मिश्रण है। राजेन्द्र मिश्र मंचीय कवि हैं अतः मंच में जिन छन्दों का सस्वर लययुक्त पाठ्कर जनता को रसाप्लावित किया जाता है जैसे ही कुछ छन्दों का इक्कीसवें सर्ग में प्रयोग है। टेक की पंक्तियों में अनुस्वार की प्रधानता है, अन्तरा में लयात्मकता और छन्द की अन्तिम पंक्ति में क्रमशः क्षीण से क्षीणतर शब्दोच्चारण से मूर्च्छना का प्रयोगकर कवि ने भाव को प्रभावात्मक बनाया है।

आलोच्य काव्यों में शब्द शक्तियाँ

दर्शन और व्याकरण शास्त्र में शब्द और अर्थ के नित्य सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या की गयी है। डा0 गुलाब राम ने लिखा है "शब्द अपने विस्तृत अर्थ में शब्दों का ही द्योतक नहीं होता उसके अन्तर्गत वाणी का समस्त व्यापार आ जाता है।"[1]

इस प्रकार भारतीय वांगमय में शब्द को साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। प्रत्येक शब्द का एक निश्चित अर्थ है और प्रत्येक अर्थ के लिए शब्द नियत है इस प्रकार शब्दार्थ ही भाव सम्प्रेषण का श्रेष्ठ माध्यम है। इस शब्द शक्ति के लिये आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि "शब्द शक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं अभिधा, लक्ष्णा और व्यंजना।"

अभिधा शक्ति—आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है-"सांकेतित (मुख्य) अर्थ का बोधन कराने वाली शब्द की पहली शक्ति अभिधा है।" "तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।"[2]

शब्दों के अर्थ ग्रहण के सन्दर्भ में मम्मट का यह मत्वपूर्ण उद्घोष आगे अभिधेयार्थ को समझने के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता है। उसने लिखा है कि शब्द विशेष के अर्थ का ग्रहण व्याकरण, उपमान कोश, व्यवहार, वाक्य विशेप आप्तवाक्य, विवृत्ति, सिद्धपद, सनिध्य से ग्रहण होता है।

शक्तिगृहव्याकरणोप मान कोशाप्त वाक्याद व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वहन्ति सान्निध्यतः सिद्ध पदस्य वृद्धाः।।[3]

इस प्रकार अमिधा शक्ति जिन शब्दों से अर्थ व्यक्त करती है उसे वाचक कहते है और इस अर्थ को अभिधेयार्थ कहते हैं।

---

(1) सिद्धान्त और अध्ययन पृ0-248 (2) साहित्य दर्पण 2/3 (3) काव्य प्रकाश-मम्मट पृ0-42

कथा प्रधान काव्यों में अभिधा प्रमुख होती है शेष शक्तियाँ अर्थात, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ की संख्या या स्थान सीमित होते हैं यहाँ हम आलोच्य काव्य वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् के अभिधेयार्थ वाचक कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं-

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसंग्रहः।
दीर्घदर्शी महातेजा पौरजानपद प्रियः।।
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी।
महर्षि कल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।[1]
बलवान् निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः।
धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः।।
यथायनुर्महातेजा लोकस्य परिरीक्षता।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता।।
तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणवामरावती।।
आपणो विपणी रम्या सुभगा पण्य वीथिका।
राजशालाऽश्वशाला च पक्षिशालाऽथ मन्दुरा।।[2]
संजवनं मठश्चैत्यं प्रपाऽऽवेशन मन्दिरम्।
श्रेष्ठि हर्म्यं गवाक्षश्च राजसौघोऽवरोधनम्।।
विटंकवलभीवेदी प्रधाणांगणमण्डपाः।
अररार्गला निश्रेणि प्राकार परिखादिकाः।।
सर्वमेव जनस्थानं यत्र कुत्रापि संस्थितम्।
नगरे राघवेन्द्रस्य संजितं सर्वतोमुखम्।।

उपर्युकत उदाहरणों में यथा, तथा, लोक, सर्व, रथ, गज, मढ, नगर जैसे रूढ़ शब्द तो दूसरी तरफ अयोध्या, दीर्घदर्शी महातेजा, पण्यवीथिका, गवाक्ष, राघवेन्द्र जैसे योगिक एवं योगरूढ़ शब्दों का प्रयोग किया गया है। बात यह है कि जिन शब्दों के अर्थहीन खण्ड होते हो उन्हें रूढ़ सार्थक खण्ड को योगिक और योगरूढ़ वे शब्द कहलाते हैं जिसके खण्ड तो

(1) वा.रा. 1.6.1-5 (2) जा.जी. 9.5-8

सार्थक हो किन्तु अर्थ विशेष अर्थ में व्यवहृत किया जाए। जैसे दशरथ का शाब्दिक दश+रथ होगा किन्तु योगरूढ़ के अन्तर्गत राजा विशेष के विशेष के लिए यहाँ प्रयुक्त है। इसी प्रकार जानकी जीवन के उपर्युक्त उदाहरण में राघवेन्द्र का अर्थ राघव–इन्द्र होगा जो अपने मूल अर्थ को छोड योगरूढ़ राम के अर्थ के लिए प्रयुक्त है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवि कथा प्रधान काव्य में घटना, व्यापार, क्रिया, परिस्थितियाँ के विरूपण के लिए जिन शब्दों का प्रयोग करता है उसमें अभिद्येयार्थ की प्रमुखता रहती है। रूढ़, योगिक और योगरूढ़ शब्दों के शतशः प्रयोग इन काव्यों में मिलते हैं यदि संकेतगृह के अनुसार अभिधेयार्थ के सभी उदाहरण प्रस्तुत किए जाए तो ग्रन्थ का आकार विस्तृत हो जायेगा इसीलिए एक–एक आकार विस्तृत हो जायेगा इसीलिए एक–एक उदाहरण देकर इस बात की पुष्टि की गयी है कि आलोच्य दोनों कवियों ने समाख्येय या सार्थक पदों का बहुविध प्रयोग कर अपने वैदुष्य का प्रदर्शन किया है। अभिधेयार्थ की सीमा असीम होती है कवि कथा व्यापार के अनुसार अभिधा शक्ति का ही अधिक प्रयोग करता है। आलोच्य दोनों कवियों ने आगे की कथा सूचना के लिए काशगत या उपमानगत अभिधेयार्थ का अधिक प्रयोग किया है।

लक्षणाशक्ति— लक्षणा शक्ति जव भावों या विचारों में प्रबल भावाधिक्य हो अथवा लेखक, वक्ता कथन में रमणीयता लाना चाहे तो यह कार्य वाच्यार्थ से सम्भव नहीं हैं ऐसी स्थिति में वक्ता ऐसे शब्दों का प्रयोग का प्रयोग करता है जो सामान्य अभिप्रेत अर्थ के वाचक न होते हुए भी अपने प्रयोग सामार्थ्य से उस अर्थ को स्पष्ट कर देते हैं। साहित्य दर्पणकार ने लिखा है–"लक्षणा शक्ति उसे कहते हैं जिसके द्वारा मुख्यार्थ की बाधा या व्याघात होने पर रुढ़ि अथवा प्रयोजन को लेकर मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लक्षित हों–

मुख्यार्थ वाधे तद्युक्तो यथाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढ़े प्रयोजनाद्रासौ लक्षणाशक्तिरर्पिता।।[1]

अर्थात् लक्षणा में मुख्य या अभिधेयार्थ वक्ता के कथन को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं दूसरा वक्ता का तात्पर्य रुढ़ि अथवा प्रयोजन से ही सिद्ध होता है इसलिए कुछ प्राचीन आचार्यो ने लक्षणा के दो ही भेद कहे हैं–रूढ़ा लक्षणा, प्रयोजनवती लक्षणा। इस सन्दर्भ

(1) साहित्य दर्पण 2/5

में प्राचीन आचार्यो में बहुत मतभेद हैं कहीं गौणी, शुद्धा, उपादान, लक्षण लक्षणा, सरोपा, साहपावसान आदि लक्षणों की विस्तृत चर्चा काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों में मिलती है। यहाँ हम पहले रूढ़ा फिर प्रयोजनवती लक्षणा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

रूढ़ा लक्षणा—इस शक्ति के सूचक प्रसंगों में रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर इससे सम्वन्ध रखने वाले अन्यार्थ का ग्रहण अपेक्षित होता है।

त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव।

भरतः कोशलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम्।।[1]

यहाँ उपर्युक्त उदाहरण में राघव का अर्थ रघुपुत्र न होकर रूढ़ि के कारण राम लिया है। इसी प्रकार वसुधा शब्द और कोशलपति अपने मुख्य अभिधेयार्थ में बाधा पहुँचाते हैं क्योंकि पति तो स्त्री का होता है अतः कोशलपति एवं वसुधा रत्नधारण करने वाले मूल अर्थ को छोड़कर पृथ्वी वाचक रूढ़ि अर्थ में प्रयुक्त हैं।

1. विदेहनन्दिन्यथ जानकीति श्रयेत संज्ञामिह मैथिलीति।।[2]
2. ततो गमिष्यत्यभिधाम नर्धां प्रजेश! सीतेति च लोकपूताम।।

यहाँ विदेहनन्दिनी, जानकी, और सीता में रूढ़ि लक्षणा है क्योंकि उक्त दोनों शब्द अपत्य वाचक होने के कारण मुख्यार्थ में बाधा पहुँचाते हैं और अपना यह एक विशेष अर्थ प्रकट करते हैं।

प्रयोजनवती लक्षणा—प्रयोजनवती लक्षणा वहाँ होती है जहाँ हम मुख्यार्थ से सम्वन्धित लक्ष्णार्थ का ग्रहण प्रयोजन विशेष से करते हैं। अचार्यो ने इसे गौणी या शुद्धा लक्षणा के भेदों के रूप में निरूपित किया है। एक दो उदाहरण द्रष्ट्व्य हैं–

1. विदीर्यमाणा हर्षेण धात्री तु परमा मुदा।[3]
2. सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी।
3. दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः।।

उर्पुक्त लक्षणा में विदीर्यमाण, शोकसागर आदि शब्दों के प्रयोजनवती लक्षणा दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में गौणी शुद्धा या सरोपा लक्षणा के शतसः भेद भरे पड़े हैं। इसी प्रकार जानकी जीवन के कुछ उदाहरण द्रष्ट्व्य हैं–

---

(1) वा.रा. 2 18/36/2, 37/1 (2) जा.जी. 1/47/2, 48/2 (3) वा.रा.2 7/10/1, 13.1 2/59/32 2

फलोत्सुकेव प्रसवर्थिगर्विता वभार वाला नवयौवनागमम्।
मरन्दनिस्यन्दवचोमधूनि सा तथैव दध्रे प्रपच्छिलीमुखम्।।[1]
गृहे परास्कन्दिमिव प्रवेशितं प्रसह्य वाला न शशाक भर्त्सितुम।
विभाव्य गात्रेऽपि निजे प्रतिष्ठितं शिशुत्वचौरं नवयौवनाथमम्।।

तात्पर्य यह है कि कवि ने सीता की वयः सन्धि अवस्था के वर्णन के पुष्पों से लदी हुई लता एवं कामस्त्री तस्कर का प्रयोग प्रयोजन वशात ही हुआ है क्योंकि जैसे पुष्पों में पराग और मकरन्द आ जाता है वैसे ही सीता भी यौवन रस से अप्लावित हो उठी। जानकी जीवन में सरोपा, साध्यवसाना लक्षणा का पुष्कल प्रयोग हुआ है।

व्यंजना शक्ति– आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि अभिधा और लक्षणा के अपने-अपने कार्य समाप्त कर चुकने पर जिस अन्य शक्ति के सहारे अभिप्रेत अर्थ का बोध होता है उसको व्यंजना कहा जाता है। यह शब्द और अर्थ दोनों में रहती है-

विरतास्वभिधासु ययार्थो वोध्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।[2]

इस प्रकार उन्होंने व्यंजना के अभिधामूलक एवं लक्षणामूलक दो भेद स्वीकार किए हैं।

अभिधालक्षणामूला शब्दस्य व्यंजना द्विधा।।[3]

1. अभिधामूलक व्यंजना–संयोगादि के द्वारा अनेक अर्थो वाले शब्द के प्रस्तुत एक अर्थ के निश्चय हो जाने पर जो शक्ति अन्यार्थ का बोध कराती हो उसी को अभिधामूला शब्दी व्यंजना कहा जाता है। ये अनेकार्थ, संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ, लिंग, अन्यसन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति आदि के द्वारा व्यंजित होता है। कुछ उदाहरण देखिए-

इदं शरीरं कृत्स्नरुप लोकस्य चरता हितम्।
पाण्डुर स्यात पत्रस्यच्छायायां जरितं मया।।[4]
तत्राप्ययं सुतवरो मम रामचन्द्रः।
प्राणाधिकोऽस्त्यखिल जीवितनिर्विशेषः।।[5]

(1) जा.जी. 3/4,5 (2) साहित्य दर्पण 2 12 (3) साहित्य दर्पण 2 13 (4) वा.रा. 2/2 7 (5) जा.जी. 4/24/1

उपर्युक्त उदाहरण में "जरित मया" "अखित जीवित निर्विशेषः" में व्यंजना है क्योंकि बार्धक्य प्राप्त करना और किसी व्यक्ति का प्राण होना यह सामान्य अर्थ से कार्य नहीं करता व्यंजना के द्वारा ही अनुभव की प्रौढ़ता और अत्यधिक प्रेम की व्यंजना करना है। इसी प्रकार संयोग, विप्रयोग के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना—जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है वह प्रयोजन जिस शक्ति द्वारा प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं।

सारभ्यगाधे मये मग्ना दुःखशोक समन्विता।
दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता।।[1]

यहाँ पर मन्थरा द्वारा दुःखी होना तो सामान्य अर्थ है किन्तु लक्षणा के रूप में अग्नि अगाध सागर का प्रयोग किया गया है जिसका प्रतीयमान अर्थ होगा राज्याभिषेक को सुनकर हितचिन्तिका मन्थरा अत्यन्त शोक को प्राप्त हुई। इसी प्रकार जानकी जीवन में सीता के सौन्दर्य को देख राम के मन में कामभाव को जागृत करने की व्यंजना के लिए चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र के उत्ताल तरंगों की तुलना लक्षणामूलक शब्दी व्यंजना से ही सम्भव है-

कथय वत्स! हृदि प्रणयोर्मिभिः किमिवरिंगणमाशु विधीयते।
न खलु कच्चिदियं मुखचन्द्रिका भवति कारणयस्य यथोचित्म्।।[2]

ऊपर कहा गया है कि व्यंजना के दो भेद होते हैं शाब्दी व्यंजना के अन्तर्गत अभिधा एवं लक्षणामूला व्यंजना के उदाहरण प्रस्तुत किए गये। दूसरी व्यंजना आर्थो व्यंजना कहलाती है।

आर्थी व्यंजना—यह वह शब्दशक्ति है जो वक्ता, प्रकरण, काकु, वाच्य, वक्तृ वैशिष्ट्य उत्पन्न व्यंजना के कारण अर्थगत चमत्कार उत्पन्न करती है। आलोच्य काव्यों से एक-एक उदाहरण द्रष्ट्व्य है-

बाल एवं तु मातुल्यं भरतो नायितस्त्वया।
संनिकर्षाच्च सौहार्दजायते स्थावरे विपय।।[3]

विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्।।[4]

---

(1) वा.रा.2 7/21 (2) जा.जी.6/25 (3) वा.रा. 2 8 28 (4) वही 3/17/26

समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदिता मलवर्णिनी।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी।।[1]

यहाँ वाक्य वैशिष्ट्य उत्पन्न वाच्य सम्भवा व्यंजना है क्योंकि कामाभिभूत शूर्पणखा सीता को असुन्दरी और स्वतः की स्वरूपवान सिद्ध करती है तो दूसरी तरफ वक्त् वैशिष्ट्य उत्पन्न वाच्य सम्भवा व्यंजना लक्ष्मण के कथन से ध्वनित हो रही है क्योंकि दास की पत्नी दासी ही कहलायेगी अतः शूर्पणखा का विवाह लक्ष्मण से उचित नहीं है। यहाँ यह भी द्रष्ट्व्य है कि शूर्पणखा का अर्थ सूप के समान नख न होकर नाम बोधक अर्थ में प्रयुक्त है इसलिए द्वितीय उदाहरण में काकु वैशिष्ट्य उत्पन्न व्यंजना भी की जा सकती है-

मदर्थं तेऽग्रजेनैव भग्नं शिवशरासनम्।
भनक्षि हृदयं तस्यां ईदृशोऽसि महावलः।।[2]

यहाँ सीता और लक्ष्मण (देवर-भाभी) के वीच जो वाचिक हास-परिहास चल रहा है उसमें काकु के माध्यम से धनुष तोड़ना और हृदय तोड़ने को समान कहकर अर्थ की व्यंजना करायी गयी है।

निष्कर्ष यह है कि शब्द शक्तियों की दृष्टि से दोनों काव्य अभिधा प्रधान है। वाल्मीकि में लक्षणा एवं व्यंजना के सभी उदाहरण मिल जायेंगे क्योंकि उसका कलेवर तथा उपकथाओं में अनेक प्रकार के अर्थ की योजना की गयी है जवकि जानकी जीवन में कथा संक्षिप्त है अतः लक्षणा और व्यंजना के सभी भेद उपभेद कम ही दिखाई देते हैं।

तात्पर्य यह है कि प्राक्तन आचार्यो से लेकर अद्यावधि काव्य आचार्यो ने काव्य को रागात्मक अनूभूतियों की निवृत्ति कहा है। हृदयस्थ ऊर्मियाँ शब्दों का ही आश्रय लेकर तरंगायित होती हैं अतः मोटे तौर पर काव्य के दो तत्त्व सामने दिखाई पड़ते हैं-भाव तत्त्व जिसमें अर्थ का सौरस्य, कवि की नूतन कल्पनामयी विधान व्यवस्था पात्रों की विविध भावनाओं, क्रिया कलापों की अभिव्यंजना, प्रकृति चित्रण के साथ बहुज्ञता प्रदर्शन हेतु जीवन के विविध क्षेत्रों से ग्रहीत क्रिया-कलाप सम्मिलित हैं। यह अनुभूतियाँ शब्दों का आश्रय लेकर ही प्रकट होती हैं अतः दूसरा भाग शब्द शिल्प, शिल्प विधान या कला पक्ष कहलाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि इस अध्याय में न तो व्याकरण सम्वन्धी रूक्ष नियमों की समीक्षा

(1) वही 3/18 10 (2) जा.जी. 9/76

होगी न ही शब्द ध्वनि साम्य आगम, लोप, विपयर्य इत्यादि जन्य शैली विज्ञान से सम्बन्धित नियमों की व्यावहारिक व्याख्या होगी अपितु भाषा के भाव वहन करने की सामर्थ्य, शब्द योजना, संवादों में पात्रों की भावस्थिति के कारण लघु-दीर्घ, कलात्मक शब्दों के प्रयोग, आलोच्य दोनों काव्यों में प्रयुक्त छन्द विधान उसके लक्षण कवि के प्रिया छन्द की व्याख्या, रसानुकूल छन्दों के प्रयोग साथ ही अर्थ की विवृत्ति हेतु अभिधा, लक्षणा सहित विविध व्यंजनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। शब्दों के प्रयोग में आलोच्य दोनों कवियों की कुशलता अभिधा प्रधान, विवरणात्मक या वर्णनात्मक शैली, अलंकृत शैली, सरल या दीर्घ समास युक्त कठिन शैली सहित भाषा शिल्प सम्वन्धी उन उपकरणों की व्याख्या की गयी है जिससे कवि के काव्य व्यापार की सफलता आधृत रहती है। यद्यपि इसके अन्तर्गत कुछ व्याकरणिक दृष्टि भी अपनानी चाहिए इससे कवि के शब्द निर्माण प्रक्रिया जन्य क्षमता का पता चलता है किन्तु इसका पालन इस लिए नहीं किया गया कि वाल्मीकि के अनेक अंश प्रक्षिप्त कहे गये हैं अतः समीक्षा में समरूपता रखने के लिए तथा व्याकरण सम्बन्धी नियमों के विस्तार के करण शोध प्रबन्ध के पृथुल या भारी भरकम होने का भय था अतः यह भावों को वहन करने वाले शब्द सामार्थ्य या उसके सीमित उपकरणों की समीक्षा करते हुए यह कहा गया है कि वाल्मीकि की भाषा पात्र एवं रसानुकूल होकर कहीं सरल तो कहीं उद्धत रूप में दिखाई पड़ती है इसकी अपेक्षा जानकी जीवन का शिल्प विधान कोमल अलंकृत है, उसके वाक्य विन्यास लम्बे अवश्य दिखाई देते हैं क्योंकि उसकी कथा में त्वरा है। घटनाओं का विवरण न होकर समास शैली में उल्लेख मात्र हैं। फिर भी ऐसा कहीं प्रतीत नहीं होता कि कवि का शब्द शिल्प कमजोर, शिथिल है।

अध्याय–7

भारतीय काव्य सम्प्रदाय एवं आलोच्य काव्य द्वय का विश्लेषण

भारतीय काव्य सम्प्रदाय का इतिहास–शब्द और अर्थ के समन्वय को साहित्य कहा गया है, यद्यपि भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में साहित्य के स्वरूप की व्याख्या बहुविध रूपों में हुई है। भारतीय आचार्यों में भरत से लेकर पं0 राज जगन्नाथ एवं पाश्चात्य जगत में अरस्तु से लेकर मार्क्सवादी तथा परवर्ती समालोचकों ने भिन्न-भिन्न काव्य तत्वों के आधार पर काव्य शास्त्र की अवधारणायें प्रस्तुत की हैं। यहाँ हम भारतीय काव्य शास्त्र में प्रचलित काव्यात्मा सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर आलोच्य काव्य द्वय में उनकी स्थिति का विश्लेषण करेंगे।

आचार्य राजशेखर ने काव्य को पुरुष मानकर उसके जीवित होने का जो लक्षण दिया है उसमें आत्मतत्व की प्रधानता है जिस प्रकार जीवित शरीर का लक्षण आत्मा या प्राण है उसी प्रकार प्रासंगिक जीवनानुभूति से सम्वन्धित संवर्धित काव्यात्मा की खोज विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत हुई। प्रस्तुत शोध प्रवन्ध के चतुर्थ अध्याय में आत्म सम्प्रदाय के सर्वप्राचीन रस सम्प्रदाय का संक्षिप्त उल्लेख कर वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवन में प्राप्त एतद् सम्बन्धी स्थलों की समीक्षा करते हुये लिखा है कि "वस्तुतः रस ही काव्य का प्राण है। वह व्रह्मानन्द सहोदर है, उसके कारण ही सहृदय, सामाजिक, प्रमाता या प्रेक्षक गलित द्राक्षारस की भांति स्वयं का विगलन कर जिस आनन्द की अनुभूति करता है वह शुचि, पूत, मेध्य और उज्जवल है।" इस रस के आदि व्याख्याता भरतमुनि हैं। उनके नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम रस की अवधारणा सांगोपांग रूप में उपलब्ध है। यद्यपि उनके प्रसिद्ध रससूत्र–"विभाव, अनुभाव संचारी भाव संयोगात्रसनिष्पत्ति" की व्याख्या प्राक्तन आचार्यों में से लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, और अभिनव गुप्त सहित अनेक आचार्यो ने स्वविवेकानुसार की है क्योंकि मूल सूत्र में संयोग और निष्पत्ति की दार्शनिक व्याख्या में मतैक्य नहीं था, और रस को नाटक की ही वस्तु माना गया परन्तु अभिनव गुप्त, धनंजय, विश्वनाथ और पं0 राज जगन्नाथ इत्यादि आचार्यो ने इसे काव्य रस के रूप में भी व्यवहृत मानकर व्याख्या सम्बन्धी विसंगतियों का समाधान किया है। आचार्य भरत ने स्थायी भाव, आलम्वन, आश्रय, उद्दीपन विभाव, संचारी भाव आदि का जो सैद्धान्तिक निरूपण किया है। परवर्ती समीक्षकों ने प्रकारान्तर से

उन्हीं सिद्धान्तों की व्याख्या की है जिनमें मम्मट, विश्वनाथ, आनन्दवर्धन कुन्तक और पं० राज जगन्नाथ प्रमुख हैं। यहाँ हम रस सम्प्रदाय की इतनी ही रूपरेखा प्रस्तुतकर इससे भी प्राचीन अलंकार सम्प्रदाय की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। इसी प्रकार ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति इत्यादि सम्प्रदायों का संक्षिप्त सैद्धान्तिक विवेचन कर तद्नुरूप प्रस्तुत काव्यों के निदर्शन या उदाहरण देकर यह विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि वाल्मीकि और राजेन्द्र मिश्र ने इन सिद्धान्तों का अनुपालन किस सीमा तक किया है।

अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार का अर्थ आभूषण और इसकी व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है-

1. अलंकरोति इति अलंकारः, 2. अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः

इस प्रकार भामह से लेकर आनन्दवर्धन तक अलंकार काव्य की शोभावर्धक गुणों से विकसित होकर काव्यात्मा की सीमा तक पहुँच गया। दण्डी ने कहा है-

"काव्य शोभा करान धर्मान अलंकारान् प्रचक्षते"

अर्थात् काव्य की शोभा कराने वाले धर्मो को अलंकार कहते हैं। आचार्य मम्मट और विश्वनाथ इन्हें काव्य के बाह्य उपकरण मानते हुये कहते हैं जिस प्रकार सौन्दर्य शोभा कारक तो होता है किन्तु आभूषणों से उसकी कांति द्विगुणित हो जाती है उसी प्रकार काव्यगत प्रयुक्त अलंकार उसके अर्थोत्कर्ष में सहायक होते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने अलंकार की परिभाषा लिखते हुआ कहा है-

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभाति शायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलं कारास्तेऽङ्.गदादिवत्।। (साहित्य दर्पण 10/1)

इस प्रकार मम्मट ने भी हारादि आभूषणों की तरह शब्द और अर्थ अलंकारों को रस का उपकारक माना है।

तात्पर्य यह है कि काव्य में अलंकार को शोभावर्धक धर्म स्वीकार करें अथवा शोभा कारक धर्म दोनों ही वर्गो में अलंकार निरूपित किया गया है, वस्तुतः अलंकार काव्य जगत की अक्षय निधि है। श्रेष्ठ उत्तम काव्यों में अलंकार स्वतः स्फूर्त और सहज रूप में ही अनस्यूत होते जहाँ बलात् या सायास रूप में प्रयोग होता है। वे शब्द के रमणीयार्थ को स्खलित कर देते हैं। अलंकारों का उद्देश्य भावों को तीव्र करना है जो काव्य उक्ति व्यंजना

को पूर्णता और बोधगम्य बनाते हैं ऐसी ही उक्तियाँ सालंकार श्रेष्ठ काव्य का उदाहरण बनती है तथा जब यह अलंकार साध्य पाण्डित्य प्रदर्शन या चमत्कार प्रियता का कारक बन जाते हैं वहाँ काव्य की शोभा नगण्य हो जाती है। दण्डी-भामह से लेकर ध्वनि परवर्ती आचार्यों तक अलंकारों का वर्गीकरण विविध आधारों पर हुआ है जिसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

1. शब्द और अर्थ के आधार पर-शब्दालंकार और अर्थालंकार दो भेद किये गये हैं।
2. काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने हेतु-रूद्रट एवं रुय्यक ने सादृश्य गर्भ-उपमा, अनन्वय, विरोध गर्भ-विभावना, अतिरायोक्ति।
3. श्रंखलावद्ध-दीपक, एकावली।
4. न्यायमूलक-काव्यलिंग, यथासंख्य, अर्थापत्ति, प्रतीत तद्गुण इत्यादि।
5. गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक-वक्रोक्ति, व्याजोक्ति इत्यादि वर्गीकरण किये गये हैं।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने रुय्यक का वर्गीकरण स्वीकार तो नहीं किया किन्तु विवेचन का आधार अवश्य बनाया है।

मूलरूप से सादृश्यमूलक, चमत्कार मूलक, अतिशयमूलक, श्रृंखलामूलक, विरोधमूलक, और वक्रतामूलक आधार ही प्रस्तुत किये गये हैं। आधार सौविध्य के लिये हम शब्द और अर्थ के आधार पर शब्दालंकार और उसके भेद तथा अर्थालंकार के लक्षण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से और उदाहरण आलोच्य काव्य ग्रन्थों से प्रस्तुत कर रही हूँ-

1. <u>अनुप्रास</u>- अनुप्रासः शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।।[2]

छेक, वृत्ति, श्रुत्य, लाटानुप्रास, अन्त्यानुप्रास इसके विभिन्न भेद हैं।

छेकानुप्रास-मम्मट ने विदग्ध जनों को प्रिय छेकानुप्रास माना है।

तात्पर्य यह है कि जहाँ अनेक व्यञ्जनों की एक बार आवृत्ति हो वहाँ छेकानुप्रास होता है-

अनेकस्य अर्थाद् त्यञ्जनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं।[3]

पुरा विदेहेषु ववर्ष नाभ्रं बहूनि वर्षाणि किल व्यतीयुः।

---

(1) काव्यालंकार रूद्रट-7/9 अलंकार सर्वस्व-रुय्यक (2) साहित्य दर्पण विश्वनाथ10/2 (3) काव्य प्रकाश 9/436

प्रजासु हाहाकृतवेदनोत्थं निकाम दुःखं प्रमुखी बभूव।। जानकी जीवन।। 1/1

वृत्यानुप्रास-मम्मट के अनुसार एक अथवा अनेक व्यञ्जन की आवृत्ति अनेक बार हो वहाँ वृत्यानुप्रास होता है-

एकस्याप्य सकृत्परः

एकस्यऽपि शब्दादनेकस्य व्यञ्जनस्य द्विर्बहुकृत्वो वा सादृश्यं वृत्यानुप्रासः।[1]

ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ।। (वा0रा0 2/16/11/2)

निराकारा निरानन्दा दीना प्रति हतस्वना।। (वा0रा0 2/113/25/2)

ततः क्षणान्तरमेव भृत्या रथं समानिन्युरमेय वेगम्।

हयैश्चतुर्भिर्युतमुत्पताकं मुहुः क्वणत्काञ्चन किङ्.णीकम्।। (जा0जी0 1/10)

यमक— सत्यर्थे भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम्।।[2]

जहाँ भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति हो वहाँ यमक अलंकार होता है।

रटानिशं जीवनं शुभे! भवत्यनेनैव तवाभिनन्दनम्।

इतीव चामीकरपञ्जराश्रिता रसाक्त वाचं निजभावशंसिनीम्।। (जा0जी0 2/22)

श्लेष—

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद् भाषण स्पृशः।

श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[3]

अर्थात् अर्थ भेद के कारण एक शब्द श्लिष्ट रूप में प्रयुक्त हो वहाँ श्लेष अलंकार होता है-

अये सा कीदृग्भविता स्मरोपमो मदंगमाध्वीरसिको मधुव्रतः।

विचिन्तयन्तीत्थमिदं मदालसा रतिप्रभा सा शयनांकमागता।। (जा0जी0 3/37)

वाष्पेण पिहितं दीनं रामः सौमित्रणा सह।

चकर्षेव गुणैर्वद्धं जनं पुरनिवासिनम् ।। (वा0रा0 2/45/12)

गुण— (1) रस्सी (2) व्यक्ति आश्रित विशिष्ट गुण।

(1) काव्य प्रकाश 9/107 (2) वही 9/117 (3) वही 919

एषा धर्म परिक्लिपटा नववारि परिप्लुता।

सीतेव शोक संतप्ता मही वाष्पं विमुञ्चति।।

वाष्प– (1) नेत्रजल (2) ऊष्मा

उपमा– साधर्म्यमुपमा भेदे। पूर्णा लुप्ता च।

साऽग्रिमा। श्रोत्यार्थी। च भवेद्वाक्ये समासे तद्धिते तथा।।[1]

उपमा तथा उपमेय का भेद होने पर गुण धर्म या क्रिया की समानता का जहाँ वर्णन किया जाये वहाँ उपमा अलंकार होता है।

तस्येषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः।

परिभ्रमति राजश्री नौंरिवा कर्णिका जले।। (वा0रा0 2/81/6)

सा पद्मपीता हेमाभा रावणं जनकात्मजा।

विद्युद घर्नाभवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा।। (वा0रा0 3/52/24)

बालिशस्तु नरोनित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते।

स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले।। (वा0रा0 4/7/10)

प्रवृद्ध गात्राऽप्यनुविद्धशैशवा गभीर भावाऽप्यविचार्य जल्पिनी।

वभौ द्वयोर्यौवन बाल्ययोरियं विनोद खेलास्थलिकेव कामिनी।। (जा0जी0 3/17)

रूपक– उपमेय उपमान का अभेदरहित आरोप रूपक कहलाता है–

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[2]

जलाधाताट्टहासोग्रां फेन निर्मल हासिनीम्।

कव्चिद् वेणीकृत जलां कव्चिदावर्तशोभिताम्।। (वा0रा0 2/50/16)

न त्वां रामो विजानीते सर्व नाण्डूकराविणम्।। (वा0रा0 4/34/15/2)

अवगाढ़ः सुदुष्पारं शोक सागरम् ब्रवीत्।।

रामशोक महावेगः सीता विरह पारगः।

श्वसितोर्मिमहावर्तो बाप्पवेगजलाविलः।।

बाहुविक्षेपमीनोऽसौ विक्रन्दित महास्वनः।

प्रकीर्ण केशशैवालः कैकेयी बडवामुखः।।

---

(1) काव्य प्रकाश 10/125-27 (2) वही 10/139

ममाश्रुवेग प्रभवः कुब्जा वाक्य महाग्रहः।

वरबेलो नृशंसाया राम प्रवाजनायतः।।

यस्मिन् वत निमग्नोऽहं कौशल्ये राघव विना।

दुस्तरो जीवता देवि ममायं शोक सागरः।। (वा0रा0 2/59/28-32)

विनष्ट चापल्यशुका खलीभवन् निरर्गलाभोदपरम्परालता।

वनस्थलीव प्रसभं विदेहजा धृता मृगत्यप्रिय यौवनेन किम्।। (जा0जी0 3/19)

उत्प्रेक्षा— सम्भवावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन् यत्।[1]

जहाँ प्रकृत वस्तु की सम के साथ सम्भावना प्रकट की जाये वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा।। (वा0रा0 2/20/49/2)

सन्ध्यारागोत्थितैस्ताभ्रैरन्तेष्वचि च पाण्डुभिः।

स्निग्धैरभ्रपटच्छैदैर्बद्धव्रणाभिवाम्वरम्।। (वा0रा0 4/28/5)

प्रदीपहाराबलिराजिता पुरी नवा वधूतीव दधेऽवगुण्ठनम्।

समुल्लसत्स्थासक चारू कल्पनैर्नखक्षतानि प्रकटं विरेजिरे।। (जा0जी0 2/4)

ससन्देह— सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान सन्देह अलंकार हैं-

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः।

ह्रीःश्रीःकीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने।[2]

भूतिर्वात्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैर चारिणी।। (वा0रा0 3/46/17)

का त्वं भवसि रूद्राणां मरूतां वा शुचिस्मिते।।

वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे।। (वा0रा03/46/27,28)

कुवेलमास्ये करयोश्च पल्लवं जपासुमञ्चापि कपोल मण्डले।

रदच्छदे विम्वफलं दधाद्विधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्।। (जा0जी0 3/53)

निदर्शना— जहाँ पदार्थो का अनुपद्यमान सम्वन्ध की कल्पना की जाये वहाँ निदर्शना अलंकार होता है-

---

(1) काव्य प्रकाश 10/137 (2) काव्य प्रकाश 10/138

अभवन् वस्तु सम्वन्ध उपमा परिकल्पकः।[1]

अयोमुखानां शूलानामग्रेचरितुमिच्छसि।

रामस्य सदृशीं भार्या योऽधिगन्तुंत्वमिच्छसि।। (वा0रा0 3/47/44)

किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र, कस्ते न संतिष्ठतिवाङ्. निदेशे।

कः शुष्क वृक्षं वनमापततन्तं, दावाग्निमासीदति निर्विशंकः।। (वा0रा0 4/33/41)

प्राप्तस्तथापि यदहं ननु सत्य सन्धं, स्यात्तस्य कोऽपि सुमहान स्पृहणीयहेतुः।

जातीप्रसून विकला यदि माधवेस्था, न्निश्चप्रचंविजयते गिरिशाभिशापः।। (जा0जी04/17)

प्रतिवस्तूपमा— प्रतिवस्तूपमा तु सा।। सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः।[2]

जहाँ उपमेय तथा उपमान वाक्यों में एक ही धर्म की आवृत्ति हो वहाँ प्रतिवस्तु उपमा अलंकार होता है।

विना हि सूर्येण भवेत् प्रवृत्ति-,श्वर्षता वज्रधरेण वापि।

रामं तु गच्छन्तमितः समीक्ष्य, जीवेन्न कश्चित्विति चेतना में।। (वा0रा0 2/112/104)

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिंम त्यजेत्।

अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।। (वा0रा0 2/112/18)

प्रभातकुन्द संकोचा लोलवत्सतरीगतिः।

त्रपाभारनिरुद्धाऽपि कान्तानुनयचंचला।।

शनैस्तदंकमासाद्य न किञ्चिदपि कुर्वती।

अमन्दानन्द सन्दोहं लेभे प्रियतमोद्यमैः।। (जा0जी0 9/62, 63)

दृष्टान्त— दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिविम्बनन्।।[3]

जहाँ उपमेय तथा उपमान के साधारण धर्म में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त होता है।

अभिजात्यं हि ते मन्ये यथा, मातुस्तथैव वचः।

न हि निम्बात् स्रवेत क्षौद्रं लोके निगदितंवचः।। (वा0रा0 2/35/17)

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।

नापतिः सुखमेधेन या स्यादपिशतात्मजा।। (वा0रा0 2/39/29)

(1) काव्य प्रकाश 10/149 (2) काव्य प्रकाश 10 154 (3) काव्य प्रकाश 10/155

न जानकी मानव वंश नाथ, त्वया सनाथा सुलभा परेण।

न चाग्नि चूडां ज्वलितामुपेत्य, न दह्यते वीर वरार्ह कश्चित्।। (वा0रा0 4/30/18)

तथाप्यस्ति चिन्त्यं ममैतावदेत स्वयं मानस किन्न जातं विरक्तम्।

निसर्गं खलीकृत्य किञ्चिन्न लोके क्षणं शोभते जीवितं वा जडं वा।।(जा0जी0 10/7)

दीपक– उपमेय और उपमान वस्तुओं के क्रियादि रूप धर्म का एक बार वर्णन हो वहाँ दीपक अलंकार होता है अर्थात बहुत सी क्रियाओं के कारक जहाँ एक हो वहाँ दीपक माना जाना चाहिये–

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।।[1]

सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्।।

वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः।

आत्मा सुखे नियोक्तयः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः।। (वा0रा0 2/105/31)

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च।

समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयेत भृशम्।। (वा0रा0 3/3/15)

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं, ननन्दं चिक्रीड जगौ जगाम।।

स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ, निदर्शयन्स्वां प्रकृतिं कपीनाम्।। (वा0रा05/10/54)

प्रस्तुतस्तनिका नवागृष्टिर्यथा क्षीरमुद्गिरति स्वयं वत्साशया।

मेदिनी रघुनाथ शौर्योल्लासिता सा बभौ फलमूलसस्याच्छदिता।। (जा0जी017/2)

भ्रान्तिमान– भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने।[2]

जहाँ अप्रस्तुत के तुल्य प्रस्तुत का दर्शन होने पर अप्रस्तुत की प्रतीति का वर्णन हो वहाँ भ्रान्तिमान होता है। यह प्रतीति समानता पर आधारित है–

मार्गानुगः शैलवनानुसारी, सम्प्रस्थितो मेधरवं निशम्य।

युद्धाभिकामः प्रतिनादकी, मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः।। (वा0रा04/28/32)

रावणाननशंकाश्च काश्चिद रावणयोपितः।

मुखानि च सपत्नीना मुपाजिध्रन पुनः पुनः।। (वा0रा05/9/57)

---

(1) काव्य प्रकाश 10/156 (2) काव्य प्रकाश 10 200

समाकर्ण्य मर्मच्छिदं वाग्विकल्पं विवेकप्रदीपं रुषा निर्वपन्ती।

मुधा कुर्वती दोरके सर्पबुद्धिम् अभूतकैकेयी मन्थरारूढभत्या।। (जा0जी10/41)

कदाचित्सान्ध्य वेलायां सा पश्यन्त्यात्मनश्छविम्।

आलिलिंग प्रियं भीत्या मणिस्तम्भेऽन्यशंकया।। (जा0जी09/45)

अपह्नुति— प्रकृतं यान्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः।[1]

जहाँ उपमेय को असत्य (निषेध) कहकर उपमान को सत्य रुप में स्थापित किया जाये।

नानामृगगणैः कीर्णं धातुनिष्यन्द भूषितम्।

बहुप्रसवणोपेतं शिला संचय संकटम्।। (वा0रा05/56/35)

अप्रस्तुत प्रशंसा— जहाँ प्रस्तुत की प्रशंसा से वर्णनीय वस्तु की प्रतीति करायी जाये वहाँ अप्रस्तुत प्रसंसा अलंकार माना जाता है-

अप्रस्तुत प्रशंसा या सा सैव प्रस्तुतश्रया।।[2]

कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेष प्रस्तुत सति।

तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पंचधा।।

(क) कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरूषा हि ये।

कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषड़िन्द्रियाः।। (वा0रा03/30/15)

(ख) सा बाहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम्।

अहं श्रोष्ये सपत्नीनाम वराणां परा सती।।

अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति।

मम शोको विलापश्च यादृशोऽयन्तकः।। (वा0रा02/20/39-40)

अतिशयोक्ति— निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्।[3]

प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।।

कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्य विपर्ययः।

विक्षेयाऽतिशयोक्तिः सा।।

उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण करके उसके साथ कल्पित अभेद का निश्चय कराया जाये उसे अतिशयोक्ति जानना चाहिये।

(1) काव्य प्रकाश 10/146 (2) वही 10 151-52 (3) वही 10 153

न चिन्तयाम्यहं वीर्याद् बलवान् दुर्बलानिव।

तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयेयं नभस्तलात्।। (वा0रा03/23/20)

यज्ञ क्रियाभिरखिले दिवसे निशायां नानाविधैरभिनयैर्नटनृत्य नृत्तैः। (जा0जी020/28)

पौराणिकाऽमृत कथाभिरथोपदेशैः प्रज्ञार्षिणां न गणितोद्युनिशोः प्रभेदः।। (20/28)

तुल्योगिता– नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्योगिता।।[1]

जहाँ उपमेय तथा उपमान के साधारण धर्म का एक बार वर्णन किया जाये वहाँ तुल्योगिता होती है-

(क) अदृश्यमाना वैदेही शोकं वर्धयतीह मे।। (वारा04/1/34/2)

(ख) दृश्यमानो वसन्तश्चस्वेद संसर्ग दूषकः।। (वा0रा04/1/35/1)

(ग) दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यश्यमन्यत।। (वा0रा05/9/32)

(घ) वाटिका हिमलुप्त पत्रा नीरवा पक्षि कौतुक वञ्चिता ध्वस्तोत्सवा।
वैभवं तनुते यथा वासन्तिकं पुष्प कोरकमञ्जरीगन्धाश्रितम्।।
भग्न सौधसुखाऽत्ययोध्या साम्प्रतं राघवेन्द्र समागमैर्ज्योतिष्मती।
हर्ष सिन्धु विलोलवीचीनर्तनैर्यौर्वनं समवाप साविप्नड्मुखम्।।(जा0जी017/19-20

व्यतिरेक–जहाँ उपमान की उपेक्षा उपमेय के गुण विशेष या उत्कर्ष का वर्णन किया जाये वहाँ व्यतिरेक होता है-

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।[2]

(क) नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी।
तथारुपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले।। (वा0रा03/34/18)

(ख) नूपुरोत्कृष्ट लीलेव खेलं गच्छति भामिनी।
इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्यतभूषणा।। (वा0रा02/60/19)

(ग) शिविर्दधीचो न च रन्तिदेवः प्रथुर्नृगो वा नहुषाम्वरीषौ।
न केऽपि जग्मुर्जनक प्रतिष्ठा प्रजानुराग प्रसरावदाताम्।। (जा0जी01/36)

विभावना– क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।।[3]

(1) काव्य प्रकाश 10/158 (2) वही 10/159 (3) वही 10 162

जहाँ कारण का प्रतिषेध होने पर भी फल की उत्पत्ति का कथन हो वहाँ विभावना अलंकार होता है।

अलक्त रस रक्तामवलक्त रस वर्जितौ।

अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोश समप्रभौ।। (वा0रा02/60/18)

विशेषोक्ति—जहाँ प्रसिद्ध कारणों के मिलने पर भी कार्य उत्पत्ति का कथन नहीं किया जाता वहाँ विशेषोक्ति मानी जाती है-

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।[1]

सा त्रियामा तदार्तस्य चन्द्रमण्डल मण्डिता।

राज्ञो विलपमानस्य न व्यभाषत शर्वरी।। (वा0रा02/13/15)

यथासंख्य—जहाँ किसी क्रम से उक्त पदार्थो का वर्णन किया जाये उसी क्रम से उसके साथ अन्य वस्तुओं का उल्लेख हो वहाँ यथासंख्य होता है-

यथासंख्यं क्रमणैव क्रमिकाणां समन्वयः।।[2]

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।

नद्यो धना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः पल्वंगमाः।। (वा0रा04/28/27)

अर्थान्तरन्यास—सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।[3]

यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेणवा।।

जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न (सामान्य या विशेष) का समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है-

(क) सुतेयं पत्नीयं भवनवधुकेयं च भगिनी।

ननान्देयं श्वश्रूस्तनदयितेयं च जननी।

सखी नप्त्री पौत्री किमधिक महो गौरवपदं

न किं धत्ते कन्या द्रुहिण रचनायामनुपमा।। (जा0जी08/80)

(ख) सोऽहं त्वामगतो द्रुष्टं प्रस्थितो विजनं वनम्।

भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन।।

ऋद्धियुक्ता हिपुरूषा न सहन्ते परस्तवम्।

तस्यान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम।। (वा0रा02/26/24-25)

---

(1) काव्य प्रकाश 10/163 (2) वही 10/164 (3) वही 10 165

विरोधाभास– विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।[1]

जातिश्चतुर्भि र्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणस्त्रिभिः।।

क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दशा।

जहाँ विरोध न होने पर भी दो विरुद्ध वस्तुओं में समानता का वर्णन किया जाये वहाँ विरोधाभास होता है।

(क) एषपुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः।

तां विचिन्तयतः कान्तां पावक प्रतिभो मम्।।

कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोक वर्धनः। (वा0रा04/1/53,59)

स्तवकेः पवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निव मां स्थितः।।

(ख) दिने दिने सा ववृधे प्रभामयी ह्यलोक सामान्य विकासयीयुषी।

अपेक्षते स्नेहममन्द दीपिका न वैधसी दूद्यकला चिरन्तनी।। (जा0जी02/10)

(ग) गुतार्धसुप्तिं विनिमीलितेक्षणा घनान्धकोरष्वपि भूरिदर्शना।

व्यतर्कयद् वारिरुहेक्षणं प्रियं कदापि तन्वी कमपि स्वयंवृतम्।। (जा0जी03/33)

स्वाभावोक्ति– स्वाभावोक्तिस्तु डिम्मादेः स्वक्रियारुपवर्णनम्।।[2]

जहाँ उपमेय का स्वाभाविक या उससे आश्रित वस्तुओं का वर्णन किया जाये वहाँ स्वाभावेक्ति होती है।

स्दृशन सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।

अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम्।। (वा0रा03/16/22)

काव्यलिंग– काव्यलिंग हेतोर्वाक्य पदार्थता।।[3]

जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में (किसी अनुपपन्न अर्थ का उपपादक) हेतु कहा कहाँ, जहाँ हो वहाँ काव्यलिंग होता है।

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राधवे समं जनो हर्पमवाप दुःखितः।

न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत् स्थिर प्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः।। (वा0रा02/106/34)

प्रतीप– जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बनाया जाता है या उपमान को निष्फल कहा है वहाँ प्रतीप अलंकार होता है–

---

(1) काव्य प्रकाश 10/166-67 (2) वही 10/168 (3) वही 10 174

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।।[1]

निष्फलत्वभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते।

पद्मकेशर संसृष्टो वृक्षान्तरविनिः सृतः।

निःश्वास इव सीतया वाति वायुर्मनोहरः।। (वा0रा04/1/72)

परिकर– विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।[2]

जहाँ साभिप्राय युक्त विशेषणों का प्रयोग हो ऐसी उक्तियाँ परिकर के अन्तर्गत होती हैं।

सोऽहं भवन्तवनीश! समागतोऽम्, तन्नाशनाय भवत नयौ हि नेतुम्।

हेमन्त जात जड़िमानमपोह्य लोकं, पातुं प्रभून सुहृदौमधुमाधवौ किम्।। (जा0जी04/20)

सम– समं योग्यतया योगो यदि सम्भावितः क्वचित्।[3]

अस्या देव्या यथारूपमंगप्रत्यंग सौष्ठवम्।

रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा।। (वा0रा05/15/51)

मीलित– जहाँ स्वाभाविक अथवा कारण विशेष के द्वारा उत्पन्न किसी साधारण चिन्ह से एक वस्तु अन्य द्वारा तिरोहित की जाती है अर्थात् जहाँ कोई वस्तु समान गुण या धर्म के कारण दूसरे वस्तु से मिल जाती हो वहाँ मीलित अलंकार होता है–

समेन लक्ष्मणा वस्तु वस्तुना यन्निगूह्यते।[4]

निजेनागन्तुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम्।।

अहं निलीये जल एव साम्प्रतं विमार्गयध्यवं ननु मां यथेच्छितम्।

निमज्ज्य तूर्णं क लहंसमण्डले कृताश्रयेत्य विलक्ष्यतांगता।। (जा0जी02/26)

एकावली– स्थाप्तेऽपोह्यते क्वापि यथापूर्वं परं परम्।[5]

विशेषण तथा यत्र वस्तु सैकावली द्विधा।।

जहाँ पूर्व वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर वस्तु विशेषण के रूप में स्थापित की जानी हो या निषिद्ध की जाती हो वहाँ एकावली होता है।

(क) महीकृता पर्वतराजिपूर्णा शैलाः कृता वृक्षवितान पूर्णाः।

वृक्षाः कृताः पुष्पवितान पूर्णाः पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम्।। (वा0रा05/7/9)

---

(1)साहित्य दर्पण-विश्वनाथ 10/87 (2)काव्य प्रकाश 10/183 (3)वही 10/193 (4)वही 10/197 (5) वही 10/198

(ख) क्वच्चिद् विश्रब्धतया समागतान् कपोतपोताञ्जलदांशन्निभान्।

निबद्धमुष्टि प्रविकीर्णताण्डुलैस्समाजयन्ती ददृशे कुटुम्बिभिः।। (जा0जी0 2/17)

निष्कर्ष यह है कि अलंकार शास्त्र के निर्माण के पूर्व ही वाल्मीकि रामायण की रचना हो चुकी थी, वैसे भी शास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्धारण उदाहरण देखकर ही होते हैं। आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है। कवि वाल्मीकि को अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अधिक पसन्द हैं क्योंकि अनुप्रास में जो नादात्मकता प्राकृतिक चित्रांकन के परिपेक्ष्य में मिलती है उसी प्रकार अर्थगौरव के लिये उपमा, रूपक, हेतु प्रयुक्त उपमान अत्यन्त सार्थक प्रतीत होते हैं। कवि ने सायास या परम्परा की पूर्ति हेतु इन अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। कथा के क्षेत्र विस्तार, आयाम या औदात्त के कारण प्रयुक्त अलंकार स्वाभाविक प्रतीत होते हैं जबकि राजेन्द्र मिश्र कवि होने के साथ ही साथ आचार्य एवं काव्यशास्त्र मर्मज्ञ हैं अतः जानकी जीवन में अलंकारों का जहाँ एक ओर सुष्ठु प्रयोग हैं वहीं चमत्कार मूलक अलंकारों की प्रचुरता है। अनेक अलंकार प्रयत्न पूर्वक प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं।

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् में गुण विधान

आचार्य राजशेखर ने काव्य शरीर की चर्चा करते हुये उसकी आत्मा का उल्लेख किया है और इस प्रकार भारतीय काव्य साहित्य जगत में काव्यात्मा हेतु अनेक तत्व या सम्प्रदाय सामने आये जिसमें सर्वाधिक महत्ता रस को मिली। रस रूप आत्मा के काव्य शरीर के लिये अनेक उत्कर्ष विधायक अंगों की चर्चा की गई जिसमें आचार्यो ने गुण को रस का स्थायी धर्म कहा है। साहित्य दर्पणकार ने रसोत्कर्षक गुणों की व्याख्या करते हुये लिखा है कि "जिस प्रकार धीरता, शूरवीरता मनुष्य के आन्तरिक गुण होते हैं उसी प्रकार काव्य के ये गुण रस रूप आत्मा के सौन्दर्य विधायक ठहरते हैं।"

रसस्थांत्विमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो तथा।[1]

गुणाः माधुर्य्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा।।

"आचार्य वामन" के अनुसार काव्य शोभा विधायक धर्म ही गुण है।

काव्यशोभायाः कर्तारोधर्माः गुणायः।[2]

(1) साहित्य दर्पण 8/1 (2) काव्यालंकार सूत्र 3/1 1 1

इसी प्रकार आनन्दवर्धन ने रस ध्वनि को काव्य का सर्वोपरि तत्व मानकर गुणों की महत्ता स्वीकार की है।[1]

सारांश यह है कि गुण काव्य के उत्कर्ष साधक तत्व हैं ये वर्ण संघटना, शब्द योजना, शब्द चमत्कार एवं अर्थ सौरस्य में सहायक होते हैं। आचार्य भरत ने श्लेष, प्रसाद, समता, मधुरता, सुकुमारता, अर्थाभिव्यक्ति, उदारता, कोटि, ओज एवं समाधि गुणों की चर्चा की है।[2]

इस तरह वाह्य आभ्यान्तर एवं वैशेषिक भेदों के आधार पर भोज ने बहत्तर गुणों की चर्चा की है।[3] किन्तु परवर्ती विवेचकों ने इन्हें तीन की संख्या में समेटने का प्रयास किया है, ये तीन गुण माधुर्य, ओज, प्रसाद हैं। वस्तुतः यह तीन गुण चित्त की तीन वृत्तियों से अलग-अलग सम्बन्धित हैं। माधुर्य में द्रवणशालीता या द्रुति, ओज में उत्तेजना एवं प्रसाद में प्रसन्नता अनस्यूत रहती है। यहाँ हम क्रमशः आलोच्य काव्यों में प्राप्त माधुर्य, ओज एवं प्रसाद के उदाहरण देने के पूर्व इनका शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करेंगी।

माधुर्य गुण

चित्त को आनन्द से द्रवीभूत करने वाले इस काव्य गुण के लिये दीर्घ समास एवं कटु वर्ण वर्जित कहे गये हैं। विश्वनाथ ने लिखा है-

चित्त द्रवी भावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते। सा0द0 8/1

मम्मट के अनुसार श्रृंगार, करूण एवं शान्त रसों में माधुर्य गुण उत्कर्ष वर्धक माना गया है।

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु[4]
गवां समूहेषुः च दर्वितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नमासु
विभाति लक्ष्मी र्वहुधा विभक्ता।।
मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः
पुष्पतिभारा वनताग्रशाखैः।
सुवर्ण गौरेर्नयनाभिरामै
रुद्योतितानीव वनान्तराणि।।

---

(1) ध्वन्यालोक 2/6 (2) नाट्य शास्त्र 17/95 (3) सरस्वती कण्ठ भरण 1 60-65 (4) वा.रा.4/30 32,34,4S

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं

महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।

घनैर्विमुक्तं निशि पूर्वचन्द्रं

तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम्।।

ननन्द दृष्ट्वा स च तान् सुरूपान्[1]

नानागुणानात्मगुणानुरूपान्।

विद्योतमानान् स च तान् सुरूपान्

ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान्।।

जानकी जीवन में सीता के वृद्धिमगत सौन्दर्य वर्णन में माधुर्य गुण बिखरा पड़ा है-

रतिप्रवीजाङ्.कुर युग्म सन्निभौ पयोधरौ वक्षसि वीक्ष्य वर्धितौ।[2]

विदूरकन्दर्प कथा व्यथालसा दुरन्तनैलक्ष्यमवाप जानकी।।

नितम्बगुर्वी विनतांस सौष्ठवा सुमध्यमा चारू चकोर लोचना।

वशागतिचन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वज कन्यका न कम्।।

उपर्युक्त उदाहरणों में अनुस्वार या कोमल वर्णो की प्रधानता है। अल्प समास प्रयुक्त वर्णो से माधुर्य गुण हृदय को आह्लादित कर देता है।

ओज गुण

यह वह गुण है जिससे चित्त में स्फूर्ति आ जाये और मन में तेजस्विता भर जाये। विश्वनाथ ने इस हेतु दुत्व, संयुक्त, रेफ युक्त, तवर्ग, दीर्घ ससमास क्लिष्ट वर्ण संघटना पर बल दिया है। विश्वनाथ के अनुसार- सा0द0 8/2

ओजस्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।।

वीर वीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।

मम्मट ने इसकी स्थिति वीर रस, वीभत्स एवं रौद्र में क्रमशः अधिक रूप में बताया है।[3]

गीतोऽयं ब्रह्माणाश्लोकः सर्वलोकन नमस्कृतः।[4]

दृष्ट्वा कृतघ्नं कुद्धेन तन्नि बोधप्लवंगम।।

---

(1) वही 5/5/16 (2) जा.जी.3/6-7 (3) काव्य प्रकाश पृष्ठ सं.389 (4) वा.रा.5/34/11,12

गोघ्ने चैव सुरापे च पौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सिद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।

युगान्तकालानल तुल्यरूपः
समारुतोऽग्निर्ववृधो।[1]
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो
रक्षः शरीराज्य समर्पितार्चिः।।

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा
साक्षाद् यमो वा वरुणाऽनिलो वा।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः।।

किं ब्रह्मणः सर्वापितामहस्य
लोकस्य धातुश्चतुराननस्य।
इहागतो वानर रूपधारी
रक्षोपसंहारकरः प्रकोप।।

विभीषण विबोधितः प्रबल रोष सम्मूर्च्छितो,[2]
ज्वलन्मुखमहीधर प्रतिमविग्रहो लक्ष्मणः।
मरुत्सुतवलांगद प्रभृतिभिर्वृतस्तत्क्षणं,
चचाल स निकुम्भिला सपदि राघवा शीर्युतः।।

ततो गिरिशिलोच्चयै र्विटापिभिस्समुत्पारितैः
प्रहृत्य कपयो द्रुतं दशमुखात्मजं मिम्यिरे।
विलोक्य रचमनोरथं विफलितं ज्वल्लोचनं
जगाद किल लक्ष्मणः कितव! पौरुषं दर्शय।।

विगूह्य तनुमात्मनः प्रहरसींह नोते त्रया
दिनस्सि खल! मैथिली वितथमा यया निर्मिताम्।
अथाद्य तव कौशलं हनुज! लोकयिष्ये
पुरन्दरजय ध्वजं प्रथित विक्रमं रावणे।।

(1) वा.रा.5.54/32,35,36 (2) जा.जी.14.67-69

प्रसाद गुण

दण्डी के अनुसार "प्रसिद्ध अर्थ में शब्द का प्रयोग जिसे सुनते ही अर्थ समझ में आ जाये प्रसाद गुण कहलाता है।"[1]

मम्मट ने सभी रसों में रहने वाले गुण को प्रसाद गुण माना है।[2]

आचार्य विश्वनाथ की मान्यता है कि प्रसाद गुण चित्त में शीघ्र व्याप्त हो जाने से सभी रसों में रह सकता है। सरल और सुबोध पद प्रसाद के व्यंजक होते हैं।[3]

चित्त व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमविनाल।
सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचना सु च।।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूखे ईंधन में अग्नि का प्रकाश और स्वच्छ कपड़े में अर्थ का प्रकाश जगमगा उठता है उसी प्रकार प्रसाद गुण में अर्थ अनायास ही चित्त को द्रवीभूत कर उसे आप्यायित कर लेता है। निष्कर्षतः अर्थ की स्पष्टता अथवा सुबोधता का महत्व काव्य रचना में सर्वोपरि है और काव्यकार प्रसाद गुण की संयोजना से ही इसका सम्पादन करने में समर्थ होता है। वाल्मीकि ने रामकथा और कथेतर अवान्तर प्रसंगों में भी इस गुण का सफल प्रयोग किया है कुछ उदाहरण दृष्ट्व्य हैं-

अदृष्टरूपास्तास्तेन काम्यरूपा वने स्त्रियः।[4]
हार्दत्तस्यमतिर्जाता आख्यातुं पितरं स्वकम्।।

पद्मपत्रविशालाक्षौखंगतुणीधनुर्धरौ।[5]
अश्विनाविप रूपेण समुपस्थित यौवनौ।।

यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवाभरौ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थ कस्य वा मुने।।

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।[6]
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनी।।
समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामल वर्णिनी।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी।।

---

(1) काव्यादर्श 1.45 (2) काव्य प्रकाश पृष्ठ सं.390 (3) साहित्य दर्पण 8/8 (4) वा.रा.1/10/13 (5) वही 1.50/18,19 (6) वही 3/18/9,10

मत्त प्रमत्तानि समाकुलानि

रथाश्वभद्रासन संकुलानि।[1]

वीरश्रिया चापि समाकुलानि

ददर्श धीमान् स कपिः कुलानि।।

तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि रामायण की कथा जन प्रचारार्थ कुशी लवों के द्वारा गयी गयी है इसीलिये कवि ने माधुर्य गुण का सर्वत्र ध्यान रखा है। जानकी जीवन की कथा ललित कथा या श्रृंगार प्रधान कथा है अतः इसमें माधुर्य गुण के बाद यदि किसी को स्थान मिला है तो प्रसाद गुण है। यह प्रसाद गुण जानकी जीवन में आद्यान्त दिखाई पड़ता है कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

कनीनिकासीकरपूतवाग्भिर्निवेद्य दैन्योपहतार्पितानि।[2]

इतीव भूजानिरियाय जोषं श्रुतिव्यथो भावदसौ मनस्वी।।

सीता जन्म के समय समुद्र ज्वार रूपी उत्साह का वर्णन कवि ने प्रसाद गुण से युक्त पदावली में किया है-

प्रदीपहारावलि राजितापुरी नवा वधूतीव दधेऽवगुण्ठनम्।[3]

समुल्लसत्स्थासक चारु कल्पनैर्नखक्षतानि प्रकटं विरेजिरे।।

विवाहोपरान्त देवर-भाभी और बहनों में जो हर्ष, उल्लास, व्यंग्य वचन विदग्धता और मधुर भाव व्यंजित हुये हैं उनमें प्राप्त प्रसादमयता पाठक को आह्लादित करती हैं-

मदर्थं तेऽग्रजेनैव भग्नं शिवशरासनम्।[4]

भनक्षि हृदयं तस्या ईदृशोऽसि महाबलः ?।।

एवभार्यावचोयुक्त्या सिद्धमैथिल गौरवा।

उर्मिलाऽपि जहासोच्चैस्ताल शब्द विक्तस्वरा।।

इसी प्रकार सीता निर्वासन के समय वशिष्ठ ने जिस गलदश्रु भावाकुल भाषा में सीता को निर्दोष सिद्ध किया है। कवि राजेन्द्र मिश्र ने प्रसाद गुणोपेत भाषा का प्रयोग इस प्रकार किया है-

हे राम! हे राघव! दीन बन्धो! क्षमास्व मां देव! कृतापराधम्।[5]

आयोध्यका जानपदाश्च सर्वे यूपं क्षमध्वं रजकं व्यथार्तम्।।

---

(1) वही 5/5/10 (2) जा.जी.1/22 (3) जा.जी.2/4 (4) वही 9/76,77 (5) जा.जी.18 96,97

न मेऽक्षरज्ञानमकुण्ठसुर्प्तेर्न चापि विद्वज्जन साधु संगः।

न वंश संस्कार इहास्मि जातो जन्तुः पृथिव्यां रजकभिमानी।।

कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण लक्ष्य ग्रन्थ हैं अतः इसमें ओज, प्रसाद, माधुर्य का पुष्कल प्रयोग हुआ है कवि ने भावानुकूल भाषा के अनुरूप तीनों का सफल प्रयोग किया है। प्रकृति वर्णन, शृंगार एवं करूण स्थलों में माधुर्य गुण की चरम सीमा दिखाई देती है, तो वीर रस सम्वन्धी स्थलों में ओज गुण जीवन्त हो उठा है। वाल्मीकि के सामने कथा का विवेचन बिना किसी आग्रह के था इसलिये इसमें सभी गुण सर्वत्र-रामकथा एवं कथेतर घटनाओं में मिल जाते हैं। जबकि जानकी जीवन की कथा एक निर्दिष्ट लक्ष्य लेकर लिखी गई है अतः इसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुण की अधिकता है। कवि राजेन्द्र मिश्र का मन शृंगार, दाम्पत्य और उसके मधुर रूप की व्यंजना में अधिक रमा है। वीर रस प्रधान स्थलों में जिस कर्णकटु संयुक्त रेफ प्रधान शब्दावली से ओजगुण मूर्तिमन्त हो उठता है उसका अभाव यह रचना प्रसादमयता के लिये स्मरण की जायेगी।

आलोच्य काव्यों में रीति एवं वृत्तियाँ

रीड्.ग गतौ धातु से निष्पन्न रीति शब्द मार्ग एवं गमन के अर्थ मै प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत काव्य शास्त्र के "आचार्य वामन" ने "रीतिरात्मा काव्यस्य"[1] में रीति को काव्य की आत्मा कहा है। उनके अनुसार पद संघटना पद्धति विशेष का नाम रीति है-"विशिष्ट पदरचना रीतिः"[2]

आचार्य दण्डी के अनुसार काव्य के दो मार्ग कहे गये हैं-वैदर्भी एवं गौणी किन्तु कवि आश्रित होने पर इनके अनन्त भेद हो जाते हैं। भोज ने रीति शब्द के अनेक अर्थ बताये हैं-गति, चाल, पन्थ, मार्ग, पद्धति, प्रणाली, शैली, ढ्ंग, परम्परा आदि। कुन्तक ने रीति के स्थान पर परम्परित मार्ग शब्द का प्रयोग किया है। तात्पर्य यह है कि काव्यात्मा के रूप में रीति का प्रचलन पद्धति विशेष रूप में होता रहा है। मुख्य रूप से वैदर्भी, गौणी और पांचाली तीन रीतियों की सर्वमान्य चर्चा है।

1. <u>वैदर्भी रीति</u>-वैदर्भी रीति में माधुर्य गुण व्यंजक शब्दों का प्रयोग होता है, इसमें मस्रणता का प्रामुख्य रहता है। दीर्घ समास मुक्त वाक्यांसों, टवर्ग, दुत्व एवं संयुक्त शब्द

(1. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 1/2/6 (2) वही 1/2/7

अवांक्षनीय माने जाते हैं। साहित्य दर्पण में विश्वनाथ ने लिखा है-

माधुर्य व्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।[1]

आवृत्तिरूप वृत्तिर्वा वैदर्मी रीतिरिष्यते।।

वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवन के कुछ उदाहरण दृष्ट्व्य हैं-

सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः।[2]

विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रुष्टुं समागतः।।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामः सत्य पराक्रमः।

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजिताः।।

प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ रामलक्ष्मणौ।

सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकांक्षिणौ।

धनुर्दर्शय रामाय राज पुत्राय दैविकम्।।

चन्द्रांशुकिरणा भाश्च हाराः कासांचिदुप्गता।[3]

हंसा इव बमुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम्।।

अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः।

हेनसूत्रणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन्।।

पद्आनना पद्मपलाश नेत्रा

पद्मानि वा नेतुनाभिप्रयाता।[4]

तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचि-

न्यया विना गच्छति पंकजानि।।

कानं त्विदं पुष्पित वृक्षपण्डं

नानाविधैः पक्षि व्रणैरूपेतम्।

वनं प्रयाता तु तदप्ययुक्त-

मेकाकिनी सतिबिभेति भीतः।।

---

(1) साहित्य दर्पण 9/2 (2) वा.रा.2/118.44-46 (3) वही 5.9 43.79 (4) वा.रा.3 [illegible]

वाता वहन्ति नितरां सुमगन्ध वाहा,[1]
मेघाश्यवन्ति भुवि सम्भूत वारि धाराः।
किं वाऽधिकेन रघुनन्दन! लोकपाला-
स्सर्वेऽपि भूरिविभवैस्त्वयि कामयन्ते।।

कनक चम्पक गुल्मग्रहाजिरे शरणमेत्य समेत्य रघूद्वहौ।[2]
अथ निपान समीप वनालये ददृशतुर्युवति व्रजमेधितम्।।
बकुल सङ्कुल वन्यलताग्रहात लघुददानि वहिर्दधती शुभा।
अथ विदेहसुता ददृशेऽनघा रघुवरेण निमेषजहददृशा।।

रूद्रट ने वैदर्भी के परिपेक्ष्य में श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, कांति, समाधम इत्यादि गुणों का समाहार किया है।

2. **गौणी रीति**—साहित्य दर्पणकार ने लिखा है-"ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णो से बनाये हुये दीर्घ समास युक्त उद्भट बन्ध को गौणी रीति कहते हैं।"

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुनः।।[3]

समास बहुला गौणी

कुछ उदहरण दृष्टव्य हैं-

तमाहवे दारूणमाशु विक्रमौ
स्थिरावुभौ संयति रामलक्ष्मणौ।[4]
मुदान्वितौ चिक्षिपतुर्भयावहं
नदन्तमुक्षिप्य बलेन राक्षसम्।।

वीरालापान् विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्।।[5]
चापानि विस्फारयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्पाशः।
विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभीश्चापि निघ्नताम्।।
तेषां सुतुतुलः शब्दः पूरयामास तद् वनम्।

(1) जा.जी.4/16 (2) वही 6/14,19 (3) साहित्य दर्पण 9/3,4 (4) वा.रा.3 4 29 (5) वा.रा.3/24.28,29

हतवीरौवप्रां तु भग्नायुध महाद्रुमाम्।[1]
शौणितौध महातोयां यमसागर गामिनीम्।।
यकृत्पलीहमापंका विनिकीर्णान्त्र शैवलाभ्।
भिन्तकाय शिरोमीना भंगावय वशाद्वलाम्।।
गृघ्रहंससवाराकीर्णां कंकसारससेविताम्।
मेदः फेन सभाकीर्णा भार्तस्तनितनिः स्वनम्।।

भयान्विताश्चापपतन्नदुद्रुवन् सुकामेला भाणवकाः स्वमन्दिरम्।[2]
यथा कथंचिद् व्याथामानमानसा वयोऽति वृद्धाः सदयं हितस्थिरे।।
विलापचीत्कार निपात धावन प्रमोह हा हेति महारवैर्नभः।
तदा तु पर्याकुलमेव सर्वतः द्रुतं समालक्ष्थत धैर्यभंजकम्।।
चिता प्रविष्टामवलोक्य जानकीम भूद् विसंज्ञो हनुमान सलक्ष्मणः।
विभीषणोऽश्रूणि मुमोच कम्पितः प्लवंगमाश्चापि च कम्पिरे भिया।।

पांचाली रीति

आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि-"जो वर्ण न माधुर्य के व्यंजक हों और न ओज के ऐसे शेष शब्दों से जो रचना की जाये, लघु समास वाली शैली को पांचाली रीति कहते हैं।" **भोज** ने पांचाली का लक्षण करते हुये बताया है कि-"जिसमें पाँच-छः पदों का समास हो, ओज और कांति नामक गुण से जो युक्त हो और मधुर एवं सुकुमार हो उस रीति को कवि लोग पांचाली कहते हैं।" साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने अपना मत देकर भोज के सिद्धान्त का भी उल्लेख इस प्रकार किया है-

वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।[3]
समस्त पंचषपदो वन्धः पांचालिका मता।।
लाटी तु रीति वैदर्भी पांचाल्योरन्तरे स्थिता।

ततस्तुष्टोऽभवद् राजा श्रुत्वैतद् द्विज भाषितम्।[4]
अमात्यान ब्रवीद राजा हर्ष व्याकुल लोचनः।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह।।

---

(1) वा.रा.6/58/29-31 (2) जा.जी.15/67-69 (3) साहित्य दर्पण 9/4 (4) वा.रा.1/8 13-15

समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम्।

सर्‌यवारथोत्तरे तीरे यज्ञ भूमिर्विधीय ताभ्।।

नवनील बलाहप्रभं शरदभ्रद्युति दारकद्वयम्।[1]

हृतचित्तभनंग मन्दिरं स दृशोः प्राधुणि कीचकार तट्।।

तदलभ्यललाभमार्दर्व प्रथिवीलोक नियत्य भावितम्।

हृतचेतंन आत्मवंवितो जनको वीक्ष्य बभाण कौशिकम।।

आलोच्य काव्यों में वृत्तियां

वृत्ति शब्द नाट्य वृत्तियों एवं काव्य वृत्तियों दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होती है। नाट्य वृत्तियों का सम्बन्ध नाटक से है। काव्य वृत्तियों की उद्‌भावना का श्रेय उद्‌भट को है। उनकी दृष्टि में काव्य में तीन प्रकार की वृत्तियाँ पाई जाती हैं- उपनागरिक, परुषा, कोमला। मूलतः यह वृत्तियाँ काव्य के वाह्य उपकरण विशेष रूप से वर्णो के प्रयोग से सम्बन्धित है। उद्‌भट ने लिखा है-

परुषा नाम वृत्तिः स्थात् हल्हव्ह्यद्यैश्च संयुताः।[2]

स्पर्शैर्यतां च मन्यन्ते उपनागरिका बुधाः।

शषैर्वर्णेर्यथायोगं कथितां कोमलाख्यता।

आनन्दवर्धन ने अनुकूल अर्थो एवं शब्दों के उचित व्यवहार के आधार पर अर्थवृत्ति एवं शब्द वृत्ति मानी है।[3]

नाट्य शास्त्र में कौशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती कही जाती है क्योंकि इनका सम्वन्ध अर्थवृत्ति या व्यवहार से है जबकि काव्य में शब्द वृत्ति के कारण उपनागरिका, परुषा, और कामल का उल्लेख हुआ है।

रीति एवं वृत्ति के पारस्परिक विषय के सम्बन्धों में दो मत सामने आये हैं-उद्‌भट वृत्ति को वर्णव्यवहार रूप मानते हुये उसे अनुप्रास में अन्तर्भूत मानते हैं।

मम्मट ने रीति के स्थान पर वृत्ति शब्द का प्रयोग करते हुये उनका आधार वर्णगुम्फन

(1) जा.जी.4 31,32 (2) काव्यालंकार सार संग्रह 257-259 (3) ध्वन्या लोक 3/89

माना है।

सार यह है कि वृत्ति में शब्द संयोजन, समास रचना और वर्णगुम्फन का समाहार होता है। इस प्रकार हम उद्भट के अनुसार उपनागरिका वृत्ति से वैदर्भी रीति को, परुषा वृत्ति को गौणी रीति से और कोमल वृत्ति को पांचाली रीति से सम्बन्ध कर इनका विश्लेषण करेंगे।

उपनागरिका वृत्ति— इसमें समासरहित या छोटे-छोटे समास युक्त अल्पप्राण अक्षरों से संगुम्फित वाक्य रचना में उपनागरिका वृत्ति दिखाई देती है–

दृष्टवा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम्।[1]
निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः।।
ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृश दुःखितम्।।

कराडि.ध्ररक्तोत्पलभास्यपंकजं विलोचन द्वन्द्वकुवेलमद्भुतम्।[2]
विलम्बिहस्ताग्रमृणाल युग्मकं समेत्य जातं क्षिति जांग पुष्करे।।
दिने दिने सा ववृधे प्रभामयी ह्यलोकसामान्य विकासमीयुषी।।
अपेक्षाते स्नेहममन्ददीपिका न वैधसी हृद्यकला चिरन्तनी।।

परुषावृत्ति—आचार्य मम्मट ने ओज प्रकाशक वर्णो से युक्त पदावली को परुषा वृत्ति कहा है–

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडबरः पुनः समास बहुला गौणी।[3]

ओज प्रकाशक वर्णो से तात्पर्य दीर्घ समास या कठिन वर्णो के संयोजन से है। जैसे–

ततो गुरुतरं मत्वं दारूणं समुपाक्रमन्।[4]
अश्वानुष्ट्रान खरान् नागांजध्नर्दण्डशांकशैः।।
भेरीशंखमृदंगांश्च सर्वप्राणैरवादयन्।
निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठ्कतकरैः।।

आरब्ध एव ध्वनेऽध्वर जातदीक्षैः[5]
ऋत्विग्भिरेत्य भखवेश्मानि यातु धानौ।
मांसास्थ्यसृड्.मलसुरा करकादिवर्षै–
र्यज्ञं विखण्ड्म कुरूतो विजयाट्टहासम्।।

---

(1) वा.रा.2/40/36,37 (2) जा.जी.2 9,10 (3) काव्य प्रकाश 9/108 (4) वा.रा.6/60 45,46 (5) जा.जी.4/19

कोमला वृत्ति—संस्कृत काव्यशास्त्र में कोमलवृत्ति को लक्षणवद्ध करने का विशेष प्रयत्न नहीं हुआ है। कोमलता वृत्ति का सम्बन्ध वामन ने पांचाली रीति से माना है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि ऋजु, सरस, सरल शैली में लिखे गये वाक्य कोमल वृत्ति के सूचक होते हैं जैसे–

> हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये।[1]
> औत्सुक्यं परमं परमं चापि अधृतिश्चपरा मम।।
> शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन।
> अपि स्वस्ति भवेत् तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृ वत्सल।।

> नटितं वलितं लपितं स्खलितं हसितं क्वचिदालयगोपितकम्।[2]
> शशि विम्बकरग्रहणाऽयतितं ह्यपराध भयेन निगूहितकम्।।
> क्वचिदात्म रूचिध्वनितं निभ्रतं क्वचिदात्मविनोद समुच्छलितम्।
> किमहो न मनोहरणं रूचिरं नृपगेह भुवामिदमाचरितम्।।.

सारांश यह है कि गुण, रीति और वृत्तियों का सम्बन्ध मूलतः भाषा के बाह्य उपकरण शब्द विधान है इसलिये इन तीनों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार वैदर्भी रीति उपनागरिका वृत्ति और माधुर्य गुण का सम्वन्ध एक साथ दिखाई देता है। जहाँ माधुर्य व्यंजक वर्ण, श्रृंगार या करूण रस होगा उन्हीं में यह तीनों एक साथ दिखाई पड़ेगें। ओजगुण, गौणीरीति और परुषा वृत्ति मूलतः वीर, वीमत्स, रौद्र रस की अभिव्यक्ति करती है। तथा प्रसाद गुण, पांचाली रीति और कोमल वृत्ति सभी रसों के प्रकाशक हैं किन्तु करूण और शान्त रस विशेष रूप से इनसे सम्वन्धित है।

इस प्रकार कवि काव्यात्मा रस रूप की अभिव्यक्ति हेतु गुण, रीति और वृत्तियों का आश्रय लेकर अपनी अभिव्यंजना को चमत्कारयुक्त करता है। कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण मूलतः इतिवृत्त प्रधान वीर, रौद्र रस प्रधान रचना है अतः इसमें गौणी और परुषा वृत्ति की प्रधानता है तो दूसरी ओर जानकी जीवन में श्रृंगार और करूण रस का प्राधान्य है अतः इसमें वैदर्भी, उपनागरिका और माधुर्य गुण का बाहुल्य है। वाल्मीकि ने बिना किसी विशेप आग्रह के कथा का ऐसा वर्णन किया है कि रसों का स्वतः समावेश होता गया है।

(1) वा.रा.7/46 15,16 (2) जा.जी.21.25,26

कोमल वृत्ति—संस्कृत काव्यशास्त्र में कोमलवृत्ति को लक्षणवद्ध करने का विशेष प्रयत्न नहीं हुआ है। कोमलता वृत्ति का सम्बन्ध वामन ने पांचाली रीति से माना है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि ऋजु, सरस, सरल शैली में लिखे गये वाक्य कोमल वृत्ति के सूचक होते हैं जैसे-

हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये।[1]
औत्सुक्यं परमं परमं चापि अधृतिश्चपरा मम।।
शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन।
अपि स्वस्ति भवेत् तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृ वत्सल।।

नटितं वलितं लपितं स्खलितं हसितं क्वचिदालयगोपितकम्।[2]
शशि विम्बकरग्रहणाऽयतितं ह्यपराध भयेन निगूहितकम्।।
क्वचिदात्म रूचिध्वनितं निभ्रतं क्वचिदात्मविनोद समुच्छलितम्।
किमहो न मनोहरणं रूचिरं नृपगेह भुवामिदमाचरितम्।।

सारांश यह है कि गुण, रीति और वृत्तियों का सम्बन्ध मूलतः भाषा के बाह्य उपकरण शब्द विधान है इसलिये इन तीनों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार वैदर्भी रीति उपनागरिका वृत्ति और माधुर्य गुण का सम्वन्ध एक साथ दिखाई देता है। जहाँ माधुर्य व्यंजक वर्ण, श्रृंगार या करूण रस होगा उन्हीं में यह तीनों एक साथ दिखाई पड़ेगें। ओजगुण, गौणीरीति और परुषा वृत्ति मूलतः वीर, वीमत्स, रौद्र रस की अभिव्यक्ति करती है। तथा प्रसाद गुण, पांचाली रीति और कोमल वृत्ति सभी रसों के प्रकाशक हैं किन्तु करूण और शान्त रस विशेष रूप से इनसे सम्बन्धित है।

इस प्रकार कवि काव्यात्मा रस रूप की अभिव्यक्ति हेतु गुण, रीति और वृत्तियों का आश्रय लेकर अपनी अभिव्यंजना को चमत्कारयुक्त करता है। कहना नहीं होगा कि वाल्मीकि रामायण मूलतः इतिवृत्त प्रधान वीर, रौद्र रस प्रधान रचना है अतः इसमें गौणी और परुषा वृत्ति की प्रधानता है तो दूसरी ओर जानकी जीवन में श्रृंगार और करूण रस का प्राधान्य है अतः इसमें वैदर्भी, उपनागरिका और माधुर्य गुण का बाहुल्य है। वाल्मीकि ने विना किसी विशेष आग्रह के कथा का ऐसा वर्णन किया है कि रसों का स्वतः समावेश होता गया है।

(1) वा.रा.7/46/15,16 (2) जा.जी.21/25,26

यह एक लक्ष्य ग्रन्थ है अतः पात्रों के भावानुकूल भाषा में गुण, रीति एवं वृत्तियों का स्वतः समावेश होता चला आया है, जबकि जानकी जीवन में कवि का लक्ष्य कथा विशेष वर्णन का रहा है। सम्पूर्ण रामकथा संक्षिप्त रूप में सीता को केन्द्र बिन्दु बनाकर लिखी गयी है इसीलिये कथा के आग्रह के कारण माधुर्य गुण और कोमलावृत्ति की इसमें प्रधानता है।

आलोच्य काव्यों में ध्वनि तत्व

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन हैं। प्राचीन आलंकारिक द्वारा प्रवाहित काव्य के अनुशासन का मापदण्ड रीति, रस, वक्रोक्ति आदि से प्रवाहित होती हुई एक नवीन धारा ध्वनि के रूप में उत्पन्न हुई। काव्य में अनस्यूत या अन्तर्निहित मर्म को सौन्दर्य मानकर उसके अर्थ को प्रतीयमान (व्यंग्य) अर्थ दिया और इस प्रकार विद्वानों द्वारा इसे ध्वनि कहा गया। और इसे काव्यात्मक रूप में प्रतिष्ठ्त किया गया।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौव्यंड्.क्त।[1]
काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

वस्तुतः ध्वनि की प्रेरणा आनन्दवर्धन को वैयाकरणों के स्फोटवाद से मिली वहाँ कहा गया है-

"ध्वनति स्फोट व्यनक्ति इति ध्वनि" इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्फोट के अभिव्यंजक शब्द के लिये ध्वनि का प्रयोग किया गया है, इसी आधार पर ध्वनिवादी आचार्यो ने व्यंग्यार्थ को अभिव्यक्त करने वाले काव्य को ध्वनि कहा है-

तेत्र श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरति। तथैवान्यै-
स्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्य तच्वार्थ दर्शीभिर्वाच्य वाचक
-सम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यंजकत्व साम्याद् ध्वनिरियक्तः।।[2]

वस्तुतः आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि एक विशेष प्रकार के काव्य को कहते हैं जहाँ शब्द और अर्थ अपने को गौण बनाकर अन्यार्थ (व्यंग्यार्थ) की व्यंजना करते हैं।

'व्यंग्य-प्राधान्ये हि ध्वनिः।।[3]
"ध्वनि संज्ञितः प्रकारः काव्यस्य व्यंजितः सोऽयम्"।।
'ननु ध्वनिः काव्य विशेषः इत्युक्तम्।।'

---

(1) ध्वन्या लोक 1/13 (2) ध्वन्या लोक पृष्ठ सं.118 (3) ध्वन्या लोक 1/13

आचार्य ''मम्मट'' ने भी वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य की प्रधानता होने पर ध्वनि काव्य की संज्ञा दी है-

इदमुत्तमतिशायिनी व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिः बुद्धैः कथितः।[1]

इसी प्रकार ''विश्वनाथ'' ने भी ध्वनि का प्रयोग वाच्यातिशायी व्यंग्य युक्त काव्य के लिये किया है-

'वाच्यातिशायिनी व्यंग्ये ध्वनिस्तत् काव्यमुच्यते।।'[2]

ध्वन्यालोककार ने प्रतीयमान अर्थ या व्यंग्यार्थ के तीन भेदों का उल्लेख किया है-वस्तु रूप, अलंकार रूप तथा रसादि रूप। वस्तुतः सारा ध्वनि सिद्धान्त व्यंग्यार्थ और व्यंजना वृत्ति पर आधारित है। काव्य के व्यंग्यार्थ की प्रधानता तथा अप्रधानता के आधार पर दो भेद कहे हैं- काव्य (1) ध्वनि काव्य (2) गुणीभूत व्यंग्य काव्य

जहाँ वाच्य की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है वह ध्वनि काव्य कहलाता है। तथा जहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की अधिक चारुता होती है वह गुणीभूत व्यंग्य काव्य कहलाता है।

प्रकारोऽयं गुणीभूतव्यड्.ग्य काव्यस्य दृश्यते। यत्र व्यड्.ग्या-
न्वये वाच्य चारुत्वं स्यात्प्रकर्षवत्।।[3]

''विश्वनाथ'' ने भी ध्वनिकार का अनुकरण करते हुये ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य काव्य माना है-

काव्यं ध्वनिर्गुणीभूत व्यंग्यं चेति द्विधामतम्।[4]

ध्वनि के दो भेद किये गये हैं-

1. अविवक्षितवाच्य 2. तथा विवक्षितान्यपर वाच्य।

1. अविवक्षितवाच्य ध्वनि—वह है जहाँ वाच्यार्थ सर्वथा अनुपयुक्त अथवा अन्वयायोग रहता है। इसके दो भेद कहे गये हैं-

1. अर्थान्तर संक्रमित वाच्य 2. अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य।

2. विवक्षितान्यपर वाच्य ध्वनि—जिसमें वाच्य विवक्षित होता हुआ भी व्यंग्य निष्ठ होता है। इसके दो भेद उल्लखित हैं-

---

(1) काव्य प्रकाश 1/4 (2) साहित्य दर्पण 4/1 (3) ध्वन्या लोक 3/34 (4) साहित्य दर्पण 4/1

1. असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य 2. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य।

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का एक भेद रस है किन्तु रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावप्रशम, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता आदि में भी इसे देखा जाता है।

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि—आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जहाँ पर वाच्यार्थ अपने मुख्य अर्थ की रक्षा करता हुआ दूसरे अर्थ में संक्रमण करता है-

"यत्र स्वयमनुपयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरेपरिणमति
तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपार्थान्तर संक्रमित त्वादर्थान्तर संक्रमित वाच्यत्वम्।"[1]

न स संकुचितः पन्था येन वाली हतोगतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः।।[2]

यहाँ पर 'न स संकुचितः पन्था' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है क्योंकि यह अपने मूल अर्थ को रखता हुआ स्वर्ग जाने वाले अर्थ की प्रतीति कराता है।

लघु तृणं प्रतिकूलदिशं व्रजेत पवन घट्टनयाऽपिखलीकृतम्।
सुदृढ़चित्तमहो रघुवंशिनां न खलु किन्नु विसंवदति श्रियाम्।।[3]

यहाँ पर प्रथम चरण में जिस असम्भव की चर्चा की गई है, जिसमें पवन के वेग से हल्का तिनका भी विपरीत दिशा में उड़ सकता है अपने मुख्य अर्थ के साथ ही यह राम के मन में उत्पन्न परस्त्री के प्रति उत्पन्न कामभाव के विरोध की व्यंजना करता है अतः पवन और तृण अपने मूल अर्थ के साथ ही काम और मन में अर्थ के संक्रमित हो गये हैं।

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि—जिस ध्वनि में वाच्यार्थ का पूर्ण या सर्वथा त्याग या तिरस्कार हो जाता है वहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है। साहित्य दर्पणकार ने व्याख्या करते हुये लिखा है-

यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थान्तरे परिणमति।
तत्र मुख्यार्थस्यात्यन्त तिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृत वाच्यत्वम्।।[4]

न तु धर्मोपसंहारमधर्मफल संहितम्।
तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः।।[5]

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।[6]

---

(1) साहित्य दर्पण पृष्ठ सं.178 (2) वा.रा.4.34/18 (3) जा.जी. 6/27 (4) साहित्य दर्पण पृष्ठ सं.179 (5) वा.रा. 5.51/28 (6) 6/21/3/1

यहाँ पर प्रथम उदाहरण में हनुमान जी ने अप्रत्यक्ष रूप से धर्म-अधर्म फल की व्याख्या करते हुये यह व्यंजित किया है कि सीता हरण से पूर्व अपने पुण्यों के फलस्वरूप रावण ने वैभव का चरम रूप प्राप्त किया है किन्तु इस अधर्म के कारण उसका सारा ऐश्वर्य नष्ट हो जायेगा। उक्त कथन में ''धर्मोपसंहार अधर्म फल संहितम्'' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है क्योंकि यह रावण के अधर्मजनित कार्यो को व्यंजित करता है। इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण में 'तृणमन्तरतः कृत्वा' में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है क्योंकि तिनके की ओट करना एक तरफ सीता द्वारा रावण की उपेक्षा और उसकी तुच्छता अर्थ की व्यंजना करता है।

जानकी जीवन में चारों भाई और पुत्र वधुओं के साथ जो हास-परिहास वर्णित है उसमें सीता के कथन में ध्वनि दिखाई पड़ती है-

कूष्माण्डालाबुतुल्याः किं मिथिलायाः कुमारिकाः।
यास्तु यः कोऽपि गृह्णीयात् पक्वान्नाशनलोलुपः।।[1]

यहाँ तिरहुत की कुमारी कन्याओं के लिये लौकी या कुम्भड़ा (कूष्माण्ड) में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है, क्योंकि न तो कन्यायें कूष्माण्ड होती हैं न ही कोई भोजनभट्ट ब्राह्मण पकवान समझकर उन्हें खा सकता है। इस प्रकार इस अभिधेयार्थ या वाच्यार्थ का तिरस्कार होकर इसके प्रतीयमान अर्थ में वीर्यशुल्का स्त्रियों की व्यंजना हो रही है।

असंलक्ष्यक्रम ध्वनि व्यंग्य—जहाँ पर वाच्यार्थ के ग्रहण करने के क्रम को न लक्षित किया जा सके तथा व्यंग्यार्थ के स्पष्ट होने का निश्चित क्रम न समझा जा सके वहाँ पर असंलक्ष्यक्रम ध्वनि होती है-

इसके निम्नलिखित भेद होते हैं-

1. रस ध्वनि 2. रसाभास 3. भावाभास 4. भाव ध्वनि
5. भाव सन्धि 6. भाव शबलता।

1. रस ध्वनि—जहाँ वर्णन से रस व्यंग्य हो वहाँ रस ध्वनि होती है-

आनम्भ मूर्ध्नि चाघ्राय परिपूज्य यशस्विनी।
अवदत् पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम्।।[2]

(1) जा.जी.9.73 (2) वा.रा.2/25/40-42

अरोगं सर्वसिद्धार्थम योध्यां पुनरागतम्।
पश्यामि त्वां सुखं वत्स संधितं राजवर्त्मसु।।
प्रणष्टदुःख संकल्प हर्षविद्योतितानना।
द्रक्ष्यामि त्वां वनात् प्राप्तं पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।।

न किं रामभद्रे ममास्ति प्रगाढ़ं परं प्रेमपूतं दृढं निर्विकारम्?।
अहं प्रत्यवायोन्मुखी ना भविष्यं तदीयाभिषेको यदिख्यापितः स्यात्।।[1]
यदीयाननेन्दुं चकोरीव नित्यं निपीयैव मे धन्यमासीत्प्रसूत्वत्।
तमेवात्मजं जीवितं जीवितानां कथं नाभिषिक्तं मुदाऽलोकथिष्यम्।।

प्रथम उदाहरण रामवन गमन प्रसंग का है। पुत्र के वन-गमन समाचार को सुन कर कौशल्या वात्सल्य भाव से अभिभूत हो गई। अभिधेयार्थ में राम-सीता आलम्बन, कौशल्या आश्रम, पुत्र का माथा सूंघना कायिक अनुभाव, राम के आने की कल्पना में हर्ष युक्त सात्विक अनुभवों के साथ वात्सल्य रस की प्रथम दृष्टया प्रतीत होती है जवकि व्यंग्य रूप में यहाँ करुण रस दिखाई देता है, क्योंकि प्रिय के अनिष्ट के कारण शोक, वनादि की भंयकरता (पूर्व में वर्णन किया जा चुका है) उद्दीपन विभाव, चिन्ता, मोह और स्मरण से करुण रस की व्यंजना हुई है।

द्वितीय उदाहरण जानकी जीवनम् का है यहाँ कैकेयी की वर-याचना के पूर्व उसके मनोभावों का वर्णन किया गया है जिसमें राम आलम्वन, कैकेयी आश्रय, राम की पूर्व कालिक क्रियायें उद्दीपन विभाव है। राज्याभिषेक को सुनकर हर्षादि अनुभावों से वात्सल्य रस की प्रतीति हो रही है जबकि वस्तुतः यहाँ रौद्र रस की व्यंजना है जिसमें कैकेयी आश्रय, दशरथ आलम्बन, दशरथ का पूर्व प्रेम सम्वन्धी क्रियायें एवं वचन उद्दीपन विभाव, अमर्ष, तर्क, उद्वेग, मद, आदि संचारी भावों से कैकेयी का क्रोध रौद्र रस में पर्यवसित होता हुआ दिखाई देता है।

रसाभास—यदि किसी कारणवश स्थायी भाव पूर्ण तथा परिपाक न होकर आस्वाद योग न बन सके ऐसी स्थिति रसाभास की कहलाती है। मम्मट, आनन्दवर्धन रसाभास के रूप में लोकमत विरूद्धता अथवा अनौचित्य पूर्ण रस की विवेचना रसाभास कहलाती है।

(1) जा.जी.10/44,45

जैसे—अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा का प्रणय निवेदन, लंका काण्ड में सीता के प्रति रावण की रति याचना अथवा विश्वामित्र-मेनका के प्रसंगों की या कुपिता कैकेयी के समक्ष दशरथ का पुरूषत्वहीन प्रणय निवेदन रसाभास के उदाहरण हैं। विश्वामित्र और मेनका प्रसंग का उदाहरण हैं। विश्वामित्र और मेनका प्रसंग का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है जिसमें तपस्वी विश्वामित्र आश्रय, अप्सरा मेनका आलम्बन है, यहाँ आश्रय आलम्बन गत अनौचित्य का प्रयोग ऋषि की कामुक भरी बाते वाचिक अनुभाव, हर्ष, मद, आलस्य, उद्वेग आदि संचारी भावों से श्रृंगार रस का रसाभास व्यंजित हो रहा है—

तां ददर्श महातेजा मेनकां कुशिकात्मजाः।
रूपेणा प्रतिभां तत्र विद्युतं जलदेयथा।।[1]
कन्दर्पदर्प वशगो मुनिस्ताभिदम ब्रवीत्।
अप्सरः स्वागतं तेऽस्तु वस चेह ममाश्रये।।
अनुगृह्णीष्व भद्रं ते मदनेन विमोहितम्।
इत्युक्ता सा वरारोहा तत्र वासमथाकरोत्।।
तपसो हि महाविघ्नो विश्वामित्रमुपागमत्।
तस्यां वसन्त्यां वर्षाणि पंच पंच च राघव।।

जानकी जीवन में सीता के प्रति रावण की रतियाचना आश्रयगत अनौचित्य का उदाहरण है। सती नारी के समक्ष कामाभिभूत वासनाप्रिय अनेक नारियों के साथ अन्तःपुर में रमण करने वाला रावण का प्रलोभन श्रृंगार रस का रसाभास है—

हृदये मम राजतेऽनघे! तव मूर्तिर्गुण रूपदीपिनी।
दयसे न कपं दशानने जितदेवा सुरसिद्धचारणे।।[2]
हरिणाक्षि! जिगीषु सत्तमं त्रिजगज्जिष्णुमुपेत्य रावणम्।
वद पूर्तिमिता न का स्पृहा विभवेऽप्यद्यन येन मोदसे।।
अपहाय दरिद्रराघवं हृतराज्यं गतवैभवंच तम।
अयि मानिनि! लोकवन्दितं भज मां त्वं महिषी प्रतिष्ठया।।

भावाभास—किसी भाव के अनौचित्यपूर्ण वर्णन में भाव ध्वनि न होकर भावाभास होता

(1) वा.रा.1/63/5-8 (2) जा.जी.12/54-56

है। आचार्य विश्वनाथ ने वैश्या आदि में लज्जा के भाव चित्रण में भावाभास माना है। (सा0द0) रसवादी आचार्यो ने औचित्य को बहुत अधिक महत्व दिया है। इस प्रक्रिया में अनैतिकता अस्वाभाविकता, अव्यवहारिकता के आ जाने से रस रस न होकर भाव अपूर्ण रह जाता है इसीलिये वहाँ भावाभास हो जाता है। जैसे-वाल्मीकि रामायण में देवताओं का शिव-पार्वती को सुरतक्रीडा से निवृत्त करना, इन्द्र-अहल्या प्रसंग, पुत्रवध से दुःखी दिति का इन्द्रहन्ता पुत्र की प्राप्ति के उद्देश्य से तपस्या एवं परचर्यारत इन्द्र द्वारा उसके गर्भस्थ शिशु के सात खण्ड करने में भावाभास देखा जा सकता है। शिव-पार्वती की सुरतक्रीड़ा में स्खलित शिव के वीर्य को पृथ्वी सहित अनेक तत्वों द्वारा धारण करने के कारण पार्वती जिस क्रोध का प्रदर्शन करती है वहाँ भावाभास प्रतीत होता है-

एवामुक्तास्ततो देवाः प्रत्यूचुर्वषभध्वजम्।[1]
यत्तेजः क्षुभितं ह्यद्य तद्धश धारयिष्यति।।
एवमुक्तः सुरपतिः प्रभुभोज महाबलः।
तेजसा पृथिवी येन व्याप्ता सगिरिकानना।।
समन्युरशपत् सर्वान् क्रोधसंरक्त लोचना।
यस्मान्निवारिता चाहं संगता पुत्र काम्यया।।
अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुर्हथ।
अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः।।

यहाँ पर शंकर-पार्वती के सुरत वर्णन में जो अनौचित्य है जिसका चरम परिपाक वीर्यपतन का उल्लेखकर कवि ने देवताविषयक श्रृंगार रस का रसाभास तो प्रस्तुत ही किया है साथ ही कुपिता पार्वती में भाव का वर्णन अनौचित्य पूर्ण हुआ है, इसलिये यहाँ भावाभास माना जा सकता है।

भावध्वनि—जहाँ पर अपुष्ट स्थायी भाव संचारी भावों से प्रकट हो वहाँ भावध्वनि होती है। विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना में दशरथ के प्रत्युत्तर में अपत्य प्रेम वात्सल्य रस में परिवर्तित न होकर कुछ पुत्र विषयक रतिभाव की व्यंजना की जा रही है-

स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः।[2]
तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः।।

---

(1) वा.रा.1/36/15,16,21,22 (2) वा.रा.1/20/23,24,25/1

सबलो वा मुनिश्रेष्ठ सहितो वा ममात्मजैः।
कथयप्यमरप्रख्यं संग्रामाणाम कोविदम्।।
बालं मे तनयं ब्रह्मन् नैव दास्यामि पुत्रकम्

इसी प्रकार इन्द्रजित द्वारा मायामयी सीता के वध प्रसंग में हनुमान के कथन में वितर्क और आवेग संचारीभाव ही प्रकट हुये हैं। मायामयी सीता के केशों को पकड़ वध करते समय देख कुपित हनुमान का कथन दृष्ट्व्य है यहाँ पर क्रोधात् स्वशब्दवाच्यत्व दोष से युक्त है और कथन रौद्र रस की पूर्ण व्यंजना भी नहीं कर पा रहा है-

तां दृष्ट्वा चारूसर्वांगी रामस्य महिर्षी प्रियाम्।
अब्रवीत् परूषं वाक्यं क्रोधाद् रक्षोधिपात्मजम्।।[1]
दुरात्मन्नात्मनशाय केशपक्षे परामृशः।
ब्रह्मर्षीणां कुले जाते राक्षसीं योनिमाश्रिताः।।

जानकी जीवन में भावध्वनि के अनेक स्थल हैं। वयः सन्धि अवस्था प्राप्त सीता में काम का प्रादुर्भाव, शारीरिक क्रियाओं में लज्जा, पतिरूप में किसी पुरूष की कामना में संकोच भाव ध्वनि के उदाहरण हैं-

पितुर्विदेहस्य भुजैकमंचिकां मुमोच तन्वी चटुलत्वंचिता।
रहस्यमारत्यातुममपि क्रशीयसी न मार्गयामास सखीं न मात्रम्।।[2]
अवैखरीकैव बुभोज भोजनं ह्यचातुरी कैव जगाद वाचिकम्।
उपासना सद्मसमर्च्च विग्रहा शशाम बाला स्वयमेव मन्दिरे।।
अये क्षणं पश्य विहंगयुग्मक सखीति सान्द्रं लपिताऽपि मैथिली।
प्रदत्त संकेत विलक्षभावं विभावयन्ती न ददर्श तन्मुखम्।।

भावसन्धि—जहाँ पर किन्हीं दो भावों के संयोग से किसी प्रकार के चमत्कार की सृष्टि हो वहाँ पर भाव सन्धि होती है। वाल्मीकि रामायण नें भावसन्धि के अनेक आकर्षक, मनोरम, हृदयहारी स्थल हैं। मारीच वध के पश्चात् हृदय छद्म वेशधारी मारीच का सीता-लक्ष्मण का पुकारना राम के मन में हर्ष और विषाद एक साथ उदित होता है। कंचन मृग की छाल प्राप्त करने में उत्साह तो दूसरी तरफ लक्ष्मण-सीता का आह्वान जनित भय राम के मन में एक

(1) वा.रा.7/81 17-18 (2) जा.जी.3/24-26

साथ उदित हुआ–

लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्यां गमिष्यति।[1]
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः।।
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम्।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम्।।

इसी प्रकार अशोक वन में बन्दिनी सीता गले में फांसी लगाकर प्राणोंत्सर्ग के लिये उत्सुक थी तभी अशोक वृक्ष के नीचे पहुँचने पर शुभ शकुन होने लगे अतः यहाँ कवि ने दुःख के साथ हर्ष के वर्णन में इसी भावोदय को प्रकट किया है–

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्वतः।[2]
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जितम्।।
अवेक्षमाणास्तां देवीं देवतामिव नन्दने।
ततो बहुविधांचिन्तां चिन्तयामास वानरः।।

जानकी जीवन में विश्वामित्र की वरयाचना के समय वशिष्ठ प्रवोध के उपरान्त पुत्रों को देने में दशरथ के मन में वात्सल्य भाव अधिक उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुआ है–

एवं वशिष्ठ वचसा व्यपनीत मोहः[3]
सत्वोदयं ह्युपगतो ननु कोशलेन्द्रः।
पुत्रौ प्रगाढ़मुपगूह्य कृत प्रणामौ
प्रदात्स्वयं कुशिकनन्दनपूत पाणौ।।

भावशान्ति–एक भाव के उदय होने पर तथा परिस्थिति वशात् दूसरे भाव के कारण प्रथम के शान्त होने के वर्णन में जब चमत्कार उत्पन्न हो तब यह दशा भाव शान्ति की दशा कहलाती है। परशुराम प्रसंग, कैकेयी वरयाचना, शूर्पणखा विरूपी करण के पश्चात् राम खर–दूषण संवाद, लक्ष्मण मूर्च्छा के समय हनुमान के संजीवनी आनयन के ऐसे ही स्थल हैं जहाँ एक भाव पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं हो पाता क्योंकि परवर्ती भाव या तो अधिक प्रबल है या तो उसका विरोधी है अथवा उसका वर्णन चमत्कार पूर्ण ढंग से हुआ है। वर्तमान युग में दो रंगों वाले बने धूप छांही वस्त्रों की भांति यह भाव के स्थल अत्यन्त भव्य और आकर्षक

(1) वा.रा.3/44 25–26 (2) वा.रा.5/30/1,2 (3) जा.जी.4/31

वन पड़े हैं। विश्वामित्र मेनका प्रसंग में कामाभिभूत विश्वामित्र उनकी तपस्या का भंग होना में रति और पश्चाताप् तथा इसके पीछे देवताओं के कृत्य को समझकर उनमें जिस क्रोध का आर्विभाव होता है उसमें भावशान्ति है-

सर्वं सुराणां कर्मैततः तपोऽपहरणं महत्।[1]
अहोरात्रापदेशेन गताः संवत्सरा दश।।
काममोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः।
स निःश्वसन् मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः।।

इसी प्रकार अशोक वाटिका स्थित सीता प्रसंग में हनुमान के प्रति सीता का सन्देह, हनुमान द्वारा रामचन्द्र के गुण गाने से सीता की ग्लानि की शान्ति और उनके हर्ष का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है जिसमें चमत्कार उत्पन्न हो गया है। मुद्रिका प्राप्त करने के पश्चात् सीता के हर्ष का वर्णन वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है-

सर्वप्रथम सीता के शोक भाव का उदाहरण प्रस्तुत है-

विललाप भृशं सीता करूणं भयमोहिता।[2]
राम रामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी।।

और सीता का हर्ष देखिये-

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम्।[3]
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदितां भवत्।।
चारू तद् वदनं तस्यास्ताम्र शुक्लायते क्षणम्।
बभूव हर्षोदग्रं च राहु मुक्त इवोडुरात।।

ततः सा ह्रीमती बाला भुर्तुः संदेश हर्षिता।[4]
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम्।।
विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं यानरोत्तम्।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षि तम्।।

जानकी जीवन में धनुर्भंग प्रकरण में इस दशा के अनेक चित्र हैं धनुर्भंग के पश्चात

(1) वा.रा.1/63/11,12 (2) वा.रा.5/31/5 (3) वा.रा.5/36/4,5 (4) वा.रा.5/36/6,7

भंयकर ध्वनि से चतुर्दिक भय तथा पुरवास्नियों का हर्ष एवं जयमाल (वरमाला) डालते समय आवेग के कारण सीता का क्षिप्रता से चलना, लज्जा और भय के कारण दो कदम पीछे हटना अपने आकर्षक रूप में व्यंजित हुये हैं-

(क) वात्याववौ कालघनो जगर्जववाम शम्पापि दहत्स्फुलिंगन।
समग्र एवाण्डकटाह इत्थं बभ्राम सस्याम जजार मिम्ये।।[1]
प्रसूनजातं ववृषस्समन्ताद वृन्दारका वीत भयाः प्रहृष्टाः।
अवेत्य रामाच्छिवचापभंग सर्वेऽपि याताः प्रकृति निजेष्टात्।।

(ख) अग्रेसरी कृत्य पदद्वयं सा बाला क्वचित्साध्वसमन्द वेगा।
पश्चात्पंदन्वेकमुपाययौ यज्जिगाय तेनैव तु शम्बरारिः।।

भाव शबलता—जहाँ एक ही स्थान पर क्रमानुसार अनेक भावों की संयोगजन्य वैशिष्ट्य पाया जाय वहाँ पर भाव शबलता होती है। वाल्मीकि रामायण में दशरथ मरणोपरान्त भरतागमन एवं कैकेयी से पिता एवं भाई राम-लक्ष्मण, सीता के समाचार सुनकर भरत का मन पश्चाताप् से भर ही नहीं गया अपितु वे उसके मूल कारण को जानकर कैकेयी के प्रति रोष एवं कौशल्या के समक्ष सौगन्ध खाते समय भरत की दशा वर्णन में भाव शबलता दिखाई देती है-

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।।[2]
आर्ये कस्माद जानन्तं गर्हसे मामकल्मषम्।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे।।
कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत् तस्य कदाचन।
सत्यसंघः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः।।
विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत्।
तदेतत् प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः।।[3]
ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः।
बालवत्सां च गां दोग्धु यस्यार्योऽनुमते गतः।।

---

(1) जा.जी.7/75,76,81 (2) वा.रा.2/75/11,20,21 (3) वही 2/75/53,54,65

लालप्यमानस्य विचेतनस्य

प्रणष्ट बुद्धे पतितस्य भूमौ।

मुहुर्मुहुर्निः श्वासतश्च दीर्घ

सा तस्य शोकेन जगाम रात्रि।।

यहाँ पर कौशल्या का किंचित आवेश, आवेग भरत की ग्लानि विभिन्न शपथों से हृदय प्राच्छालन का प्रयास और विह्वलता आदि के संयोग से यहाँ भाव शबलता दिखाई देती है। जानकी जीवन में दुःखिता सीता निशाचारियों से त्रस्त रावण का आतंक, हनुमान के मिलन से हर्ष, मुद्रिका देखकर आश्चर्य एवं हनुमान के समक्ष सीता का अमर रहने का वरदान इन वचनों में भय, त्रास, अमर्ष, हर्ष, आह्लाद, औदार्य भावों की शबलता दृष्टव्य है–

त्वमेकलश्चापि सहैव नैतुं क्षमोऽस्म्यहं विश्वसिहिं प्रकामम्।[1]

करोमि किं किन्तु न मेऽधिकारो नाज्ञापितोऽहं प्रभुणातदर्थम्।।

विहाय चिन्तां ग्लपनश्च दैन्यं नियम्य मातर्नयनाश्रुवर्षम्।

कालं प्रतीक्षस्व ससैन्यरामो द्रुतं समायाति वधाय शत्रोः।।

निपीय वाचं प्रविलोक्य शौर्यं प्राणेश्वर प्रेषित मुद्रिकां ताम्।

सा सस्पृहं प्रीतमनाः प्रचुम्ब्य प्रोवाच सीता गलद श्रुनेत्रा।।

प्राभंजने! राघवदूत! वत्स! दास्यामि किन्ते विपदान्विताऽहम्?।

मृत्यूदधावधं निमंजिताऽहं त्वयोद्धताऽस्मि प्रसभं समेत्य।।

इस संक्षिप्त विवेचन से निष्कर्ष सहज रूप से निकाला जा सकता है कि वस्तुतः ध्वनि काव्य विशिष्ट प्रकार का काव्य है जिसमें शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को छिपाकर उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं जो काव्य का परम रहस्य हैं जिसे हम प्रतीयमान अर्थ भी कहते हैं। इस ध्वनि काव्य के कुछ भेदों के उदाहरण देकर शोधकर्त्री ने यह देखा है कि शास्त्रीय लक्षणों से युक्त ध्वनि काव्य के प्रायः प्रमुख भेद आलोच्य दोनों काव्यों में मिल जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के साथ असंलक्ष्यक्रम रस ध्वनि के उदाहरण हैं क्योंकि आधिकारिक कथा के साथ शताधिक प्रसांगिक घटनाओं में जीवन के बहुविध घटनाओं का वर्णन है। विस्तृत भावफलक होने के कारण

(1) जा.जी.13/35,36,38,39

ध्वनि व्यंजना के अनेक अवसर यहाँ उपलब्ध हैं। जानकी जवनम् संक्षिप्त होते हुये भी अलंकृत प्रधान शैली का महाकाव्य है। अतः इसमें भी असंलक्ष्यक्रम ध्वनि के उदाहरण अधिक हैं। अत्यन्त तिस्कृत वाच्य ध्वनि के उदाहरण कम हैं फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि दोनों काव्य ध्वनि काव्यों के विशिष्ट भेदों से संवलित है कथन में व्यंजना व्यापार के विशिष्ट प्रयोग हैं।

वक्रोक्ति

काव्य में चित्त को चमत्कृत करने वाली वृत्ति या उक्ति को उक्ति वैचित्र्य या वक्रोक्ति कहा जाता है। कुन्तक के मत में यह काव्य का आन्तरिक तत्व है। भामह ने वक्रोक्ति को शब्द अर्थ के समन्वित रूप में ग्रहण किया है। "वक्रार्थ, शब्दोक्ति, अलंकाराय"[1] दण्डी ने काव्य के पर्याय के रूप में वक्रव्व का निषेध करते हुये वांगमय के दो व्यापक भेद किये है- स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति में पदार्थों का साक्षात् तथा वक्रोक्ति में चमत्कार पूर्ण वर्णन होता है, इस चमत्कार में श्लेष का विशेष योग रहता है।

नानवस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्यासांल कृतिर्यथा।।[2]
श्लेषो सर्वासु पुष्पाति प्रायः वक्रोक्तिषु श्रियम्।

कुन्तक के अनुसार प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र अभिधा या वैदग्ध्य पूर्ण शैली में कहीं हुई उक्ति ही वक्रोक्ति है और यह कवि कर्म कौशल जन्य चारुता से सम्वद्ध है-

वक्रार्य शब्दोक्तिरलंकाराय[3]

इस प्रकार कुन्तक ने वक्रोक्ति के अतिरिक्त सवको अलंकृति न मानकर अलंकार माना है वह लिखते हैं-

शब्दार्थौसहितौ वक्रकविव्यापार शालिनि।[4]
बन्धे व्यवस्थितै काव्यं तदिवदाह्लकारिणि।
उभावेतावलंकार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यमंगी भणिति रुच्यते।

तात्पर्य यह है कि वैदग्ध्य भंगी भणिति काव्य में रस की स्वीकृति तो है किन्तु उसकी

(1) काव्यालंकार 5/66 (2) काव्यादर्श 2/8,2/363 (3) काव्यालंकार 5/66 (4) वक्रोक्ति काव्य जीवितम् 1/7,10

प्रथक सत्ता नहीं अपितु वक्रता में ही रस और सौन्दर्य या चमत्कार को माना गया है। उसकी दृष्टि में बांकपन सहित उक्ति ही काव्य की आत्मा है। इसमें हृदयगत सौन्दर्य और वस्तुगत सौदर्न्य ही अलंकार और ध्वनि है वक्रोक्ति ही सौन्दर्य लाती है इसमें ही रस का पुट होता है, यही काव्य का जीवित है। कुन्तक ने वक्रोक्ति के कुछ भेद कहे हैं–

वर्णविन्यासवक्रत्वं पदपूर्वार्धवक्रता, वक्रतायाः परोप्यस्ति प्रकारः प्रत्ययाश्रयाः।[1]

वाक्यस्य वक्र भावोन्यो भिद्यते यः सहस्रधा, यत्रालंकार वर्गोऽसौसर्वोत्यन्त भविष्यति।

वक्रभावः प्रकरणे प्रबन्धेवाऽपि यादृशः उच्यते सहसाहार्यः सौकुमार्य मनोहरः।

इस प्रकार वर्णविन्यास वक्रता पदपूर्वार्द्ध वक्रता, पद परार्ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता इसके मुख्य भेद हैं जिनके अनेक उपभेदों का विवेचन कुन्तक ने किया है यहाँ हम सामान्य रूप से मुख्य भेदों के लक्षण और दोनों आलोच्य काव्यों से उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

1. वर्ण विन्यास वक्रता–वर्णो को विशेष चमत्कारिक रूप से रखकर उनकी रचना करना वर्ण विन्यास वक्रता है इसमें एक, दो या अनेक वर्ण क्रम या अन्तराल में रखे जाते हैं–

एको द्वो बहवो वर्णा वध्यमानाः पुनः पुनः।
स्वल्पान्तरास्त्रिधा सोक्ता वर्णविन्यास वक्रता।।[2]

जैसे–

निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोक सागरे।[3]

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः,
कुतस्तु पुत्रः सदृशोऽंगदेन।[4]

तस्मिन् क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणः
क्षितिक्षमावान् भुवनस्य गोप्क्ता।[5]

मुदिर मेदुर चन्दिर वन्दितं चटुल कुन्तल लालिततन्मुखम।[6]
हंसकोकिककीरचातकगीतिकाभिर्नेत्रसौख्यकरैर्मयूर कपोत नृत्यैः।[7]
रम्य निर्झरिणी प्रयात निपानवापी वृक्ष गुल्म लताद्रिरन्ध्रविमण्डिताऽपि।[8]

---

(1) वक्रोक्ति जीवितम् 1/19–20 (2) वही 2/1 (3) वा.रा.4/20 9 1 (4) वही 4/24/20 1 (5) वही 4/24/25/1 (6) जा.जी.16/34/1 (7) वही 11/33/1 (8) 11/42/1

2. पदपूर्वाद्ध वक्रता—सार्थक शब्द समूहों को पद कहते हैं इसके दो अंग कहे जाते है- प्रकृति और प्रत्यय। पद पूर्वाद्ध और पद परार्ध वक्रता दो भेद कहे गये हैं। पद पूर्वाद्ध वक्रता से कुन्तक का तात्पर्य पदान्तर्गत प्रतिपादित या धातु अंश से हैं। इसके अनेक भेद कुन्तक ने वताये हैं। जिसमें रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता, पर्याय वक्रता, उपचार वक्रता, सम्वृत्ति वक्रता, विशेषण वक्रता, वृत्ति वक्रता, लिंग वैचित्र्य वक्रता एवं क्रिया वैचित्र्य वक्रता आदि भेद हैं। वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवन में इसके कुछ भेदों सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है-

क. रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता—आचार्य कुन्तक ने लिखा है कि जहाँ लोकोत्तर प्रशंसा के कथन करने के अभिप्राय से वाच्यार्थ की रूढ़ि शब्द से असम्भव अर्थ के अध्यारोप से युक्त अथवा किसी विद्यमान धर्म के अतिशय आरोप सहित रूप में प्रतीत होती हो उसे रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता कहते हैं-

यत्र रूढ़ेरससम्भाव्यधर्माध्यारोपगर्भता।
सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वं वा प्रतीयते।।[1]
लोकोत्तर तिरस्कारश्लाध्योत्कर्षाभिधित्सया।
वाच्यस्य सोच्चते कापि रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता।।

तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः।
अपथ्यैः सह सम्भुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा।।[2]
तस्मान् मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः।

अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे।।[3]

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे।।[4]

यहाँ उदारस्य, रामस्य, रकारादि शब्दों में रूढ़ि वैचित्य वक्रता है क्योंकि पाप कर्म या

(1) वक्रोक्ति जीवितम् 2/8-9 (2) वा.रा.2/64/59,60/1 (3) वही 3/45/22 (4) वही 3.39/18

शाप उदार नहीं होता। रामस्य यहाँ वीरता का वाची है और रकार से रत्न, रथ आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाले पदों के प्रति भय का सूचक है। मूलतः अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि जहाँ प्रयुक्त होगी वहाँ शब्द अपने रूढ़िगत अर्थ को छोड़कर वक्रता उत्पन्न करेगा इसीलिये उक्त उदाहरणों में रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता है।

दिदेश यानाय सुसज्जिताय प्रवातवेगाय मही महेन्द्र।।[1]

विलोल खेलोपनत प्रवन्धैर्महर्षिभिश्चार्थितयोगचर्यम्।।

यहाँ मही महेन्द्र और योगचर्यम् शब्द में रूढ़ि वक्रता है। मही महेन्द्र जनक के लिये और योगचर्यम् से इस वक्रता का बोध हो रहा है कि जनक इस अनावृत्ति को हर प्रकार से विफल करेंगे जिसमें सर्व समर्थ ऋषियों की सहायता ली जायेगी।

ख. उपचार वक्रता–कुन्तक के अनुसार जहाँ अन्य (प्रस्तुत) से अत्यन्त व्यवहित (अप्रस्तुत) पदार्थ में रहने वाली किंचित समानता को किसी धर्म के अतिशय को प्रतिपादित किया जाये वहाँ उपचार वक्रता होती है-

यत्र दुरान्तरेऽन्यस्मात् सामान्यमुपचर्यते।
लेशेनापि भवत् कांचिद् वक्तुमुद्रिक्तवृत्तिताम्।।[2]
यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरलंकृतिः।
उपचार प्रधानासौ वक्रता काचिदुच्यते।।
व्याधिना नरशार्दूल कालधर्ममुपेशिवान्।।[3]

मरन्दनिस्यन्द वचोमधूनि सा तदैव दध्रे प्रतिपच्छिलीमुखम्।।[4]

यहाँ नर शार्दूल एवं शिलीमुख में उपचार वक्रता है। नरशार्दूल में नर और शार्दूल मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमान का प्रयोग है जबकि दूसरे उदाहरण में मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमान (कामभाव) प्रयुक्त हुआ है।

ग. सम्वृत्ति वक्रता–जहाँ पर वैचित्र्य कथन के उद्देश्य से सर्वनाम आदि के कथन द्वारा कर्ता या वस्तु का गोपन किया जाता है वहाँ पर सम्वृत्ति वक्रता होती है-

यत्र संव्रियते वस्तु वैचित्र्यस्य विवक्षया।
सर्वनामादिभिः कश्चित् सोक्ता संवृत्ति वक्रता।।[5]

---

(1) जा.जी.1/9 2, 12/2 (2) वक्रोक्ति जीवितम् 2/13,14 (3) वा.रा.1/42 9/2 (4) जा.जी.3/4/2 (5) वक्रोक्ति जीवितम् 2/16

उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी।

पुष्पित द्रुमसंछन्ना रम्यपुष्पित कानना।।[1]

अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटं च पर्वतम्।

तयोः पर्णकुटीं तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम्।।

स्पृशेत् पुरोवर्ति तटं प्रतीर्य का द्रुतं पराभूयः समस्त संगिनीः

इति प्रतिस्पर्धित तयोधावना ललङ्.घवार्पी शफरातिशायिनी।।[2]

यहाँ द्वितीय उदाहरण में 'का' प्रश्नवाचक सर्वनाम स्त्रीलिंग सखी के लिये आया हुआ है जिसका संव्यूहन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है, इसी प्रकार प्रथम उदाहरण में चित्रकूट की वन्य रमणीय सौन्दर्य के लिये तस्य शब्द के प्रयोग में संवृत्ति वक्रता है।

घ. वृत्ति वक्रता—वृत्ति वक्रता से अभिप्राय समास, तद्धित, सुब् धातु आदि व्याकरण की वृत्तियों से है जहाँ पर मुख्यतः अव्यपी भाव में रमणीयता हो वहाँ वृत्ति वैचित्र्य वक्रता कहीं जाती है। कुन्तक ने लिखा है-

अव्ययी भाव मुख्यानां वृत्तीनां रमणीयता।

यत्रोल्लसति सा ज्ञेया वृत्ति वैचित्र्य वक्रता।।[3]

जैसे-

रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठव्य नित्यशः।

सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।।[4]

लक्ष्मणो लक्ष्मि सम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः।

न च तेन विना निद्रां लभते पुरूषोत्तमः।।

मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हितं तं विना।

यदा हि हयमारूढ़ो मृगयां याति राघवः।।

अनंग लक्ष्मीमृदुतल्पसन्निभां ललाभरोमौधहरिन्मणिप्रभाम्।

बभार सीता त्रिवलीमनुत्तयां रतेस्सपर्यास्थलिकाभिवैव किम्।।[5]

अशेषगात्रऽस्नु तवैव वैभवं प्रयच्छ वाल्याय मुखन्नु केवलम्।

इतीव मध्यस्थविरंचिनाऽवितं वभौ वहन्त्यक्षिनिलीन शैशवम्।।

---

(1) वा.रा. 2/92/11,12 (2) जा.जी.2 25 (3) वक्रोक्ति जीवितन् 2 19 (4) वा.रा.1/18 29,30,31 (5) जा.जी. 3 11,12

वाल्मीकि ने समास बहुला भाषा का कम प्रयोग किया है। भाषा में मसृणता लाने के लिये ''लक्ष्मण लक्ष्मि सम्पन्नो'' का प्रयोग अत्यन्त सटीक रूप से हुआ है। राजेन्द्र मिश्र ने सीता के अपरूप वयः सन्धिजन्य सौन्दर्य वर्णन के लिये कृदन्त और तद्धित शब्दों का सुष्ठु सुप्रयोग किया है जिससे वयः सान्धि जन्य सीता के कायिक व्यापारों में लज्जा भाव, गोपन, अधिक संकोच आदि की व्यंजना के लिये जिन शब्दों का प्रयोग किया है उसमें समास बहुलता तो है ही चाक्षुषप्रत्यक्षीकरण के साथ नाद सौन्दर्य भी मूर्तिमन्त हो उठा है।

पद परार्द्धवक्रता—इसमें प्रत्यय रूप का प्राधान्य होता है। कुन्तक ने लिखा है–

.............यथास्वमपरार्द्धस्य प्रत्ययलक्षणस्य वक्रतां..................।[1]

इसके अन्तर्गत काल वैचित्र्य वक्रता, कारक वक्रता, वचन वक्रता, पुरुष वक्रता, उपग्रह वक्रता, प्रत्यय वक्रता इत्यादि भेद कहे गये हैं विस्तार भय से सब के उदाहरण न देकर कुछ लक्षण सहित उदाहरण दिये जा रहे हैं–

क. काल वैचित्र्य वक्रता—कुन्तक के अनुसार जहाँ औचित्य की अन्तर्मुखता से काल को रमणीयता प्राप्त हो जाती है अर्थात् कवि स्वयं वर्तमान में और उसका कथन अतीत और भविष्य दोनों ही वर्तमान में रूपान्तरित हो जाते हैं वहाँ काल वैचित्र्य वक्रता होती है–

औचित्यान्तरतम्येन समयो रमणीयताम्।
याति यत्र भवत्येषा काल वैचित्र्य वक्रता।।[2]

वाल्मीकि रामायण में चारित्र्येण चको युक्तः के उत्तर में नारद ने जो रामकथा सुनाई है वह कथा अतीत काल की है जबकि कवि ने उसका वर्णन वर्तमान काल में किया है–

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान वशी।।[3]
बृद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमांछत्रुनिवर्हगः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्वुग्रीवो महाहनु।।

यहाँ श्रुतः भूतकाल की क्रिया है जवकि वर्णन वर्तमान काल में किया जा रहा है। इसी तरह विश्वामित्र द्वारा राम के समक्ष कुशनाम की उपकथा कहते समय क्रिया का कर्मणि

(1) वक्रोक्ति जीवितम् 2/25 (2) वक्रोक्ति जीवितम् 2 26 (3) वा.रा.1/1/8,9

प्रयोग भूतकाल में किया गया है इससे एक चमत्कार उत्पन्न हो गया है-

किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममवमन्यते।
कुब्जाः केन कृताः सर्वाश्चेष्टन्त्योनाभिभापथ।
एवं राजा विनिःश्वस्य समाधिं संदधे ततः।।[1]

जानकी जीवन में लोकापवाद के कारण सीता निर्वासन प्रकरण के सम्बन्ध में वशिष्ठ का कथन वर्तमान काल में है जबकि यह घटना अतीत काल की है-

सायन्तने ह्यः किल दुर्मुखस्तं जगाद गुप्तं प्रणिधिर्नियुक्तः।
यन्मैथिलीमाक्षिपतीह कोऽपि चरित्र दृष्ट्या रजको नगर्याम्।।[2]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भरत की ग्लानि का वर्णन करने में इसी वक्रता का आश्रय लिया है।

ख. उपग्रह वक्रता—काव्य में चारूत्व उत्पन्न करने के लिये आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों पदों से किसी एक का प्रयोग जब किया जाता है उसको उपग्रह वक्रता कहते हैं, कुन्तक ने लिखा है-

पदयोरुभयोरेकमौचित्याद्विनियुज्यते।
शोभायै यत्र जल्पन्ति तामुग्रहवकृताम्।।[3]
चन्दनेन महार्हेण यस्यांगमुपसेवितम्।
मलेन तस्यांगमिदं कथमार्यस्य सेव्यते।।[4]
मन्निभित्तिमिदं दुःख प्राप्तो रामः सुखोचितः।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोक विगर्हितम्।।
वाष्पैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम्।
आर्येत्येवाभिसंक्रुश्च व्याहर्तुं नाशकत् ततः।।

कथं न दैवेन हृताऽस्मि बाल्ये भणाम्व! कस्मादिह जीवितास्मि।
पृथङ्. न कार्या तव नन्दिनीयं गृहान्तरे जीवति नैव सीता।।[5]
चिनोति का सम्प्रति देवपुष्पं रूणाद्धि का वा भवतीं प्रयत्नैः।
विलिम्पति द्वार भुवंच का वा वदाम्ब! का ते कुरूते सपर्याम्।।

---

(1) वा.रा.1/32/26 (2) जा.जी.18/39 (3) वक्रोक्ति जीवितम् 2 31 (4) वा.रा.2 99/35,36,39 (5) जा.जी.8/57, 58,68

धनं भवत्येय सुताऽन्यदीयं पिताऽविता मात्रमसौ नु तस्याः।

समर्प्य जातेऽधिकृतेऽद्यतां त्वां विभाति निर्भिक्षिकमेव मच्छम्।।

उक्त दोनों उदाहरणों में क्रिया का कर्तृवाच्य में सीधा प्रयोग न कर आत्मनेपद में या करण कारक के रूप में प्रयोग किया गया है इसीलिये यहाँ उपग्रह वक्रता है।

ग. उपसर्ग वक्रता—कवि धातु से पूर्व आने वाले छोटे उपसर्गो के द्वारा काव्य में चारुत्व उत्पन्न करते हैं इसे उपसर्ग वक्रता कहते हैं जैसे–

वदनेना प्रसन्नेन निःश्वसन्ती पुनः पुनः।।[1]

प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति।।

किमधिकं सखि! धिक्कृतदर्पकं झटिति पश्च विपश्च सकृत्स्वयम्।

अलमलं परिकुप्य विकुप्य वा त्वरय नन्दिनि! नन्दन लोचने।।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में निःश्वसन्ती, प्रणष्तापि, प्रणश्यति, विकुत्य एवं परिकुत्य जैसे शब्दों के प्रयोग से वक्रता उत्पन्न हो रही है।

4. प्रकरण वक्रता—कुन्तक ने कहा है कि जहाँ प्रबन्ध के कथानक संगठन में संश्लिष्टता हो वहाँ प्रकरण वक्रता होती है। बात यह है कि कुन्तक की दृष्टि में भरत के नाट्यशास्त्र अथवा परवर्ती नाट्याचार्यो द्वारा वर्णित वस्तु संविधान के रूप में अवस्थायें, अर्थप्रकृतियाँ और सन्धियों के माध्यम से प्रकरण में सौष्ठव उत्पन्न किया गया है कुन्तक इससे बहुत प्रभावित है। कथा के एक प्रसंग को प्रकरण कहते हैं। इस छोटी इकाई के कुशल संयोजन से ही प्रकरण में कलात्मक सौन्दर्य उत्पन्न होता है कहना नहीं होगा कि प्रबन्ध में रमणीयता, चारुत्व, संश्लिष्टता उत्पन्न करने के लिये कुन्तक प्रकरण वक्रता को महत्वपूर्ण मानते हैं। इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवन की समीक्षा करें तो देखेंगे कि कवि ने कुछ प्रकरणों का वर्णन अत्यन्त मार्मिकता और हृदयग्राही रूप में किया है, जैये–दशरथ–मरण के समय भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना, राम–वनगमन, सीता–हरण, हनुमान–सीता संवाद, युद्ध आदि प्रकरणों का वर्णन वाल्मीकि ने अत्यन्त कलात्मक रूप में किया है। साथ ही प्रकृति के संश्लिष्ट, ध्वन्यात्मक शब्दों के माध्यम से विम्बधर्मिता उत्पन्न

(1) वा.रा.5/15/36/2,48/2 (2) जा.जी.6/36

करते हुये राम के वियोग प्रकरण का हृदयावर्जक वर्णन किया है। इसी प्रकार अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने जानकी जीवन में सीता की वयः सन्धि, अयोग श्रृंगार के रूप में पुष्प वाटिका प्रसंग, सीता-निर्वासन प्रकरण में वशिष्ठ का उद्योग ऐसे प्रकरण हैं जो प्रबन्ध में भावाग्राही, मार्मिक, रसपेशल, रोचक और रस परिवर्तन के कारण चमत्कार उत्पन्न करने में पूर्ण रूप से सक्षम है यद्यपि वाल्मीकि रामायण में अवान्तर कथाओं का अधिक वर्णन है अतः निर्भ्रान्त रूप से यह नहीं कह सकते कि सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण के छोटे-छोटे प्रकरणों में वैचित्र्य मिलता है किन्तु अधिकांश प्रासंगिक घटनाओं को यदि छोड़ दें तो अन्य प्रकरण वक्रता की दृष्टि से परवर्ती कवियों के लिये अंगुल निर्देश एवं पाथेय का काम करते हैं। इस दृष्टि से जानकी जीवन के कोमल, भावुक, रसपेशल प्रकरणों का निर्वाह कुशलता पूर्वक हुआ है। यदि वाल्मीकि रामायण में वर्णन में ध्वनिमूलक शब्दावली रसानुकूल सामग्री या युद्धोपकरण, घात-प्रतिघात आदि से काव्योत्कर्ष में सहायता मिली है तो जानकी जीवन में कोमलकान्त पदावली, सरसपूर्ण भावों की परिकल्पना से प्रकरण रसोत्कर्ष में पूर्ण सहायक हुआ है। इस प्रकार प्रकरण वैचित्र्य की दृष्टि से हम दोनों कवियों को सफल कह सकते हैं।

कहना नहीं होगा कि हृदय समुद्र से निप्पन्न भाव राशियाँ काव्य रूप में रसिकों, सहृदयों, पाठकों को रसाप्लावित करती हैं जिस के अनुशंसन के लिये आचार्यों ने अनेक मापदण्ड बनाये हैं। वस्तुतः काव्य वह वस्तु है जिसमें जीवन की गाथा तो विन्यस्त होती ही है किन्तु जिसका परिमापन असम्भव सा ही है। मापदण्ड या मानदण्ड चाहे जितने बना लिये जायें काव्य के समक्ष वे बौने ही रहेंगे, उन्हें अक्षम तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि शब्द या अर्थजन्य जो चमत्कार या आनन्द निष्पन्न होता है उसका अनुभव भावक प्रत्येक दशा में करता है। प्रस्तुत अध्याय में अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, ध्वनि वक्रोक्ति की दृष्टि से आलोच्य दोनों काव्य-रामायण और जानकी जीवन की समीक्षा सिद्धान्तों के आलोक में की गई है और दोनों काव्यों में सौशब्द या अर्थ सौरस्य के कारक तत्वों की समीक्षा कर यह देखा गया है कि किस सीमा तक कवि ने अपनी प्रतिभा का सहज प्रयोग किया है अथवा लक्षणानुधावन के लिये उदाहरण लिखे हैं। आचार्य कुन्तक की वक्रव्यापार शालिनी दृष्टि का ध्यान सर्वत्र रखा गया है। क्योंकि वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवन में शब्द वक्रता से लेकर प्रबन्ध और प्रकरण वक्रता का निर्वाहन उतनी संगठनात्मक दृष्टि से नहीं मिलता जितनी

की जानकी जीवन में है। बात यह है कि वाल्मीकि रामायण का कथा विस्तार अत्यन्त व्यापक है अतः प्रबन्ध वक्रता या प्रकरण वक्रताजन्य आनन्द में यत्र-तत्र व्याघात सा प्रतीत होता है। शेष काव्य में जिस नादात्मकता, मसृणता, कोमलता, सौशब्द के विभिन्न रूप वैदग्ध भंगी भणिति के कारण उत्पन्न वक्रता तथा आनन्द या चमत्कार आलोच्य दोनों काव्यों में समान रूप से मिलता है। काव्य सम्प्रदायों से निरपेक्ष होकर वाल्मीकि रामायण की एक अन्य विशेषता है कि आध्यात्मिक या जीवन में सफलता प्राप्त करने हेतु विधि-विधान से इसके पारायण की परम्परा चली आ रही है जबकि जानकी जीवन शुद्ध काव्य कृति है अतः इसके पाठक सीमित भले हों किन्तु रचना में प्रवाहमयता, प्रसादमयता और आनन्दोधि में निमग्न कराने की पूर्ण क्षमता है विशेष रूप से सीता के बाल, युवा अवस्था की क्रीड़ाएँ पूर्वीय, आंचलिक संस्कृति का ही परिचय नहीं देती अपितु दाम्पत्य जीवन की रसपरक झांकी भी अंकित करती है। सीता निर्वासन के समय वशिष्ठ का सत्प्रयास सतर्क और आधुनिक मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधृत है इस प्रकार भारतीय काव्य सम्प्रदाय की दृष्टि से दोनों आलोच्य कृतियाँ उत्तम प्रतीत हुई है। कथा की त्वरा में जो आनन्द जानकी जीवन में दिखाई पड़ता है, सीमित कला पक्ष की दृष्टि से भी वह कम चमत्कारिक नहीं है यहाँ यह कहना असमीचीन प्रतीत नहीं होगा कि सिद्धान्त सक्षम काव्य के समक्ष लघु या बौने ही प्रतीत होते हैं यदि ऐसा न होता तो काव्यात्मा की खोज के लिये विभिन्न सम्प्रदायों की खोज न होती।

अध्याय–8

महाकव्य के लक्षण

महाकाव्य की कोई सार्वकालिक या सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि विभिन्न युगों में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। महाकाव्य युगीन जीवन चेतना को आत्मसात् करने के कारण व्यापक अर्थ में प्रगतिशील रचना है। महाकाव्य–सृजन एक सांस्कृतिक प्रयास है। जिस प्रकार 'संस्कृति' का मूल रूप अखण्डित रहते हुये भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार महाकाव्य की काव्य रूपात्मक प्रभुता के अखण्ड होते हुये भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं में विकास क्रम निरन्तर गतिमान रहता है। महाकाव्य के तात्विक विवेचन एवं विकासक्रम को समझने के लिये प्रथम आवश्यकता परिभाषा है जिसके अभाव में रचना का स्वरूप सम्वन्धी बोध नितान्त अनिश्चित प्रायः रहता है।

पाश्चात्य एवं पौर्वात्य देशों के साहित्य शास्त्रियों ने अद्यावधि महाकाव्य की जो परिभाषायें निश्चित की हैं, उनका आदर्श उनके समय से पूर्व रचित महाकाव्य रहे हैं। जैसे अरस्तु के लिये 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा भारतीय काव्याचार्यो के लिये 'महाभारत' और 'रामायण'।

महाकाव्य की परिभाषा के निश्चय के लिये पूर्व भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के एतद् विषयक मतों की विवेचना आवश्यक है।

भारतीय मत

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य की सुश्रंखलित परम्परा को दृष्टिपथ में रखते हुये आचार्यो ने समय–समय पर तत्सम्बन्धी अनुबन्ध निर्धारित कर महाकाव्य के स्वरूप को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया है। संस्कृत के उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भामह का 'काव्यालंकार' प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसमें सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ विद्वान अग्निपुराणकार के मत में भामह से भी प्राचीन मानते हैं, किन्तु आज तक इस कृति के समय का ही निर्णय नहीं हो पाया है। यह निश्चय ही भामह एवं दण्डी के बाद की कृति है, ऐसा अधिकांश विद्वानों का विश्वास है। भामह तथा दण्डी के पश्चात् अग्निपुराणकार, रूद्रट, भोजराज, हेमचन्द तथा विश्वनाथ प्रभृति आचार्यो ने महाकाव्य सम्वन्धी लक्षणों को प्रस्तुत किया है। आगे इन्हीं आचार्यो के मतों को प्रस्तुत करने के उपरान्त

महाकाव्य के स्वरुप को निश्चित करने का प्रयास किया है।

भामह (पांचवीं–छठीं शताब्दी)

इस आचार्य के मत में महाकाव्य सर्गबद्ध, महान चरित्रों से युक्त महत् आकार का, ग्राम्य शब्दों से युक्त, अर्थ गौरव तथा अहंकार से युक्त होना चाहिये। उसका कथानक सदाश्रित हो जिसमें मन्त्रणा तथा युद्धादि के वर्णन के अतिरिक्त नायक के अभ्युदय का वर्णन किया गया हो। महाकाव्य के कथानक को पंचसंधियों द्वारा सुगठित तथा ऋद्धिपूर्ण वनाया गया हो। उसमें समस्त रसों के साथ पुरूषार्थ चतुष्ट्य को स्थान देना चाहिये।

सर्गबन्धो महाकाव्यं महता महच्च तत्।
अग्राम्य शब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्।।
मन्त्र–दूत प्रमाणाजि नायकाभ्युदयंच यत्।
पंचाभिः सन्धिर्भियुक्तं नाति व्याख्येयमृद्धिमत्।।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयः सार्थोपदेशकृत।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंश–वीर्य–श्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।[1]

दण्डी (सातवीं शताब्दी)

दण्डी ने भामह के काव्य सम्बन्धी सभी तथ्यों को समेटकर अपना लक्षण प्रस्तुत किया है। 'महाकाव्य' में सर्गबद्धता, आरम्भ में आर्शीवादात्मकता अथवा वस्तु निर्देशात्मक हो। सदाश्रित वृत्त पर आधारित कथानक ऐतिहासिक अथवा लोक प्रख्यात वृत्त का हो। पुरूषार्थ चतुष्टय को स्थान मिलता हो। नायक चतुर तथा उदात्त हो। उसमें नगर, सागर, पर्वत, चन्द्रोदय, उद्यान, जलविहार, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्रणा, प्रयाण, नायक अभ्युदय, अलंकृति, संक्षिप्तता, रस भाव की निरन्तरता, सन्तुलित सर्ग–विधान, संधियों से गठित कथा, लोक रंजकता, तथा स्थायी महत्व के अतिरिक्त कलात्मक वैचित्र्य का समावेश किया गया हो।

---

(1) भामह–काव्यालंकार 1/19–22

सर्गबन्धो महाकाव्य-मुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया-वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्।।
इतिहास-कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्ग-फलायत्तं चतुरोदात्त-नायकम्।।
नगरार्णव-शैलस्तु चन्द्रार्कोदय-वर्णनैः।
उद्यान-सलिल-क्रीड़ा मधुपान-रतोत्सवैः।।
विप्रलम्भै र्विवाहैश्च कुमारोदय-वर्णनैः।
मन्त्रदूत-प्रयाणानि नायकाभ्युदयैरपि।।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव-निरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः।।
सर्वत्र भिन्न-वृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति।।
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदंगैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्रेषु सम्पत्तिराराधयति तद् विदः।।[1]

अग्निपुराणकार

अग्निपुराणकार के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है-

1. प्राख्यात कथानक के साथ प्रख्यात नायक हो।
2. संक्षिप्त सर्ग तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन।
3. इसमें नगर, चन्द्र, उद्यान, आदि वर्णन-वैविध्य को प्रधानता मिली हो।
4. कथानक में गठन तथा भाव एवं वृत्तियों की पूर्णता हो।
5. जीवन को समग्रता के साथ ग्रहण किया गया हो।
6. वाणी की विदग्धता होने पर भी रस को प्राण-तत्त्व मानना चाहिये।
7. उसका उद्देश्य महान हो।[2]

रुद्रट (नवम् शताब्दी का प्रारम्भ)

इन्होंने 'काव्यालंकार' में काव्य-भेदों का निरूपण करते हुये महाकाव्य के व्यापक

(1) दण्डी-काव्यादर्श 1/14-20 (2) अग्निपुराण-अध्याय 337 छंद 24-341

फलक पर गम्भीरता से विचार किया है।

1. उसने प्रबन्ध काव्य को कथा और आख्यायिका नामक दो भेदों में विभक्त किया तथा प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य की प्रतिष्ठा स्थापित की।
2. कथा के अनुत्पाद्य, उत्पाद्य तथा महत और लघु दो भेद किये। अनुत्पाद्य कथा का आधार इतिहास, पुराणादि का प्रख्यात वृत्त होता है तथा उत्पाद्य कथा कवि-कल्पित होती है।
3. नायक की अवतारणा युक्ति-युक्त कल्पना पर आधारित हो नायक के वंश की प्रशंसा हो। नायक त्रिवर्ग में आसक्त, तीन शक्तियों से युक्त, सर्वगुणसम्पन्न, समस्त प्रजा का अनुरागी, विजय की प्रबल लालसा से युक्त, अपने साथ अपने मित्रों के लिये सिद्धि में लगने वाला, चर अथवा दूत के द्वारा शत्रु के कुल अथवा राज्य का वर्णन सुनकर प्रबल शब्दों में क्रोध तथा उत्तेजना प्रकट करने वाला होना चाहिये।
4. नायक इतना दूरदर्शी हो कि व्यूह-रचना द्वारा घोर युद्धो की योजना करके अत्यन्त विकट परिस्थितियों में भी विजय श्री लाभ करे। नायक के प्रयाण में नागरिकों के मन की हलचल व्यक्त हो। प्रतिनायक भी नायक के समान ही गुणी हो तथा वह नायक के आक्रमण का प्रबलता से विरोध करे।
5. महाकाव्यों में चतुर्वर्ग का वर्णन होना चाहिये। परन्तु लघु प्रबन्ध में चतुर्वर्ग में से किसी एक को स्थान दिया गया हो।
6. महाकाव्य में सभी रसों को स्थान मिलना चाहिये।
7. सेना के शिविरों का वर्णन होना चाहिये। युवाओं की क्रीड़ाओं का वर्णन, रवि अस्त, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रजनी, युवक, समाज, संगीत एवं प्रसंगानुसार शृंगार का वर्णन हो।
8. कथानक में अनुकूल प्रकरण, काव्य संस्थानों की योजना तथा संधियों की सफल योजना हो।

> विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।
> तस्य कदाचितदुपेतं शरदादि वर्णयेत्सममयम्।।
> स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिप्यतस्तस्य।
> कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम्।।

स्वचरात्तद् दूताद्वा कुलोपि वा वृण्वतोरि कार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिरामं।।
संमन्त्रस्यसमं सचिवैर्निश्चित्य च दण्ड साध्यतां शत्रोः।
न दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम्।।
अथ नायक-प्रयाणे नागरिकाक्षो भजनपदाद्रि-नदीः।
अटवी कानन सरसीमरूजलधि दीप भुवनानि।।
स्कन्धावार-निवेशं क्रीडा यूनां यथायथं तेषु।
ख्यस्तभयं संध्यांसंतम समधोदयं शशिनः।।
रजनी च तत्र यूनां समाज-संगीतपान श्रृंगारान्।
इति वर्ण येत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात्।।
प्रतिनायकमपि तद्वतदभिमुखम मृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि।।
योद्धत्यं प्रतिरिति प्रवन्ध मधुपीति निशि कलत्रेभ्यः।
स्ववधं विशकमानान्संदेशान्दापयेत्सुभटान्।।
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरूभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते।।
सर्गाभिधानि चाष्मिन्नवात् प्रकरणानि कुर्वीत्।
संधीनपि संश्लिषस्तेषामन्योन्यसंवन्धात्।।[1]

भोजराज (ग्यारहवीं शताब्दी)

इन्होंने भामह तथा दण्डी की बात का प्रवल समर्थन किया है। भोजराज के मत से महाकाव्य न बहुत विस्तृत हो और न अति संक्षिप्त वह सन्तुलित आकार वाला हो। नायक-अभ्युदय का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया हो। उसमें काल तथा स्थान का भी सफल रूप दिखाई दे। श्रृंगार की चेष्टाओं की सफल अभिव्यक्ति के साथ जीवन पात्र-योजना पर वल दिया गया हो।[2]

(1) रूद्रट-काव्यालंकार अध्याय-16,7-19 (2) भोजराज-सरस्वती कंठभरणम्-5,126-137

हेमचन्द्र (बारहवीं शताब्दी)

प्राकृत आचार्य हेमचन्द्र ने महाकाव्य में सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन को स्वीकार किया है। छन्द की धारा को महत्व दिया है। कथा गठन में पंच संधियों के साथ तीन बातें और कही हैं- 1. शब्द वैचित्र्य 2. अर्थ वैचित्र्य 3. उभय वैचित्र्य।

शब्द वैचित्र्य के अन्तर्गत सर्गबद्ध, बन्ध की व्यापकता, कवि का इष्ट, आरम्भ आदि की चर्चा की है। अर्थ-वैचित्र्य में रसात्मक धारा की अखण्डता, नायक का उदात्त भाव, चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति के साथ नगरादि के वर्णन वैविध्य को स्थान दिया। उभय-वैचित्र्य में लोक रंजकता तथा अवान्तर कथाओं की गठित योजना पर प्रकाश डाला है।

महाकाव्य में रसानुरुप सन्दर्भ, र्शानुकूल छन्द, अलंकृत वाक्यावली, देश-काल के अनुरुप पात्र चेष्टा वर्णन तथा परलोक का परवर्ती हो।[1]

विश्वनाथ (14 शताब्दी पूर्वार्ध)

कवि विश्वनाथ ने महाकाव्य की बड़ी व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यो द्वारा निर्देशित समस्त लक्षणों का समाहार कर लिया है। उनकी महाकाव्य विषयक परिभाषा में निम्नांकित तथ्य दृष्ट्व्य है-

1. कथानक की ऐतिहासिकता।
2. कथावस्तु का सर्गो में विभाजन।
3. नाट्कीय संधियों का निर्वाह।
4. नायक का धीरोदात्त गुणों से युक्त एवं उच्चकुलीन होना। एक वंश के एकाधिक राजा भी नायक हो सकते हैं।
5. श्रृंगार, वीर, शान्त रसों में से एक की प्रमुखता एवं अन्य रसों का सहायक होना।
6. चतुर्वर्ग फल-प्रप्ति।
7. सर्ग संख्या आठ से अधिक तथा सर्गान्त नें छन्द परिवर्तन।
8. काव्यारम्भ में नमस्कार, मंगलाचरण, आशीर्वचन होना।
9. सज्जन स्तुति, दुर्जन निन्दा।
10. संध्या, सूर्य, रजनी, प्रदोष, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ,

(1) हेमचन्द्र-काव्यानुशासन, अध्याय-8 पृष्ठ सं0-401-403

मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपांग वर्णन होना।

11. महाकाव्य का नामकरण कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित होना। सर्गो का नाम कथा के आधार पर होना चाहिये।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।
एकवंशभवाभूपा कुलजा बहवोऽपि वा।।
श्रृंगार-वीर-शान्तानामेकोऽंगी रसाः इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक संधयः।।
इतिहासोभदवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्तुत्तेष्वेकं च फलं भवेत।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु-निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां चगुण-कीर्तनम्।।
एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेन्य-वृत्तकैः।
नाति स्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त-वासराः।
प्रातः मध्याह्न मृगया शैलर्तुवन-सागराः।।
संभोग-विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः।
रण-प्रयाणोपयम मन्त्र-पुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथा योगं सांगोपांगा अमी इह।
कवेर्वृतस्य वा नाना नायकस्येतरस्य वा।।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्ग नामतु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यान संज्ञका।।[1]

---

(1) विश्वनाथ-साहित्य दर्पण परिच्छेद 6,315-325

पाश्चात्य मत

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में महाकाव्य को 'एपिक' (Epic) कहा जाता है। एपिक शब्द एपोस' (Epos) से बना है जिसका अर्थ है-'शब्द'। कालान्तर में 'एपोस' का प्रयोग गीत के लिये होने लगा और अन्ततः शब्द वीरकाव्य के लिये प्रयुक्त हुआ।

संसार के प्रायः सभी देशों के साहित्य का प्रारम्भिक युग वीर युग रहा है। इस युग के साहित्य में वीर गाथाओं का सृजन हुआ है। इन वीरगाथाओं में वीरों के अदम्य साहस, पराक्रम, शक्ति एवं शौर्य की प्रशंसा की गई है। वीर युग संघर्ष और युद्ध का काल था जिसमें युद्धों का आयोजन उत्सवों की भाँति होता था। इसी काल से महाकाव्य का बीज वपन प्रारम्भ होता है। इन्हीं वीरगाथाओं का विकास वीर स्तुतियों (प्रशस्तियों) में हुआ। इन्हीं से शैली के अनुरूप कालात्मक और विकाशशील (Epic of Art and Epic of Growth) महाकाव्यों का विकास हुआ। महाकाव्यों के स्वरूप विकास के अध्ययन से ही बात सही प्रतीत होती है कि वीर काव्यों का विकास शैली के अनुरूप महाकाव्यों में हुआ विश्व के सभी आरम्भिक महाकाव्यों में वीर भावना का ही चित्रण मिलता है। डा0 शम्भूनाथ सिंह ने यूरोपीय महाकाव्यों के विकास की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार पहली अवस्था वीर भावना की, दूसरी शास्त्रीय धार्मिक और नैतिक भावना की तीसरी रोमांचक भावना की और चौथी स्वच्छन्दतावादी भावना की। पहली अवस्था का महाकवि होमर दूसरी के वर्जिल दान्ते, कैमास, मिल्टन आदि, तीसरी के स्पेन्सर एरिआस्टो, टैसोआदि।[1]

'द बुक आफ एपिक' की भूमिका में तो महाकाव्य की परिभाषा इस तथ्य को लक्ष्यगत कर दी गयी है-"एपिक प्रधान रूप से उस वीर रस प्रधान कथात्मक काव्य का नाम है, जिसमें श्रेष्ट काव्यों के सभी गुण हों जैसे-सुख, दुख और संयोग-वियोग का चित्रण तथा रीति तत्वों और कथा तत्वों का मिश्रण आदि हो, जिसमें स्वाभाविक जीवन के मनोहारी चित्र और प्रतिघात वर्णित हो और जिसमें सार तत्वों का प्रकृत समन्वय इस कुशलता से किया गया हो कि वह रचना सदा के लिये अमर हो जाये।"[2]

"अस्तु स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारण करते समय वीर काव्यों को लक्षीभूत किया था।"

---

(1) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप एवं विकास पृष्ठ सं0-170 (2 विदेशों के महाकाव्य, अनुवादक गोपी-कृष्ण गोपेश भूमिका पृष्ठ सं0-13

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने महाकाव्य का विवेचन किया है। उनके विवेचन का आधार 'इलियड और ओडसी' नामक महाकाव्य हैं। 'पोइटिक्स' नामक ग्रन्थ में महाकाव्य का जो विवेचन किया गया है, यद्यपि इस विवेचन के आधार पर ग्रन्थ 'इलियड' और 'ओडेसी' जैसे विकसनशील महाकाव्य ही प्रतीत होते हैं, किन्तु वे लक्षण किसी सीमा तक अलंकृत महाकाव्य पर ही लागू होते हैं।

अरस्तु द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य-लोचकों को उनमें से अधिकांश लक्षण भी मान्य हैं। अरस्तु के महाकाव्य विषयक विवेचन का सारांश इस प्रकार है-

1. महाकाव्य भी काव्य की भाँति किसी पूर्ण, गम्भीर, उदात्त कार्य व्यापार की अनुकृति होती है।

2. महाकाव्य कथात्मक काव्य है, जिसका कथानक ऐतिहासिक हो सकता है। महाकाव्य के कथानक में गुरू गम्भीर संयोजना होती है।

कथानक में अति प्राकृत तथा आलौकिक तत्वों का मिश्रण तथा असम्भव बातों का वर्णन रहता है।

"The Superising is necesray in tragedy : but the epic poem goes further and admust even the imprepaple and incrediple and incrediple and incrediple from wich the highst sence of surprising serults."

"The post should preger impossipelities which appear propable to such things as thought possible appear impropable far from producing a palar made up of mpropable incidents he should is possible admit no one circumstance of that kind or if doesis it. it should be exterior to the ection it self."[1] महाकाव्य का कथानक नाटक की पूर्व अन्विितिपूर्ण होना चाहिये यद्यपि नाटक से महाकाव्य के कथानक का आकार बड़ा होना स्वाभाविक है।

"But the Epic imitation, being narrative, admits of many such simultaneous, incidents, properly related to the subject whicj swell the poem to a considerable size."[2] कथानक में आदि, मध्य और अन्त होना चाहिये।

---

(1) Aristotle's Poetice, Part-III the Epic Poem. P.49-50 Edited by T.A.Moxon (2) Ipid, P.48

3. महाकाव्य में प्रारम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। यह छन्द षटपदी है। वीरकाव्यों में इस छन्द का व्यवहार उपयुक्त भी है।

4. त्रासदी (Tragedy) और महाकाव्य की तुलना करते हुये पात्रों के बारे में अरस्तु ने लिखा है "कि जहाँ तक शब्दों के माध्यम से महान चरित्रों और उनके कार्यो के अनुकरण का सम्बन्ध है; महाकाव्य और त्रासदी में समानता पायी जाती है। अर्थात् पात्र होने चाहिये।"

"Epic poetry agrees so for with tragic as it imitation of great characters and actions by means of words."[1]

5. महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। अतः महाकाव्य के कवि को अपनी सशक्त कल्पना द्वारा जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन करना चाहिये।

6. महाकाव्य की भाषा का चयन सुन्दर होना चाहिये। महाकाव्य चाहे सरल हो या जटिल किन्तु भावनाओं को साकार करने की शक्ति भाषा में अवश्य होनी चाहिये।

7. अरस्तु की मान्यता थी कि काव्य का लक्ष्य मुख्यतः अनुकृति द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। अतः महाकाव्य का भी यही लक्ष्य होना चाहिये।

अरस्तु के अतिरिक्त महाकाव्य के सम्बन्ध में अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है। फ्रेंच विद्वान ली वस्सु (Le Bassu) के अनुसार–

"महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है।"

"Le Bassu defined epic as ," a composition in verse intended to form the mamers by instruotions disguised under the allegories of an important action."[2]

लार्ड केम्स के अनुसार–"महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यो का उदात्त शैली में किया गया वर्णन है।"

"As to the general taste is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related in an elevated in style will. without further requisite be deemed as epic poem."[3]

हाब्स ने कथात्मक कविता को महाकाव्य कहा है।

---

(1) Ipid, P.13 (2) Quoted by M. Dixon, English Epic & Heroic Poetry. P.2 (3) Ipid, P.18

"The heroic poem narrative is called an epic said hoppes the heroic poem dramatic is tragedy."[1]

इन सभी परिभाषाओं में महाकाव्य के बाह्य स्वरूप पर ही अधिक विचार किया गया है।

वर्तमान काल में भी अंग्रेजी के समालोचकों ने महाकाव्य का स्वरूप विवेचन किया है। सुप्रसिद्ध समालोचकों बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है–

"सर्वसम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्य रूप हैं जिसका आकार वृहद् होता है। जिसमें महत्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन–कथा होती है। उसके पढ़ने के बाद हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि उसकी घटनायें और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव, और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।"

"An epic poem is by common consent a narrative of some legth and deals with events which have a certain grandeur and inportance and come from a life to action, especialty of vilolent ection such as war. It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of guman achievement and in the dignity and nobility of man."[2]

इनकी परिभाषा में महाकाव्य की आन्तरिक व्याख्या बड़ी स्पष्ट हुई है किन्तु बाह्याकार के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। एबरक्रॉम्बी की महाकाव्य–विषयक परिभाषा इस प्रकार है–"वृहद् आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं बन सकता है। महाकाव्य की शैली ही उसे महाकाव्य बना सकती है। और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से जुड़ी रहती है। इस शैली के काव्य हमें ऐसे लोक में पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्वहीन असारगर्भित नहीं रह जाता है। महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यान्त संचालन करता है।"

"What epic quality, detached from epic proper do these poems possess them, apart from the mere fact that they take up great many pages ? It is a

(1) Ipid, P.22 (2) G.M. Bowra, from Virgit to Milton P.1

simple question of their style the style of their conception and the style of their Writings, the whole style of their imagination, in fact. They to take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant a dominant, noticeable sybolic purpose presides out each poem, moulds it greatly and informs it throughout."[1]

महाकाव्य के सम्बन्ध में प्रो0 टिलीयार्ड ने भी विस्तार से विचार किया है। उनका मत है कि "हमारे पास मूल्यांकन का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है कि अमुक रचना महाकाव्यात्मक प्रभाव से युक्त है या नहीं।"

"We donot find any principle to guide us in deciding whether this or that work does or does not give the epic impression."[2]

महाकाव्य की कुछ अनिवार्य विशेषतायें ही होती हैं जिनके आधार पर उनका निर्णय किया जा सकता है। उन्होंने महाकाव्य के लिये जिन आवश्यकताओं का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं–

1. महाकाव्य उत्तम गुणों से युक्त गम्भीर रचना है।
2. महाकाव्य व्यापक, विविधोन्मुखी और सर्वांगीण जीवन का चित्रक होना चाहिये।
3. महाकाव्य की तीसरी आवश्यकता व्यापक मानवीय विश्वासों और भावनाओं का सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप चित्रण होना चाहिये।

"The First Epic requirment is the simple one of high quality and of high seriousness."

"The second Epic requirement can be roughed out by vague words like amplitude, breadth, inclusiveness and so on.....as (Aristole directs us to greater amplitude in the epic, that ability to deal with more. Sides of life, which differentiate it from tragic drama.)

"The third Epic requirement has been hinted already though what I said a about fortuitous concatenations." प्रो0 टिलीयार्ड ने इस मत में इस प्रकार स्पष्ट किया

(1) Laseelles Apercrompie, the Epic P.P.41.42 (2) E.M.W. Tillyard, The English Epic & It's Back Ground P.3 (London) 1954

है :- "This exercise of will and belief in it (paradise lost) which are a corollary of our third Epic requirement, help to associate epic poetry with the largest human movements and solidest human institutions.[1]

4. महाकाव्य की चौथी आवश्यकता यह है कि उसमें सा समसामयिक जीवन की अमोघ शक्ति होनी चाहिये।

5. सच्चे अर्थों में महाकाव्य कही जाने वाली रचना में वीर भावना की प्रभावाभिव्यक्ति होनी चाहिये।

"The fourth Epic requirement can be called choric. The Epic must express the feeling of a large group of people living in or near his own time. The notion that Epic is primarily patriotic is an unduly narrowed version of this requirement........We can simplify even further and say no more that the Epic must communicate the feeling what it was like to be alive at time. But that feeling must include the condition that behind the Epic author is a big multitude of men. Whose most serious convictions and dear habits he is mouthpiece."

"I want to insist that true Epic creates a heroic impression."[2]

6. जहाँ तक महाकाव्य के विषय विधान का सम्वन्ध है महाकाव्यकार को जीवन की सर्वांगीणता का व्यापक अनुभव और विस्तृत ज्ञान होना चाहिये।

"As to contents, the writer must seem to know everything before his mission to speak for a multitude can be ratified he must also span a corresponding width of emotions, if possible one embracing the simplest sensualites at one end. and a sense of the numinous at the other But while in the large area of the life. the Epic writer must be counted in normal. he measure the crooked by the straight, he must exemplify the sanctity that has been claimed for True genius only of this condition will the community trust him and allow him to speak for them."[3]

इस प्रकार प्रो0 टिलीयार्ड ने अपने महाकाव्य-विषयक विवेचन में महाकाव्य के बाह्य

(1) Ipid, P.5-6 (2) Ipid P.12. Ipid P.10 (3) E.M.W. Tillyard. The Epic strain in English Novel P.16

वं आन्तरिक दोनों पक्षों पर बल दिया है। उनकी परिभाषा आज के महाकाव्यों पर भी पूर्णतः ागू होती है। आज का महाकाव्यकार प्राचीन, रूढ और काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह ाग्रहपूर्वक नहीं करता है। प्रो0 टिलीयार्ड के विवेचन में काव्य के उदात् गुणों और सर्वांगीण ीवन के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है जो युगानुरूप है। समष्टि रूप से विभिन्न ाश्चात्य आचार्यो ने महाकाव्य-विषयक जो मत प्रकट किये हैं, उनका सारांश इस प्रकार है-

1. महाकाव्य वीरकाव्य (Heroic Poetry) है।
2. महाकाव्य का कथानक लोक-विश्रुत और महत्वपूर्ण होना चाहिये।
3. उसमें जातीय जीवन का व्यापक चित्रण होना चाहिये।
4. महाकाव्य का नायक असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसमें शौर्य, वीर और पराक्रम आदि गुणों का होना अनिवार्य है। अन्ततोगत्वा वह काव्य में विजयी चित्रित किया जाता है। उसके व्यक्तित्व में राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व होता है।
5. महाकाव्य में घटना-बाहुल्य और वर्णन-वैविध्य होता है। अतः वस्तु संकलन में शिथिलता आ जाती है। कथानक में स्मृति तो होती है किन्तु नाटकों जैसी अन्विति का अभाव होता है।
6. महाकाव्य की भाषा ओजपूर्ण होती है। उसमें जातीय जीवन के आदर्शों की व्यंजना की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य होनी चाहिये। शैली गरिमापूर्ण तथा एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।
7. महाकाव्य का रचयिता महान् प्रतिभा-सम्पन्न, मेधावी कलाकार होता है। उसमें विराट कल्पना शक्ति और विलक्षण काव्य-कौशल होना चाहिये।
8. महाकाव्य का लक्ष्य महान् होता है। अर्थात शाश्वत् जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा। उदाहरण के लिए असत परसत की विजय महाकाव्य समसामयिक जीवन की प्रेरणा का स्रोत होना चाहिये।

पाश्चात्य और भारतीय काव्यादर्शों की तुलना

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक देश के साहित्याचार्यो ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय पूर्व प्रचलित महाकाव्यों को ही लक्ष्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया

था। इसके अतिरिक्त आरम्भिक काल के सभी देशों के महाकाव्यों में भी सामान्य प्रवृत्तिया पाई जाती हैं; क्योंकि विश्व भर के महाकाव्यों के मूल स्रोतों की खोज मानव जाति के आदिम साहित्य के भीतर से की जाती है।[1] यही कारण है कि महाकाव्य विषयक भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों की आधारभूत मान्यताओं के सम्बन्ध में विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता।

दोनों ही मानते हैं कि महाकाव्य में महान कार्य और व्यापक विषय वस्तु होती है। महाकाव्य की कथा पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा लोक विश्रुत होनी चाहिये। महाकाव्य की घटनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टि से कोई प्रतिवन्ध नहीं इसीलिये भारतीय महाकाव्यों की घटनायें अनेक वर्षों की होती है जबकि पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में कार्य की अवधि कुछ दिनों की भी होती है। जैसे 'इलियड' और 'ओडेसी' की कथा कुछ दिनों की ही रही है। महाकाव्य के नायक उदात्त गुणों से सम्पन्न आदर्श और चरित्रवान् होना चाहिये। नायक के व्यक्तित्व में जातीय जीवन और सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधित्व की क्षमता होनी चाहिये। भारतीय महाकाव्यों में आदर्श चरित्र की धारणा के मूल में लक्ष्य की महानता अन्तर्भूत है। नायक के व्यक्तित्व में वह शक्ति, शील और शौर्य होना चाहिये जो असत् और अमानवीय प्रवृत्तियों (सच्व, शील, नय, शान्ति, व्यवस्था आदि) का संस्थापक होना चाहिये। घोर संघर्ष के वाद भी महाकाव्य में अन्ततः नायक की विजय होनी चाहिये। पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में हम नायक का चारित्रिक पतन और हनन भी पाते हैं; अतः स्पष्ट है कि नायक की चारित्रिक उच्चता पर वहाँ इतना बल नहीं दिया जाता है।

महाकाव्य की भाषा सशक्त और शैली गरिमापूर्ण होनी चाहिये। भाषा शैली में काव्य के प्रतिपाद्य को व्यंजित करने की शक्ति और क्षमता होनी चाहिये। वर्णनों की विविधता को दोनों ने ही माना है। छन्द विधान के सम्बन्ध में पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में आद्यान्त एक ही छन्द के प्रयोग पर बल दिया है जबकि भारतीय महाकाव्यों में एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग उचित माना गया है। कुछ आचार्यों ने सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का उल्लेख किया है।

अति प्राकृत तत्वों और आलौकिक शक्तियों का समावेश भी उचित माना गया है। दैवी शक्तियों और नियति के बारे में भी सहमति है। किन्तु पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में

(1) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास-पृष्ठ सं0-1

जहाँ भूत, प्रेत, दैत्य, दानव, देवता आदि प्रत्यक्ष पात्रों के रूप में कथा में आये हैं, वहाँ भारतीय महाकाव्यों में देवता अवतार ग्रहण करके अप्रत्यक्ष रूप से आये हैं।

पाश्चात्य महाकाव्यों में वीर भावना पर बल दिया गया है। किन्तु भारतीय महाकाव्यों में श्रृंगार, वीर और शान्त इन तीनों में से एक रस की प्रधानता और अन्य सब रसों का वर्णन भी अंगी रूप में स्वीकार किया गया है। पाश्चात्य महाकाव्यों में भौतिकवादी संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएँ ही संघर्ष, द्वन्द्व और युद्ध की अवतारणा का मूल कारण है। भारतीय संस्कृति की त्याग और वैराग्य भावना ने महाकाव्यों में शील, सच्च और नीति तत्वों को प्रमुखता दी है। इसीलिये हमारे यहाँ के महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति माना गया है। रामायण और महाभारत जैये महाकाव्यों में युद्धों की रक्त रंजित गरिमा से विराटत्व की स्थापना हुई है, किन्तु युद्ध नीति यहाँ धर्मनीति में ही अन्ततः बदली है। हमारे यहाँ युद्ध-क्षेत्र भी धर्म-क्षेत्र ही रहा है। महाभारत का केन्द्रबिन्दु भारत-युद्ध न होकर गीता के 'सत्यं जायते नानृतं' उपदेश में सन्निहित है। रामायण में भी राम-रावण का संघर्ष मानव की दानवीय और दैवीय प्रवृत्तियों का संघर्ष है। और फिर संघर्ष प्रमुख नहीं, संघर्ष का परिणाम अर्थात, असत् पर सत् की अनीति पर नीति की, अध र्म पर धर्म की विजय प्रमुख और महत्वपूर्ण है। हमारे महाकाव्यों में प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग, योग और कर्म है। कर्म कर्त्तव्य भावना से युक्त, योग; त्याग-निष्ठा से युक्त और भोग धर्माचरण में है। यही कारण है कि भारतीय महाकाव्यों में जीवन दर्शन का एक व्यवस्थित रूप मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य की आधारभूत मान्यताओं में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टियों में समानता है। महाकाव्य के एक साहित्यालोचक "डिक्सन" ने महाकाव्यों की मौलिक समानताओं को देखकर ही कहा था-"महाकाव्य (वीरकाव्य) सर्वत्र एक ही प्रकार का होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, उसका रक्त और प्रकृति समान होते हैं। सच्चा महाकाव्य कहीं भी लिखा जाये, वह एक कथात्मक काव्य होता है। उसमें महान् चरित्र और महान कार्य होते हैं; उसकी शैली विषय की व्यापकता के अनुकूल होती है। जिसका प्रयास चरित्रों और कार्यो को आदर्श रूप में चित्रित करके घटनाओं और वर्णनों के द्वारा कथात्मक वैभव की अभिवृद्धि करना होता है।"

"Yet Heroic poetry is one; Whether of East or west, the North or South its blood and tewper are the same, and the true epic whereever created will be narrative poem, Organic in stsucture dealing with great actions and great characters, in a style commensurate with lordiness of its theme, which tends to idealize these characters and actions and to sustain embellish its subject by means of episode and amplifications."[1]

भारतीय और पाश्चात्य काव्याचार्यो द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय आचार्यों ने महाकाव्यों के बर्हिरग पक्ष पर अपने विवेचन में अधिक बल दिया है। उसकी दृष्टि में महाकाव्य में कलात्मक औदात्त अधिक महत्वपूर्ण रहा है। अन्तरंग की दृष्टि से उन्होंने रस निष्पत्ति को पर्याप्त माना है। इस प्रसंग में डा0 माता प्रसाद जी गुप्ता का यह कथन उचित है-"महाकाव्य की........रूप रेखा को देखने से ज्ञात होगा कि हमारे यहाँ के साहित्य सास्त्रियों का ध्यान विशेषतः उसके आकार-प्रकार के विषय में रहा है; उसकी अन्तरात्मा के विपय में नहीं।"[2]

तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि महाकाव्य पर विचार करते समय आचार्यो ने पूर्ववर्ती एवं समकालीन महाकाव्यों को लक्ष्य बनाया था। यही कारण है कि प्राचीन काव्याचार्यो द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्यों के निकष पर आज के महाकाव्य खरे नहीं उतरते और सम्भव है कि आधुनिक मान्य लक्षणों के आधार पर भविष्य के महाकाव्यों का स्वरूप निर्णय न हो सके। महाकाव्य का स्वरूप कभी एक सा नहीं रहा है। युग-जीवन और समाज की परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुसार महाकाव्य की परिभापायें बनती और बदलती रही हैं।

कहना नहीं होगा कि भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्यों के लक्षण में दो तत्व प्रमुख रूप से उभरकर सामने आये हैं-1. इतिवृत्तात्मकता 2. रसात्मकता

1. इतिवृत्तात्मकता—जिसमें मुख्य आधिकारिक कथा जीवन्त होकर आद्यान्त चलती है और इसमें नदी-नदीश सम्बन्धो के अनुरूप प्रासंगिक या गौण कथायें मिलती रहती हैं। इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् पर दृष्टिपात करें तो यह सहज ही

(1) M. Dixon. English Epic & Heraic Poetry P.24 (2) तुलसीदास, पृष्ठ सं0-366 तृतीय संस्करण-1953

निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण की कथा प्रकथन पूर्ण सानुबन्ध कथा है जिसमें आधिकारिक कथा राम जन्म, विवाह, वन-गमन, सीता-हरण, सीता-निवेषण, सेतुबन्धन, रावण-वध, सीता-निर्वासन और उनका भूमि प्रवेश हैं। प्रासंगिक कथाओं में रावण, वालि-सुग्रीव, हनुमान एवं गौण कथाओं में-गंगावतरण, विश्वामित्र प्रसंग आदि दसाधिक कथायें आती हैं, जानकी जीवन में सीता जन्म, उनकी बाल, पौगण्ड क्रियायें, पुष्प वाटिका में पूर्वराग, विवाह, अयोध्या में दाम्पत्य जीवन जन्य उल्लास, वनगमन तथा शेष कथा वाल्मीकि के अनुशरण पर चलती हैं। वाल्मीकि रामयण की कथा में विशृंखलता, एकसूत्रता का अभाव है। प्रासंगिक कथायें अधिकारिक कथा को रोक लेती हैं जवकि इस दृष्टि से जानकी जीवन की कथा सफल है क्योंकि अन्विति, प्रवाहमयता का उसमें पूर्ण उपयोग है। वाल्मीकि की कथा में वर्णनों की भरमार है, जानकी जीवन में अनावश्यक विवर्णो को स्थान नहीं दिया गया है। इस प्रकार कथा सुसम्बद्धता की दृष्टि से जानकी जीवन सफल महाकाव्य है। इसमें कार्य की एकरूपता का विशेष ध्यान रखा गया है।

कथा के अन्तर्गत पात्रों की उपस्थिति अनिवार्य मानी गयी है। पात्र ही अपनी क्रिया-कलापों से घटना को जन्म देते हैं अतः महाकाव्यों में उदात्त गुण सम्पन्न नेता की परिकल्पना की गई है। आलोच्य दोनों काव्यों में राम सर्वगुण सम्पन्न, सत्वगुण वाले धीरोदात्त नायक हैं। सीता नायिका है, रावण प्रतिनायक है। मन्दोदरी प्रतिनायिका है। शेष पात्र गौण पात्र हैं। पात्र की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण विशाल विश्वकोष है इनमें सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, धार्मिक, अधार्मिक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक मानवीय चेतना सम्पन्न पात्र हैं। जानकी जीवन के राम वाल्मीकि के राम के समान दुर्दर्ष जीवन शक्ति सम्पन्न नेता तो नहीं है अतः कोटिकरण की दृष्टि से हम उन्हें लालित्य की प्रधानता के कारण धीर ललित पात्र कह सकते हैं। दोनों कवियों ने पात्रों के वाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रांकन किया है। वाल्मीकि के राम अनेक गुण सम्पन्न महानायक हैं, वे धर्न के साक्षात विग्रह है उनसे ही चरित्र अपने को सार्थक करता है जवकि जानकी जीवन का राम श्रृंगार प्रिय-कोमल मनोवृत्ति वाले हैं, उनके क्रोध में या दुर्दर्ष कार्यो में वह आकर्पण नहीं जो वाल्मीकि के राम में है। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि-विभीपिका, कठोरता दुखदायी होती है किन्तु कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिसमें क्रोध, शौर्य, क्रूरता, उदण्डता का आकर्षण

पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसीलिये वाल्मीकि के राम वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल हैं जबकि जानकी जीवन में राम की कठोरता उतनी भव्य और आकर्षण नहीं बन सकी है।

2. रसात्मकता—रसात्मकता काव्य का प्राण है। कवि अपने कल्पना के द्वारा विभाव, अनुभाव, संचारी भावों की ऐसी संयोजना करता है कि पाठक उसमें आकण्ट निमग्न हो जाता है। वाल्मीकि रामायण का मूल स्रोत करूण रस है, जिसका स्रोत आधार क्रौंच वध है किन्तु कथा वीर रस प्रधान मानी गयी है क्योंकि इसका एक अन्य नाम पौलत्स्य वध है। इस कथा का एक दूसरा पक्ष भी है कि उसका पर्यवसान करूण रस में हुआ है जिसमें सीता धरित्री के गर्भ में समा गयी है अतः अंगी रस के रूप में वीर, श्रृंगार और करूण रस चाहे जो माने किन्तु कवि ने अपनी रसात्मकता के कारण घटनाओं का चित्रांकन किया है जिससे श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीमत्स, शान्त आदि सभी रसों को उपयुक्त स्थान मिल सका है। कवि ने बड़े रचना नैपुण्य से श्रृंगार और वीर का मिश्रण कर जिस कौशेय पट का निर्माण किया है उसके दूसरे छोर पर वीर और वीमत्स या भयानक रस का मिश्रण भी है। रस की दृष्टि से वाल्मीकि की कथा गरिमामयी, रसपेशल और हृदयावर्जक ही नहीं अपितु एक विशाल, भव्य, विस्तृत फलक पर चित्रित हुई है वहीं दूसरी छोर जानकी जीवन की कथा अत्यन्त सीमित रूप में घटनाओं के उल्लेख मात्र से विकसित हुई है जिसका अंगी रस निर्भ्रान्त रूप से श्रृंगार है क्योंकि निर्वासन से पूर्व अपवाद परिमार्जन हेतु वशिष्ठ का सतर्क व्याख्यान तथा सीता-राम के मिलन से यह बात सिद्ध होती है। लक्षणानुधावन के रूप में अन्य रसों का वर्णन अवश्य हुआ है। किन्तु कवि का मन सीता की वाल क्रीड़ाएँ, वयः सन्धि जन्य चिन्तन, यौवनागम के कारण व्रीडा, अंग संकोच, कामावेग का स्फुरण और पुष्प वाटिका में राम-सीता के वाक्विलास का चित्रण जितनी सहजता और स्वाभाविकता से हुआ है वह पाठक को आप्लावित करने में पूर्ण समर्थ है।

विविध वस्तु वर्णन—भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्यों में प्रकृति चित्रण के साथ ही कवि को अपनी बहुज्ञता या पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु अनेक वस्तुओं के उल्लेख विधान मिलता है। इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण एक विस्तृत शब्दकोश की तरह है जिसमें प्रकृति के कोनल, कठोर एवं प्रायः सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रमा, मेघाच्छदित आकाश, प्रच्छन्न वनस्पतियाँ,

मानव जीवन पर प्रकृति का प्रभाव, समुद्र, पर्वत, नदियाँ, राजा, नगर इत्यादि अनेक वस्तुओं के वर्णन उपलब्ध हैं। इन विवर्णो में प्रकृति अपने यथार्थ और बहुआयात्री रूप में चित्रित हुई है साथ ही नगर एवं ग्राम्य संस्कृति जन्य संस्कारों वस्तुओं के वर्णन इसे महाकाव्यात्मक रूप प्रदान करते हैं जबकि "अरूण रामायण" में प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ परम्परा पालन हेतु सीमित अन्य वस्तुओं का वर्णन हुआ है।

गरिमामयी भाषा एवं उदात्त शैली-भाव काव्य के आन्तरिक पक्ष से सम्वन्धित है तो भाषा उसके अभिव्यंजना या अभिव्यक्ति के प्रधान और बर्हिरंग साधन हैं। भाव जितना गम्भीर और विविध रूप वाले होंगे शैली उतनी उदात्त होगी क्योंकि बिना भाषा के भाव अभिव्यक्त ही नहीं हो सकेगें। वाल्मीकि रामायण की मूल कथा जहाँ एक ओर घटना प्रधान, ऐतिहासिक है वहीं दूसरी ओर प्रतीकात्मकता के कारण वह मनोभावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। राम का चरित्र धर्म एवं चरित्र की कथा है। मूल कथा होने के कारण आदिम मानव से लेकर अद्यतन जीवन के विविध भावों की निवृत्ति इसकी घटनाओं से सम्भव है। कवि वाल्मीकि ने ऐसे भावों का अध्यारोपण मानव जीवन में प्रथम वार किया है इसीलिये वे संस्कृत साहित्य के प्रथम कवि कहलाते हैं। उनके पूर्व संस्कृत भाषा तो अवश्य थी किन्तु मानव को केन्द्र विन्दु में रखकर भवों क ललित्य और गरिमापूर्ण शैली में ऐसा चित्रांकन किया है कि पाठक और अभिभूत हुये बिना नहीं रह सकता। ओज, प्रसाद, माधुर्य, गौणी, पांचाती वैदर्भी इत्यादि काव्यशास्त्र के सिद्धान्त तो बाद में निर्मित हुये हैं किन्तु कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा लोक जीवन से निकट सम्वन्ध रखने वाले उपमानों का सहज और सरल रूप में ऐसा प्रयोग किया है कि अनुप्रास सहित आरोप, साधर्म्य विरोधगर्भ प्रधान प्रायः सभी अलंकार हृदयस्पर्शी रूप में प्रकट हुये हैं। कवि ने एक नये ही छन्द का निर्माण किया है जो स्वतः भावावेग के कारण अपने हृदय वन्ध को जोड अनुष्टुप रूप में प्रकट हुआ है। रामायण की भाषा कहीं विवरण अभिधा प्रधान तो कहीं अलंकृत प्रधान है। भाव एवं रसानुकूल भाषा पात्रानुकूल भी है। सम्भवतः उस समय ऐसी सरल प्रसादमयी जन जीवन की रही हो जिसे कवि ने शब्द शक्तियों एवं ध्वनियों तथा वक्रभंगी भणित व्यापार के कारण जिस रूप में प्रकट किया है उसमें एक ओर तलस्पर्शिता तो दूसरी ओर प्रकथन की गहराई सूक्तियों की व्यंजना देखते ही बनती है। जानकी जीवन की भाषा अलंकृत प्रधान कोमल कान्त पदावली

से युक्त है जिसमें सुबन्त या तिगन्त सौशब्दों का विशेष ध्यान रखा गया है इसमें अनुष्टुप सहित इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशास्ध, मालिनी, द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, सुन्दरी आदि भाव एवं पात्रानुकूल विविध छन्दों का प्रयोग है। वाल्मीकि में यथार्थता, उदात्तता है तो जानकी जीवन में अलंकृत प्रधान चमत्कारप्रियता है कवि ने सानुप्रासिक शब्दों के साथ उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक का बहुविध प्रयोग किया है विशेष रूप से स्त्री सौन्दर्य चित्रण में कामशास्त्र वर्णित उपमानों का प्रयोग है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण वृहद् घटना व्यापार पात्र और वस्तु वर्णन के कारण आकारगत वृहद् है तो दूसरी ओर जानकी जीवन अलंकृत भाषा और गरिमापूर्ण शैली के रूप में महाकाव्य कहलाता है।

महद् उद्देश्य—प्रायः सभी सिद्धान्तकारों ने महाकाव्य में महद् उद्देश्य की चर्चा की है इस दृष्टि से आलोच्य दोनों काव्य निर्भान्त रूप से महाकाव्यात्मक गरिमा से सम्पन्नः हैं क्योंकि वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ क्रौंचवध के कारण विगलित करूणा से हुआ है तो जानकी जीवन की कथा वर्णन के मूल में कलंक के कारण सीता निर्वासन था जिसे वाल्मीकि ने प्रारम्भ में तो राजेन्द्र मिश्र ने अपनी वैदुष्यपूर्ण भूमिका में स्वीकार किया है। राम का चरित्र इतना बहुआयामी सांस्कृतिक, वरेण्य तत्वों से युक्त कथा है जिसके वर्णन में किसी को भी पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है कवि वाल्मीकि ने धर्म के विग्रह के रूप में राम के चरित्र की व्याख्या की है कि राम ही धर्म के मूर्तिमन्त साक्षात् विग्रह हैं उनके जीवन में जो त्याग, आदर्श, संघर्ष, चित्रित हैं जिनके कारण वह महान वने हैं। तथा इस महानता के पीछे रावण की भी उतनी आवश्यकता है जिससे सत् असत् पक्ष के संघर्ष को ज्ञान-विज्ञान, शुभ-अशुभ, करणीय-अकरणीय रूप में देखा जा सकता है-क्या समाज में राम जैसा व्यक्ति होना चाहिये या रावण जैसा निश्चित रूप से समाजशास्त्री राम के पक्ष में निर्णय करेंगे अतः वाल्मीकि रामायण में जीवन के महत् उद्देश्य का चित्रांकन समाजशास्त्री आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक तत्वों की दृष्टि से किया है जिसमें त्याग, दक्षिण्य-उदारता है तो दूसरी ओर लोभ, क्रोध, अपहरण, वलात्कार, हिंसा जैसे तत्व भी हैं। इनके संघर्ष से जो धर्म की ज्योति फूटी है वह युग-युगों तक हमारे समाज को आलोकित करती रहेगी।

सारांश यह है कि आलोच्य दोनों काव्यों में आदि से अन्त तक जीवन के आदर्श एवं यथार्थ प्रधान विधि कथाओं से सुसम्बद्ध आधिकारिक कथा उदात्त पात्रों का चरित्र चित्रण सभी

रसों के सफल सन्निवेश, प्राकृतिक सुषमा का नैसर्गिक चित्रांकन, भाषा शिल्प का उदात्त रूप मिलता है जिसमें मार्मिकता, गरिमामयी रोचक शैली है, प्रभावोत्पादक ढंग से महद् उद्देश्य की अभिव्यंजना और इन सबसे अलग, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दोनों काव्य अपने-अपने युगों की व्याख्या करने वाले महाकाव्य है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने वाल्मीकि रामायण को विकसनशील महाकाव्य कहा है क्योंकि इसमें प्रक्षिप्त अंशों की भरमार है।

उपसंहार

वाल्मीकि हिमालय से निकलकर रामायण मन्दाकिनी आज़ भी तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है। शोधकर्त्री ने आदिकाव्य और आधुनिक काव्य जानकी जीवनम् का काव्य शास्त्र की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के मूल में एक ओर रामकथा की प्रासंगिकता निरूपित करना है तो दूसरी ओर आलोच्य दोनों काव्य ग्रन्थों की तुलना करते हुए साम्य-वैषम्य भी निरूपित भी करना है। इस शोध प्रबन्ध का सारांश यह है-

1. रामकथा में प्रारम्भिक युग से ही प्रतीकात्मकता विद्यमान थी राम भले ही क्षत्रिय नेता रहे हों लेकिन उनका आख्यान विस्तृत फलक वाला बनता चला गया क्योंकि यह नाम वैदिक काल में भी प्रचलित था। सीता, जनक, दशरथ, इक्ष्वाकु इत्यादि नाम वैदिक काल में उपलब्ध थे भले ही वे कथा के प्रतीक रूप में न प्रयुक्त हों।
2. रामायण, महाभारत और संस्कृत का विशाल पौराणिक तथा ललित साहित्य राम की कथा इस रूप में प्रस्तुत करता है कि राम महामानव से ऊपर उठकर श्रेष्ठ आदर्श राजा, अंशावतारी और बाद में ब्रह्म हो गये। उनके अवतारों की चर्चा और ब्रह्म रूप में पाने की अनेक साधनाएँ विकसित होने लगी इन साधनाओं को कथारूप में ढालकर प्रस्तुत किया गया।
3. आधुनिक काल तक आते-आते वैज्ञानिक दृष्टि विकसित होने लगी और रामकथा में जो कुछ भी अस्वाभाविक लगा प्राक्षालन कर कथा में परिवर्तन-परिवर्धन किया जाने लगा। प्रथम अध्याय का यही सार तत्व है जिसमें रामकथा के विकास की रूप रेखा अंकित की गई है।

शोध प्रबन्ध का दूसरा अध्याय वाल्मीकि रामायण एवं जानकी जीवनम् की कथावस्तु से सम्बन्धित है। आलोच्य काव्यों की आधिकारिक, प्रासंगिक कथावस्तु प्रस्तुत कर कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण इस कथा का आदि ग्रन्थ है अतः परवर्ती कवियों ने रामायण कूप से जल लेकर अपने काव्यग्रन्थों का निर्माण नवीन घटनाओं के मिश्रण से किया है। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं-

1. जानकी जीवनम् में सीता का जन्म वाल्मीकि के अनुसार अवश्य है किन्तु यह राजेन्द्र मिश्र की वर्णन कौशल के कारण मौलिक प्रतीत होती है। वाल्मीकि में यह अंश उत्तर

काण्ड में है इसे अधिक महत्ता कवि ने नहीं दी है। शैली, शिल्प की दृष्टि से यह प्रक्षिप्त अंश माना जाता है किन्तु जानकी जीवन में कथा का आरम्भ ही सीता जन्म से है। इसमें सीता की बाल वयः सन्धि-यौवनागम अवस्थाओं के मांसल चित्र तो अंकित ही है सीता द्वारा अनेक कार्यो का वर्णन है जिसे आज पूर्वाचल की किशोरियाँ सम्पादित करती हैं।

2. पूर्वराग-(अयोग) के रूप में राम-सीता की श्रृंगारिक चेष्टाएँ, विवाहोपरान्त चारों भाइयों के दाम्पत्य चित्रांकन, हरे-भरे प्रसन्न पारिवारिक वातावरण के बीच दाम्पत्य प्रेम विकसित किया गया है।

3. वनवास प्रकरण से लकर रावण वध तक की सम्पूर्ण घटनाक्रम वाल्मीकि के अनुसार राजेन्द्र मिश्र ने वर्णित की है इसमें संक्षेपण शैली का प्रयोग हुआ है इससे कथा में प्रवाहमयता तो बढ़ी है किन्तु घटनाएँ अपूर्ण सी लगती हैं।

4. जानकी जीवनम् का विशिष्ट अंश सीता-निर्वासन प्रकरण है। लोकापवाद से प्रजाजनों का आक्रोश वशिष्ट के सत्प्रयासों से कथा को एक नया रूप देकर कवि ने आधुनिक युग बोध दृष्टि सम्पन्न कवि का परिचय स्वतः दिया जिसमें एक ओर कल्पना है तो दूसरी ओर वैचारिक दृष्टि बोध भी है। यह कथा सुखान्त होने के कारण अधिक मानवीय लगती है।

5. दोनों की कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन कथा प्रवाह तनाव आदि से कर यह स्थापित करने का प्रभाव किया गया है कि वाल्मीकि रामायण की कथा व्यापक फलक एवं परिवेश में हुई है इसलिए इसमें कथा शैथिल्य है।

6. दोनों काव्यों में मंगलाचरण अभाव है। वाल्मीकि रामायण सप्त काण्ड बद्ध अनेक अध्याय वाली कथा है। राजेन्द्र मिश्र ने वाल्मीकि की कथा चयन में स्वविवेक का आश्रय लेकर आधिकारिक कथा का ही चित्रांकन किया है। दोनों कथाओं में संक्षेपण विस्तारगत साम्य-वैषम्य दिखाई पड़ता है।

7. कथा वर्णन की शैली, शिल्प और उद्देश्य में भी पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है क्योंकि वाल्मीकि की कथा सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश में राम चरित्र की व्याख्या है तो जानकी जीवनम् की कथा में ऐसा कोई प्रयास नहीं है।

तृतीय अध्याय में पात्रों का चरित्र चित्रण अंकित है इस परिप्रेक्ष्य में पात्र शब्द का अर्थ, चरित्र और व्यक्तित्व से उसके अन्तर को निरूपित कर पात्रों के चरित्र चित्रण में शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, त्रिआयामीय पद्धति का उपयोग शोधकर्त्री ने किया है। आलोच्य काव्यों में प्रयुक्त तन्निविष्ट पात्रों की सूची प्रस्तुत कर कथात्मक दृष्टि से उनका वर्गीकरण किया गया है। रामकथा के प्रमुख और गौण, पुरुष और स्त्री पात्रों के वाह्य स्वरूप की चर्चा कर उनके अन्तरिक सौन्दर्य का चित्रांकन कथा के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। राम, सीता, लक्ष्मण, रावण, हनुमान, विभीषण इत्यादि पात्रों के साथ अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण करते हुए निष्कर्ष रूप में कहा गया है कि–

1. यह चरित्र चित्रण तुलनात्मक पद्धति पर प्रस्तुत किया गया है कथा समान होने पर भी आन्तरिक चिन्तन वैभिन्नय के कारण पात्रस्थ स्वरूप परिवर्तित हो गया है–उदाहरण स्वरूप राम का चरित्र रेखांकित किया जा सकता है। वाल्मीकि में राम अनेक गुणों की खान, महामानव से उठकर विष्णु के अंशावतारी रूप में चित्रित हैं वहीं उनमें साधारण मनुष्य से भी कमजोर अवगुणों को प्रदर्शित किया गया है जिसमें सीता की अग्नि परीक्षा और सीता निर्वासन के समय कहे गये राम के वाक्य हैं। इसी कथा को लेकर चित्रित जानकी जीवनम् में राम के मनोभाव भिन्न हैं जो आधुनिक युगबोध को चित्रित करते हैं। जानकी जीवनम् के राम मानव, सुकुमार, कोमल, सहृदय एक राजा हैं अधिक से अधिक हम इन्हें धीरोदात्त नायक ही कह सकते हैं।
2. विभीषण, दशरथ के चरित्र जो द्वैधभाव मिलता है उसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि शोधकर्त्री ने प्रस्तुत की है।
3. पात्रों के केन्द्रीय व्यक्तित्त्व गुण के साथ अन्य पात्रों की यथावसर चर्चा विस्तार और विश्लेषण शोधकर्त्री ने की है।
4. शोधकर्त्री की यह उपपत्ति रही है कि कथा वर्णन मात्र से कोई रचना काव्य संज्ञा नहीं पा सकती जब तक उसमें चरित्रों का चित्रांकन वास्तविक, सजीव और जीवन्त रूप में न किया गया हो।

चतुर्थ अध्याय रसाभिव्यंजन से सम्बन्धित है। प्रारम्भ में लिखा गया है कि विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संयोग से निष्पन्न रस की संगति कोई प्रतिभावान कवि ही कुशलता

पूर्वक कर सकता है और रामकथा में रस का अभाव नहीं है। शोधकर्त्री का निष्कर्ष यह है कि–

1. वाल्मीकि रामायण का अंगी रस वीर रस है। खींचतान कर करूण और श्रृंगार को माना जा सकता है। जानकी जीवनम् का अंगीरस तो निर्भ्रान्त रूप से श्रृंगार रस है क्योंकि इसकी कथा सुखान्त पर्यावसायी है वाल्मीकि ने रस विवेचन के लिए लक्षणों का विधिवत प्रयोग नहीं किया क्योंकि इन लक्षणों का निर्माण इनके बाद ही हुआ है, जानकी जीवनम् में यह आयासगत प्रयोग है।
2. अनुभाव एवं संचारी भावों का पृथक उल्लेख शास्त्रीय विश्लेषण प्रायः रस उदाहरण के समय ही कर दिया जाता रहा है, शोधकर्त्री ने प्रथम बार दोनों कवियों की रसविषयक दृष्टि बोध वैलक्षण्य को निरूपित करने हेतु इन्हें अलग–अलग लिखकर कवियों की रसवोध दृष्टि का विश्लेषण किया है।
3. रस निरूपण में शोधकर्त्री ने यह ध्यान रखा है कि कवि की एतद्विषयक दृष्टिगत विशदता प्रकाश में कर सके लक्षणानुधावन से वह भाराक्रान्त न हो सके।

पंचम अध्याय में प्रकृति एवं अन्य वस्तु वर्णनगत सौन्दर्य का निरूपण है। महाकाव्यों के शास्त्रीय निरूपण में यह स्थापित किया गया है कि कवि को नायक की कथा के साथ तद्युगीन समाज और प्राकृतिक व्यापार का भी चित्रण करना चाहिए इससे कवि की बहुज्ञता का तो पता ही चलता है साथ ही उसके सूक्ष्म निरीक्षण वृत्ति भी दृष्टिगत होती है। इस सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण में वर्णित प्रकृति के आलम्बन, विभिन्न ऋतुओं और उनके क्रिया व्यापारगत सौन्दर्य का चित्रांकन कर उसकी तुलना जानकी जीवन के प्रकृति चित्रण से की गई है। इसका निष्कर्ष यह है–

1. वाल्मीकि का कथाफलक अत्यन्त विस्तीर्ण है अतः उसमें प्रकृति के बहुविध रूपों का वस्तुपरक एवं सजीव चित्रांकन है। जानकी जीवनम् की प्रकृति अपेक्षाकृत सीमित है कवि ने अवसरों को एक नया मोड देने का या पात्रस्थ हृदगत भावों के लिये प्रकृति का प्रयोग किया है। यह वर्णन संक्षिप्त रूप में आकर्षक तो अवश्य हैं किन्तु इनमें वह विस्तीर्ण दृष्टि व्यापक चित्रफलक का अभाव है।
2. दोनों कवियों ने प्रकृति के आलम्वन, उद्दीपन, आलांकारिक इत्यादि रूपों का चित्रांकन

किया है। वाल्मीकि की प्रकृति विराट और नानाविध व्यापार वाली है जबकि जीवनम् की प्रकृति संक्षिप्त किन्तु अलंकार प्रधान है।

3. दोनों कवियों ने उपमान रूप में प्रकृति का उन्मुक्त प्रयोग किया है।

4. दोनों कवियों में प्रातः, मध्याह्न, प्रदोष, रजनी, नक्षत्र, चन्द्र, सरोवर, नदी, झरना, समुद्र, पर्वत, आश्रम, पुर, ग्राम, दुर्ग इत्यादि अनेक मानवेतर वस्तुओं का चित्रांकन किया है इस वर्णन में वाल्मीकि की दृष्टि अत्यन्त उदार और यथार्थवादी है जानकी जीवनम् में यह मर्यादित एवं सीमित रूप में वर्णित है।

षष्ठ अध्याय में आलोच्य काव्य ग्रन्थों के शिल्प पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। इस परिप्रेक्ष्य में यह निरूपित किया गया है कि, भाषा विचार या भाव सम्प्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है उसके अभाव में न जाने कितनी भाव राशियाँ अन्धकार के अतल गर्त में तिरोहित हो जाती हैं। यह भाषा सामान्य और काव्य भाषा दो रूपों में मिलती हैं प्रयोग और अर्थ के बाद सामान्य भाषा महत्वहीन हो जाती है जबकि काव्यभाषा विशिष्ट भाषा बनकर अपने सौन्दर्य के कारण सहृदय जन्य संवेद्य्य और दीर्घ जीवी होती है। शोधकर्त्री ने भासिक प्रतिमानों के साथ ही आलोच्य काव्य की भाषागत विशेषता निरूपित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों को आधार बनाया है–

1. दोनों काव्यों में प्रयुक्त कथा को विकसित करने वाले, पात्रों का चरित्र निरूपित करने वाले तथा आकार की दृष्टि से लघु, दीर्घ, अलंकृत और नाटकीय संवादों के उदाहरण दिए गये हैं।

2. इसी प्रकार इतिवृत्त परक, अभिधा प्रधान, विवरणात्मक, भावात्मक और अलंकृत शैलियों के उदाहरण दोनों काव्यों से दिए गये हैं। इससे वाक्य विन्यास के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है।

3. ओज, प्रसाद, माधुर्य गुणों के साथ वैदर्भी, गौणी, पांचाली तथा परुषा, कोमला, उपनागरिका आदि के लक्षण, गुणों से इनका सम्बन्ध तथा आलोच्य काव्यों से उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं।

4. अभिधा शक्ति के लिए रूढ़, यौगिक, योगरूढ़, लक्षण और व्यंजना शब्द शक्ति का सोदाहरण विवेचन किया गया है।

5. काव्य में चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण करने वाली प्रक्रिया विम्ब धर्मिता की दृष्टि से भी आलोच्य काव्य की संक्षिप्त समीक्षा की गई है।

6. वाल्मीकि प्रयुक्त अनुष्टुप और उसके उपभेदों के साथ जानकी जीवनम् के विविध छन्दों का लक्षण, उदाहरण देकर यह निरूपित किया गया है कि दोनों कवि प्रवाहमयता की दृष्टि से छन्दों के प्रयोग से सफल सिद्ध हुए हैं यद्यपि अनुश्रुति यह कहती है करुण विगलित निःसृत अनुष्टुप छन्द को कवि स्वयं नहीं जानता था फिर भी उनमें चारुता, मसृणता और नादात्मकता के जितने विविध प्रयोग हुए हैं उतने शायद एक छन्द में महाकाव्य लिखकर अन्य किसी कवि को उतनी सफलता नहीं मिल सकती है जितनी की वाल्मीकि को मिली है। जानकी जीवनम् में लयात्मकता लाने के लिए प्राक्तन छन्दों की अपेक्षा प्रगीतात्मक प्रधान छन्दों का विविध प्रयोग किया है इससे छान्दसिक चारुता के साथ विष्णुता अधिक आ गई है। यह एक प्रकार के टेक और लय प्रधान छन्द हैं जिसमें लोकतत्त्व की सरसता मिलती है।

7. राजेन्द्र मिश्र ने अभिव्यंजना शिल्प के मूल संस्कृत आचार्यों का स्मरण किया है जिन्होंने काव्यगत सौन्दर्य अभिवृद्धि हेतु शिल्पगत विविध प्रयोग किए हैं, इनमें जयदेव, माघ, हर्ष, पं० राज जगन्नाथ हैं। इनके उल्लेख से यह निष्कर्ष सहज दी दिखाई देता है कि जानकी जीवनम् के शिल्प पक्ष पर इन कवियों का प्रभाव बहुत गहराई तक पड़ा है। प्रत्यक्ष रूप से कवि का मन्तव्य अलंकृत प्रधान इस काव्य को लिखकर इन्हीं की पंक्ति में बैठने की आकांक्षा दिखाई देती है।

सप्तम अध्याय भारतीय काव्य सम्प्रदाय एवं आलोच्य काव्य ग्रन्थों के विश्लेषण से सम्बन्धित है। इस अध्याय में भिन्न सम्प्रदायों का विश्लेषण किया गया है–

1. अलंकार की महत्ता निरूपित कर अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, उपमा प्रमुख अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

2. ध्वनि की व्याख्या और प्रतीयमान अर्थ के सौन्दर्य की महत्ता निरूपित कर ध्वनि के भेद–उपभेद लिखे गये हैं। और इस प्रकार अविवक्षित वाच्य ध्वनि, विवक्षितान्य पर वाच्य ध्वनि अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि, अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य ध्वनि, संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि एवं असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि–भावाभास, रसाभास, भावध्वनि,

भावसन्धि इत्यादि उपभेदों का स्वरूप उदाहरण देकर प्रस्तुत किया गया है और कहा गया है कि कथा विस्तार के कारण वाल्मीकीय में अलंकार और ध्वनि प्रयोग के पर्याप्त अवसर और स्थल हैं जबकि जानकी जीवनम् में ध्वनि के कम स्थल हैं।

3. वक्रोक्ति सिद्धान्त और उसके स्वरूप की चर्चा कर शोधकर्त्री ने वर्ण वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, रूढि वैचित्र्य वक्रता, उपचार वक्रता, सम्वृत्ति वक्रता, वृत्ति वक्रता, पदपरार्ध वक्रता, काल एवं उपग्रह वक्रता तथा प्रकरण वक्रता के अन्तर्गत आलोच्य दोनों काव्यों की कथा प्रसंग निर्वाहगत विशिष्टता का उल्लेख किया है।

अष्टम् अध्याय वाल्मीकि एवं जानकी जीवनम् के काव्य रूप निरूपण हेतु प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत आने वाले महाकाव्य के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। प्राक्तन भारतीय आचार्यों में दण्डी, भामह, विश्वनाथ आदि के अनुसार महद कथा, सर्गबद्धता, अभिजात्य नायक, पुरूषार्थ चटुष्ट्य की पूर्ति, परिवेशगत वस्तुओं के चित्रांकन का उल्लेख किया गया है। पाश्चात्य समीक्षकों में अरस्तु, टिलीयर्ड, बावरा आदि आलोचकों द्वारा महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख कर भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा समन्वित महाकाव्य के शाश्वत, सर्वग्राह्य लक्षण निरूपित किए गये हैं और उन्हें आधार बनाकर आलोच्य काव्य की संक्षिप्त समीक्षा की गई है। जिसका निष्कर्ष यह है-

1. महाकाव्य की कथा काल्पनिक, ऐतिहासिक, मिश्रित किन्तु जीवन्त कथा होनी चाहिए। इस दृष्टि से आलोच्य काव्य की कथानकगत वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है।
2. उदात्त, श्रेष्ठ नायक के रूप में राम चरित्र की व्याख्या और उसके साथ पात्रों के त्रिआयामीय रूप में उनकी महत्ता निरूपित की गई है। इनमें राम, सीता, रावण, हनुमान, कैकेयी, शूर्पणखा, दशरथ, सुग्रीव, विभीषण पात्र प्रमुख हैं जो क्रमशः सत्, रज, तम प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक चेतना के प्रतिरूप हैं।
3. रसात्मकता को काव्य का प्राण मानकर आलोच्य काव्यों के वीर, शृंगार और करुण रसों के साथ कवियों की रसयोजना हेतु उद्दीपन विभाव, अनुभाव, संचारी भाव का उल्लेख है।
4. महद् उद्देश्य की दृष्टि से आलोच्य काव्यों की विवेचना संक्षेप में कर यह लिखा गया है कि वाल्मीकि के कथा गायन के रूप में राम चरित्र की व्याख्या है तो जानकी जीवम् के काव्य मूल में सीता को कलंक कालिमा के कारागार से निकालना है। इस प्रकार दोनों काव्य सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक वहुआयामीय उद्देश्य लेकर लिखे गये हैं।

ग्रन्थ–सूची

(1) आलोच्य काव्य ग्रन्थ

(क) वाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(ख) जानकी जीवनम् – राजेन्द्र मिश्र

(2) सहायक ग्रन्थ

(1) ऋग्वेद – गीता प्रेस, गोरखपुर

(2) ऐतरेय ब्राह्मण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(3) शतपथ ब्राह्मण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(4) तैत्तिरीय ब्राह्मण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(5) महाभारत – गीता प्रेस, गोरखपुर

(6) हरिवंश पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(7) मत्स्य पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(8) विष्णु पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(9) वायु पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(10) भागवत पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(11) कूर्म पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(12) स्कन्ध पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(13) ब्रह्म पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(14) पद्म पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(15) गरुड़ पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(16) योग वशिष्ठ रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(17) अध्यात्म रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(18) अद्‌भुत रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(19) आनन्द रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

(20) रघुवंश कालिदास ग्रन्थावली – साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

(21) भट्टि काव्य – चौखम्बा, वाराणसी

(22) जानकी हरण – कुमार दास

(23) प्रतिमा नाटक - भास

(24) अभिषेक नाटक - भास

(25) उत्तर रामचरित - भवभूति - चौखम्वा, वाराणसी

(26) महावीर चरित - भवभूति - चौखम्वा, वाराणसी

(27) अनर्घ राघव - मुरारि - चौखम्वा वाराणसी

(28) रामायण मंजरी - क्षेमेन्द्र - चौखम्वा वाराणसी

(29) प्रसन्न राघव - जयदेव - चौखम्वा वाराणसी

(30) साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - साहित्य भंडार, मेरठ

(31) काव्य प्रकाश - मम्मट (1) साहित्य भंडार, मेरठ
(1) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

(32) वक्रोक्ति जीवितम् - कुन्तक - सम्पा0 विश्वेश्वर आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

(33) काव्यालंकार - भामह - बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना

(34) काव्य मीमांसा - राजशेखर

(35) दशरूपक - धनंजय - साहित्य भंडार, मेरठ

(36) ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन सम्पा0 नगेन्द्र गौतम बुक डिपो, दिल्ली

(37) काव्यादर्श - दण्डी - संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर

(38) नाट्यशास्त्र - भरत - चौखम्वा संस्कृत सिरीज, बनारस

(39) काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - वामन - चौखम्वा संस्कृत बुक डिपो, बनारस

(40) वर्ण रत्नाकर - भट्ट केदार - चौखम्वा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

(41) काव्यदर्पण - रामदहिन मिश्र - ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना

(42) हिन्दी छन्द प्रकाश - डा0जगन्नाथ भानु - विलासपुर

(43) महर्षि वाल्मीकि - डा0 जानकी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थम् कानपुर

(44) रामकथा - डा0 कमिल बुल्के - विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रयाग

(45) वाल्मीकि और तुलसी - साहित्यिक मूल्यांकन - डा0राम प्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ

(46) रामचरित मानस का काव्य शास्त्री अनुशीलन – डा0 राजकुमार पाण्डेय, अनुसंधान प्रकाशन; कानपुर

(47) पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त – डा0 शान्ति स्वरूप गुप्त, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

(48) रामचरित मानस की काव्य भाषा – डा0 रामदेव प्रसाद, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद

(49) आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना – डा0 पुत्तूलाल शर्मा, वि0वि0 प्रकाशन, लखनऊ

(50) वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस का सौन्दर्यविधान – तुल्नात्मक अध्ययन – डा0 जगदीश शर्मा, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा राज0

(51) तुलसी आधु0 वातायन से – डा0 रमेश कुन्तल मेघ – भारतीय ज्ञान पीठ,दिल्ली

(52) मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद – डा0 कपिलदेव पाण्डेय, चौख़म्बा, वाराणसी

(53) संस्कृत साहित्य का इतिहास–डा0 जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा

(54) रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण– डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

(55) शब्द कल्प द्रुम भाग–3, चौखम्वा वाराणसी

अंग्रेजी

(1) लेक्चर्स आन रामायण – वी0एस0 शास्त्री, मद्रास संस्कृत अकेडमी

(2) हिस्ट्री आफ मार्डन क्रिटिसिज्म – रेन वेलेक

(3) ए स्टडी आफ सोफोक्लीन ड्रामा – एम0किकवुड

(4) कन्टेमपरेरी स्कूल आफ साइकोलाजी – फ्रायड

(5) अरिस्टाटल थ्योरी आफ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट – एस0एच0 वूचर

(6) ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर – विल्टर नित्ज

(7) इन साक्लोपीडिया – ब्रिटेनिका भाग–18 डा0 रोबर

पत्र–पत्रिका

(1) रामांक – गीता प्रेस, गोरखपुर

(2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका–वर्ष 65